अध्याय 5

इबादत

क़ुरआन में इबादत की अवधारणा

जब इंसान एक अल्लाह में और उसकी क़ुदरत में, उसके सर्वशक्तिमान होने में और उसके दयावान व महरबान होने में विश्वास करता है तो उसके अन्दर यह भावना और तड़प उठती है कि वह अपने रब से कलाम करे, उसके आगे गिड़गिड़ाए और उससे मार्गदर्शन व मदद मांगे। क़ुरआन कहता है कि अल्लाह इंसान के बहुत क़रीब है और उसकी पुकार का जबाव देता है और उसे इस बात का बदला देता है कि वह अपने रब पर ईमान रखता है और उसे पुकारता है: *"और (ऐ पैग़म्बर सल्ल०) जब तुम से मेरे बन्दे मेरे बारे में पूछें तो कह दो कि मैं तो (तुम्हारे) पास हूं। जब कोई पुकारने वाला मुझे पुकारता है तो मैं उसकी दुआ कुबूल करता हूं तो उनको चाहिए कि मेरे आदेश को मानें और मुझ पर ईमान लाएं ताकि सही रास्ता पाएं"* (2:186), *"और तुम्हारे रब ने फ़रमाया है कि तुम मुझ से दुआ करो मैं तुम्हारी दुआ कुबूल करूंगा"* (40:60), *"तो उनके रब ने उनकी दुआ कुबूल कर ली (और फरमाया) कि मैं किसी अमल करने वाले के अमल को मर्द हो या औरत बेकार नहीं करता। तुम एक दूसरे की जिंस हो"* (3:195)।

इस्लाम में इबादत हर वह अमल है जो अल्लाह के दिशा निर्देश के अनुसार अंजाम दिया जाए। लेकिन इबादत का अपना एक विशेष अर्थ भी है जिसके अनुसार इबादत अल्लाह के आगे गिड़गिड़ाना है। इसका मक़सद अल्लाह से अपना सम्बंध बनाए रखने के लिए इंसान की भक्ति भावना को विक्सित करना और उसे सशक्त करते रहना है। अल्लाह से यह विनती कभी भी और किसी भी रूप में हो सकती है:"जो खड़े और बैठे और लेटे (हर हाल में) अल्लाह को याद करते हैं और आसमान व ज़मीन की पैदाइश में ग़ौर करते (और कहते) हैं कि ए रब तूने इस (सृष्टि) को बेमतलब पैदा नहीं किया, तू पाक है, बस हमें नरक की यातना से बचा ले (3:191)।

मक्का जा कर हज करने के अलावा इबादत की किसी भी क्रिया के लिए इस्लाम दैनिक जीवन को त्यागने का तक़ाज़ा नहीं करता। दिन में पांच बार नमाज़ की इबादत अदा करने के लिए कुछ मिनट लगाने के बाद इंसान फिर से अपने कामों में लग जाता है, जुमे के दिन साप्ताहिक इबादत के लिए भी यह कहा गया कि "फिर जब जुमा की नमाज़ हो चुके तो बिखर जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल (कृपा) तलाश करो और अल्लाह को बहुत बहुत याद करते रहो ताकि मुक्ति पाओ" (10:62)

रमज़ान में रोज़े रखने की इबादत भी, जो कि एक निश्चित अवधि ("गिनती के कुछ दिनों") तक और कुछ घण्टों के लिए रखे जाते हैं, इंसान को काम काज से नहीं रोकती। लेकिन मोमिन आदमी की यह इच्छा होती है कि अल्लाह से बातचीत करने और विनती करने का कोई विशेष ढंग भी हो जिससे विशेष तरह से अपनी इबादत को व्यक्त किया जा सके। अतःइस्लाम में इबादत के लिए केवल सम्भव और सरल क्रियाएं ही रखी गयी हैः *"अल्लाह तुम पर किसी तरह की तंगी करना नहीं चाहता बल्कि यह चाहता है कि तुम्हें पाक करे और अपनी नेअमतें तुम्हारे ऊपर पूरी कर दे ताकि तुम उसका शुक्र करो"* (5:6), "अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है और तुम्हें दिक्क़त (में डालना) नहीं चाहता" (2:185)।

इस्लाम में इबादत का दायरा दैनिक इबादतों जैसे नमाज़, ज़िक्र (अल्लाह को याद करना और उसका गुणगान करना), तिलावत (क़ुरआन पढ़ना), दुआ करना, पैग़म्बर साहब पर सलामती भेजना, लोगों के साथ सद्व्यवहार करना, दूसरों की ग़ल्तियों को मआफ़ करते रहना वग़ैरह से लेकर साल में एक बार पूरे महीने के रोज़े रखने, ज़कात (साल भर में बच रहे माल में से ढाई प्रतिशत दान) देने और हज करने तक (जो कि जीवन में एक बार ही ज़रूरी है) फैला हुआ है। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसी दिक्क़त में है कि जिसके चलते इबादत की क्रिया उसके लिए बहुत ही कठिन हो तो उसमें देर (क़ज़ा) करने और कुछ दूसरे विकल्पों की भी गुंजाइश रखी गयी हैः"लेकिन तुम में से अगर कोई बीमार हो या सफ़र में हो तो दूसरे दिनों में (रोज़े रख कर) उनकी गिनती पूरी कर ले"(2:185)।

इबादत की क्रियाएं न केवल उनको अंजाम देने का माध्यम हैं बल्कि उनसे कुछ ख़ास शरीरिक और नैतिक फ़ायदे भी प्राप्त होते हैं। जैसे इबादत के लिए ज़रूरी है कि शरीर, कपड़े और इबादत की जगह पाक व साफ़ हो। विशेष अवसरों पर की जाने वाली इबादत जैसे जुमा के दिन की नमाज़, ईद की नमाज़, मय्यत (मरने वाले) के लिए दुआ की नमाज़ या बारिश की दुआ के लिए नमाज़ वग़ैरह हर व्यक्ति को समुदाय से जुड़े रहने का मौक़ा देती और इसको सुनिश्चित करती हैं। इबादत की सभी क्रियाओं का सबसे बड़ा अध्यात्मिक और नैतिक फ़ायदा अल्लाह से सम्बंध और तक़वा (भक्ति भावना) में बढ़ोतरी होना है जो मोमिन को स्वार्थ, अहंकार, लालच और दूसरे अनैतिक आचरण से बचाती हैः"और नमाज़ के पाबन्द रहो कुछ शक नहीं कि नमाज़ बे हयाई और बुरी बातों से रोकती है और अल्लाह का ज़िक्र (याद) बड़ी बात है और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे जानता है" (29:45), *"ऐ मोमिनों तुम पर रोज़े फ़र्ज़ (अनिवार्य) कर दिए गए हैं जिस तरह तुम से पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे ताकि तुम गुनाहों से बचने वाले बनो"*(2:183), *"हज के महीने (निर्धारित हैं और) मालूम हैं तो जो व्यक्ति इन महीनों में हज की नियत (इरादा) करे तो हज (के दिनों) में यौन उत्तेजना न हो न कोई गुनाह करे न किसी से लड़ाई झगड़ा करे और जो नेक काम तुम करोगे वह अल्लाह उसे जान*

लेगा। और 'ज़ादे राह' (रस्ते का सामान) साथ ले जाओ, बस सबसे अच्छा रस्ते का सामान तक़वा (अल्लाह से डरते रहने की भावना) है और ऐ अक़्ल मुझ से डरते रहो।'' (2:179)।

एक अल्लाह की इबादत वास्तव में आदमी के अपने ही फ़ायदे के लिए है, क्योंकि अल्लाह को उसकी इबादत की ज़रूरत नहीं है: *''अल्लाह ही तो अन्न देने वाला है ताक़त वाला मजबूत है''* (51:58), *''मेरा रब निःस्वार्थ (और) करम करने वाला है''* (27:40)।

आम शिक्षाएं

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ وَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۙ﴿۲۱﴾

ऐ लोगों! तुम अपने रब की इबादत करो जिसने तुमको और तुम से पहले वालों को पैदा किया। ताके मुत्तक़ी बन जाओ। (2:21)

अल्लाह की इबादत एक अल्लाह पर आदमी के ईमान और उसकी हिदायत व इच्छा के आगे स्वंय को पेश कर देने का इज़हार है। ख़ास तौर से, किसी कामयाबी की स्थिति में घमण्ड के बजाए अल्लाह के शुक्र और किसी नाकामी की स्थिति में निराशा और हताशा के बजाए अल्लाह से मदद मांगने का एक रूप है। अल्लाह का बन्दा अल्लाह से हिदायत और मदद की दुआ करके एक संतोष और ताक़त महूसस करता है और उसकी रहमत व मदद पर भरोसा करता है। यह अल्लाह सर्वशक्तिमान से मुस्तकिल सम्बंध बनाए रखने का माध्यम है। इससे इंसान की ऊर्जा और उत्पादन शक्ति बढ़ती चली जाती है और इंसान के अन्दर संतुलन व स्थिरता बनी रहती है।

وَ اِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۫ وَ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ ذِى الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَ اَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿۸۳﴾

याद करो इसराईल की औलाद से हमने पक्का वादा लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना, माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के साथ, यतीमों, और मिस्कीनों के साथ नेक सुलूक करना, लोगों से भला बात कहना, नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब उस वादे से फिर गये और अब तक फिरे हुए हो। (2:83)

बनी इस्राईल की अल्लाह से प्रतिज्ञा और इस प्रतिज्ञा को पूरा करने पर अल्लाह का उनसे वायदा एक विश्वव्यापी नैतिक क़ानून है। यदि कोई व्यक्ति यह क़ानून तोड़ता है तो वह अल्लाह से अपनी बन्दगी के वचन का उल्लंघन करता है और उस पर इस वचन को तोड़ने की पूरी

ज़िम्मेदारी आती है, क्योंकि अल्लाह का इंसाफ़ किसी की तरफ़दारी या किसी के विरोध में नहीं होता। एक अल्लाह की इबादत से इंसान के अन्दर ऐसी नैतिक गुण पैदा होना चाहिएं जो उसके कर्म और व्यवहार से व्यक्त हों। लोगों से उचित ढंग से और विनम्रता से बात करना केवल दूसरों को ख़ुश करने तक ही सीमित नहीं है, यह भावना इंसान के अन्दर गहराई से उतरी हुई होनी चाहिए और इस तरह कि उसका बोलना इंसाफ़ के लिए हो, अहसान (उपकार) के लिए हो और हमदर्दी व सौहार्दपूर्ण सम्बंध स्थापित करने के लिए हो।

بَلٰى ۚ مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَلَهٗۤ اَجْرُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ۪ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۱۱۲﴾

हाँ ये हक़ीक़त है जो अल्लाह के सामने झुकेगा, और ववो मुख़लिस भी हो। उसके लिए अपने रब के पास उसका बदला है उनके लिए ना कोई ख़ौफ़ होगा और ना ग़मो रंज। (2:112)

इस्लाम का व्यापक अर्थ अल्लाह के आगे आत्मसमर्पण करना है, इसलिए जो कोई भी अपने आप को अल्लाह के हवाले करदे अर्थात अल्लाह की इच्छा का पाबन्द हो जाए, उस पर ईमान रखे और आख़िरत में जवाबदेही का यक़ीन रखे और दूसरों के साथ भलाई का मामला करने में अल्लाह की हिदायत का अनुसरण करे वह मुसलमान है। क़ुरआन में हर जगह ईमान को अमल-ए-स्वालेह (नेक अमल) के साथ ही ज़िक्र किया गया है। अल्लाह के आगे इस तरह का आत्मसमर्पण यानि सभी गतिविधियों में अल्लाह के दिशा निर्देश और उसकी इच्छा की पाबन्दी करना इबादत का निचोड़ है। यह व्यक्ति के जीवन में दिखाई देने वाली एक मुस्तक़िल व्यवहार है, केवल सीमित समय की विशेष इबादती क्रियाओं में या किसी ख़ास समय पर या ख़ास स्थान पर दिखने वाली स्थिति नहीं है। "अपना चेहरा अल्लाह की तरफ़ कर लेना" का मतलब परम्परागत अरबी भाषा में अपने आप को पूरी तरह अल्लाह के आगे झुका देना होता है, क्योंकि चेहरा पूरे शरीरिक और मानसिक भावों को अभिव्यक्त करता है। यही इबादत का भी अर्थ है और इस्लाम का भी अर्थ है। क़ुरआन के अनुसार अल्लाह की प्रसन्नता और उसकी तरफ़ से मिलने वाला अनन्त बदला हर उस व्यक्ति के लिए है जो पूरी चेतना और इच्छाशक्ति के साथ स्वयं को अल्लाह के आगे झुका दे और उसकी हिदायत व क़ानून को अपने जीवन का सिद्धांत बना ले, कि उसकी हिदायत को अपना लेने से तमाम इंसानियत के लिए इंसाफ़ का मामला सुनिश्चित होता है और इंसान एक सही जीवन बिताता है। इस दुनिया के अस्थाई जीवन में भी और आख़िरत के स्थाई जीवन में भी अल्लाह के इंसाफ़ के मामले में किसी के साथ कोई छूट नहीं है।

أَمْ كُنْتُمْ شُهَدَآءَ إِذْ حَضَرَ يَعْقُوبَ الْمَوْتُ ۙ إِذْ قَالَ لِبَنِيهِ مَا تَعْبُدُونَ مِنْ بَعْدِي ۖ قَالُوا نَعْبُدُ إِلَٰهَكَ وَ إِلَٰهَ آبَائِكَ إِبْرَاهِيمَ وَ إِسْمَاعِيلَ وَ إِسْحَاقَ إِلَٰهًا وَاحِدًا ۖ وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ ﴿١٣٣﴾

क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब याक़ूब वफ़ात पाने लगे, जब याक़ूब ने अपने बेटों से कहा तुम मरे बाद किस की बंदगी किया करोगे? तो सब ने यही कहा के आपके माबूद की, और आप के बाप दादा इब्राहीम और इसमाईल और इसहाक़ के माबूद की बंदगी करेंगे जो माबूद यकता है, और हम उसी के हुक्म की इताअत करेंगे। (2:133)

बनी इस्राईल हालांकि बार बार यह दावा करते थे कि वो एक अल्लाह की इबादत करते हैं जिसकी इबादत उनके पूर्वज उनसे पहले करते रहे हैं, लेकिन ख़ुदा के बारे में उनकी मान्यता यह थी कि बस वह एक ख़ास क़ौम का ख़ुदा है। यहां उन्हें याद दिलाया जा रहा है कि उनके पूर्वजों ने ख़ुद को एक अल्लाह का आज्ञाकारी बना लिया था और मरते दम तक उसकी बन्दगी करते रहने की प्रतिज्ञा पर जमे हुए थे और यही 'इस्लाम' शब्द का अर्थ है।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا ارْكَعُوا وَ اسْجُدُوا وَ اعْبُدُوا رَبَّكُمْ وَ افْعَلُوا الْخَيْرَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ ﴿٧٧﴾

मोमिनों! रूकू करते रहो, सज्दा करते रहो, और अपने रब की इबादत करते रहो, और नेक काम किया करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। (22:77)

यहां भी शुरू ईमान को अच्छे कामों के साथ जोड़ा गया है। अल्लाह की सच्ची इबादत की अनिवार्य शर्त यह है कि इंसान दूसरों के साथ बहतरीन मामला करे। कुछ ख़ास लोगों के साथ, किसी ख़ास समय या ख़ास स्थान पर तो अल्लाह की हिदायत के अनुसार मामला करना और दूसरी स्थितियों में या दूसरे लोगों के साथ मामला करने में अल्लाह की हिदायत को नज़रअंदाज़ करना या उसके विपरीत व्यवहार करना, इस व्यवहार से इंसान अल्लाह की बन्दगी का हक अदा नहीं कर सकता। इबादत का उद्देश्य अल्लाह का 'तक़वा' (ईशभय) पैदा करना है ताकि यह तक़वा इंसान को हर तरह के बुरे और शर्म वाले कामों से दूर रखे (देखें 29:45)।

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَ الْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُونِ ﴿٥٦﴾ مَا أُرِيدُ مِنْهُمْ مِنْ رِزْقٍ وَ مَا أُرِيدُ أَنْ يُطْعِمُونِ ﴿٥٧﴾ إِنَّ اللَّهَ هُوَ الرَّزَّاقُ ذُو الْقُوَّةِ الْمَتِينُ ﴿٥٨﴾

और मैंने जिन्नों और इन्सानों को तो महज़ अपनी इबादत के लिये पैदा किया है। मैं उनसे रिज़्क़ का तालिब नहीं हूँ और ना मैं ये चाहता हूँ के वो मुझे खिलायें। अल्लाह ख़ुद ही सबको रिज़्क़ देने वाला, क़ुव्वत वाला, क़ुदरत वाला है। (51:56-58)

इस सृष्टि की रचना के पीछे अल्लाह का एक मक़सद और योजना है जिसे हम, सभी जीवों को उनके जनक के बनाए हुए प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपनी समस्त सम्भावनाओं को पाने का मौक़ा देकर, समझ सकते हैं। इंसान के लिए उसका मतलब अल्लाह की हिदायत और इंसानी दिमाग़ से काम लेना है। अक़्ल वाले लोग अपनी अक़्ल से काम लेकर अल्लाह के अस्तित्व को मानते हैं और यह इंसान का एक स्वेच्छिक और सोचा समझा वचन होता है जो इबादत का मूल तत्व है अर्थात सत्य को और उसकी शक्ति को स्वीकार करना और उस अकेले ख़ुदा की महानता व बर्चस्व को मान कर उसके आगे झुक जाने का अमल है। सच्चाई को स्वीकार कर लेने का यह दृष्टिकोण इंसान को अल्लाह के पैग़ाम को स्वीकार करने की तरफ़ ले जाता है और फिर इंसान अपनी समस्त आंतरिक व बाहरी शक्तियों को काम में लाने के लिए प्रयासरत होता है, जबकि ख़ुद सर्वशक्तिमान अल्लाह इस बात का ज़रूरतमन्द नहीं है कि उसे माना जाए और उसकी इबादत की जाए, क्योंकि उसकी हस्ती पूरिपूर्ण और मुकम्मल है और उसकी शक्ति असीमित है और वह हर तरह की ज़रूरत से मुक्त है। अल्लाह समस्त शक्तियों और भलाइयों का स्रोत और केन्द्र है और इंसानी विकास इसी पर निर्भर है कि हम स्वयं को उससे जोड़ लें और सृष्टि में उसकी पैदा की गयी चीजों को उसके मार्गदर्शन और उसकी इच्छा के अनुसार उपयोग में लाएं। यह उसकी इबादत का उद्देश्य और लक्ष्य है। हमारी सारी शक्तियों का स्रोत अल्लाह की हस्ती है और उसकी शक्ति कभी कम होने वाली नहीं है, वइ हर चीज़ को अपने अंदर समेटे हुए है और उसे किसी से कोई बैर नहीं है। उसकी निगरानी और महरबानी हमैशा हमारे साथ है, लेकिन उसकी दया व कृपा भी उसके इंसाफ़ से बंधी हुई है। इस दुनिया में उसकी कृपा उन्हें भी प्राप्त होती है जो उस पर ईमान रखते हैं और उन्हें भी जो उसे रद करते हैं, यानि नेक लोगों को भी और बुरे लोगों को भीः"हम उनको और इन सब को तुम्हारे रब की बख़्शिश से मदद देते हैं और तुम्हारे रब की बख़्शिश किसी से रूकी हुई नहीं है" (17:20)। आख़िरकार हर इंसान अपने उस अमल के लिए अल्लाह के समक्ष जवाबदेह होगा जो उसने अल्लाह की बख़्शी हुई चीज़ों के साथ किया होगा।

नमाज़

नमाज़ और अक़ीदे (आस्था) का सम्बंध

الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۙ﴿۳﴾

जो यक़ीन रखते हैं पोशीना चीज़ों का और क़ायम रखते हैं नमाज़ को और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से ख़र्च करते हैं। (2:3)

فَإِنْ تَابُوْا وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ فَاِخْوَانُكُمْ فِي الدِّيْنِ ؕ وَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ⑪

फ़िर अगर ये तौबा कर लें और नमाज़ के पाबंद हो जायें और ज़कात देने लगें तो वो तुम्हारे दीनी भाई हैं और समझदारों के लिये हम अपनी आयात साफ़ साफ़ बयान करते हैं। (9:11)

قُلْ لِّعِبَادِيَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ يُنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ سِرًّا وَّ عَلَانِيَةً مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيْهِ وَ لَا خِلٰلٌ ㉛

(ऐ नबी (स.अ.स.) तुम मेरे मोमिन बन्दों से कह दो के वो नमाज़ पाबंदी से पढ़ते रहें और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से ख़र्च करते रहें (ख़्वाह) दरपर्दा या ज़ाहिर उस दिन के आने से पहले के उसमें ना आमाल का सौदा होगा और ना कोई दोस्त काम आएगा। (14:31)

اِنَّنِيْٓ اَنَا اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنَا فَاعْبُدْنِيْ ۙ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِذِكْرِيْ ⑭

बिला शुबह मैं ही अल्लाह हूँ, मेरे सिवा कोई माबूद नहीं है तो तुम मेरी ही इबादत किया करो, मेरी ही याद के लिये नमाज़ पढ़ा करो। (20:14)

قَدْ اَفْلَحَ مَنْ تَزَكّٰى ⑭ وَ ذَكَرَ اسْمَ رَبِّهٖ فَصَلّٰى ⑮

बामुराद हुआ वो शख़्स जो पाक हुआ। और अपने रब का नाम लेता रहा और नमाज़ पढ़ता रहा। (87:14-15)

चूंकि अक़ीदे का सम्बंध उन मामलों से है जिन को इंसान अपनी इन्द्रियों से नहीं समझ सकता, इसलिए उस मालिक से कलाम करने के लिए जो उन सभी चीज़ों को समेटे हुए है जहां तक इंसान की नज़र पहुंच सकती है जबकि इंसान की नज़र ख़ुद उस मालिक को नहीं देख सकती, ठोस इंसानी हरकत के रुप में विशेष प्रकार की इबादती क्रियाएं दरकार हैं। एक अल्लाह पर ईमान मोमिन से तक़ाज़ा करता है कि वह उसकी क़ुदरत और उसके करम को ज़हन में रखते हुए अपने रब से कलाम करे, और बन्दे व मालिक के बीच इस तरह का संचार अक़ीदे को परवान चढ़ाता और मज़बूत करता है (20:14; 87:14-15)। उपरोक्त आयतों में साफ तौर से ईमान को नमाज़ के साथ जोड़ा गया है। यह आयतें नमाज़ को "इनफ़ाक़" (अपने माल और संसाधनों को दूसरे जरूरतमंदों पर खर्च करने) से भी जोड़ती हैं, चाहे यह इनफ़ाक़ शरीरिक योग्यताओं का हो, बौद्धिक योग्यता का हो, नैतिक सहायता के रूप में हो या भौतिक रूप से हो। रोज़ाना पांच समय की नमाज़ को पाबन्दी से अदा करने को अल्लाह

से सच्ची तौबा का प्रतीक माना गया है (9:11)। नमाज़ पर जमे रहना और अल्लाह की सच्ची इबादत करते रहना सच्चे ईमान के उन दो पहलुओं को व्यवहारिक रूप देना है जो कि सूरत "अलफ़ातिहा" में बयान हुए हैं, एक केवल अल्लाह की इबादत करना और दूसरा केवल अल्लाह से ही मदद मांगना (1:5)।

قَالُوْا يٰشُعَيْبُ اَصَلٰوتُكَ تَاْمُرُكَ اَنْ نَّتْرُكَ مَا يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَآ اَوْ اَنْ نَّفْعَلَ فِيْٓ اَمْوَالِنَا مَا نَشٰٓؤُا ؕ اِنَّكَ لَاَنْتَ الْحَلِيْمُ الرَّشِيْدُ ﴿٨٧﴾

वो कहने लगे, ऐ शुऐब! क्या तुम्हारा तक़द्दुस तुम को तालीम देता है के हम उन चीज़ों को छोड़ दें जिनको हमारे बुज़ुग पूजते आए हैं या हम ये तर्क कर दें के हम अपने माल में जो चाहें तसर्रूफ़ करें, वाक़ई आप बहुत होशियार और दीन पर चलने वाले हैं। (11:87)

رَبَّنَآ اِنِّيْٓ اَسْكَنْتُ مِنْ ذُرِّيَّتِيْ بِوَادٍ غَيْرِ ذِيْ زَرْعٍ عِنْدَ بَيْتِكَ الْمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا لِيُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ اَفْئِدَةً مِّنَ النَّاسِ تَهْوِيْٓ اِلَيْهِمْ وَ ارْزُقْهُمْ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُوْنَ ﴿٣٧﴾

ऐ हमारे रब! मैंने अपनी औलाद को मैदान में जहां खेती नहीं होती तेरे मुक़द्दर घर के पास ला बसाया है, ऐ हमारे रब! ताके ये नमाज़ क़ायम करें, पस आप तो कुछ लोगों के दिलों को उनकी तरफ़ मायल कर दें, और मेवे खाने को अता फ़रमा दें ताके शुक्र करें। (14:37)

رَبِّ اجْعَلْنِيْ مُقِيْمَ الصَّلٰوةِ وَ مِنْ ذُرِّيَّتِيْ ۖ رَبَّنَا وَ تَقَبَّلْ دُعَآءِ ﴿٤٠﴾

ऐ मेरे रब! तू मुझे नमाज़ का क़ायम करने वाला बना, और मेरी औलाद में भी बाज़ को, ऐ हमारे रब! और मेरी दुआ क़बूल फ़रमा। (14:40)

وَ اذْكُرْ فِي الْكِتٰبِ اِسْمٰعِيْلَ ۫ اِنَّهٗ كَانَ صَادِقَ الْوَعْدِ وَ كَانَ رَسُوْلًا نَّبِيًّا ﴿٥٤﴾ وَ كَانَ يَاْمُرُ اَهْلَهٗ بِالصَّلٰوةِ وَ الزَّكٰوةِ ۪ وَ كَانَ عِنْدَ رَبِّهٖ مَرْضِيًّا ﴿٥٥﴾

और इस किताब में इसमाईल का भी ज़िक्र कीजिये, वो बेशक वादा के सच्चे थे, वो रसूल भी थे, और नबी भी थे। और वो अपने घर वालों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म करते थे, और अपने रब की नज़दीक पसंदीदा थे। (19:54-55)

وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ وَ ارْكَعُوْا مَعَ الرّٰكِعِيْنَ ﴿٤٣﴾

ओर नमाज़ को क़ायम रखते रहो, और ज़कात देते रहा करो और (नमाज़ में) झुकने वालों के साथ झुकते रहा करो। (2:43)

याद करो इसराईल की औलाद से हमने पक्का वादा लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना, माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के साथ, यतीमों, और मिस्कीनों के साथ नेक सुलूक करना, लोगों से भला बात कहना, नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब उस वादे से फिर गये और अब तक फिरे हुए हो। (2:83)

وَ اِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۫ وَ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ ذِي الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَ اَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ۝۸۳

और हमने उनको पेश्वा बनाया (और) हमारे हुक्म के मुताबिक़ हिदायत करते थे, और उनको नेक काम करने और नमाज़ पढ़ने और ज़कात देने का हुक्म दिया, और वो हमारी इबादत करते थे। (21:73)

وَ جَعَلْنٰهُمْ اَئِمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا وَ اَوْحَيْنَآ اِلَيْهِمْ فِعْلَ الْخَيْرٰتِ وَ اِقَامَ الصَّلٰوةِ وَ اِيْتَآءَ الزَّكٰوةِ ۚ وَ كَانُوْا لَنَا عٰبِدِيْنَ ۝۷۳

बिला शुबह मैं ही अल्लाह हूँ, मेरे सिवा कोई माबूद नहीं है तो तुम मेरी (20:14)

اِنَّنِيْٓ اَنَا اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنَا فَاعْبُدْنِيْ ۙ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِذِكْرِيْ ۝۱۴

और हमने मूसा और उसके भाई को व ही की के तुम अपने लोगों के लिये मिस्र में घर बनाओ, और अपने घरों को नमाज़ की जगह बनाओ, और नमाज़ पढ़ते रहो और मोमिनीन को ख़ुशख़बरी दे दें। (10:87)

وَ اَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰى وَ اَخِيْهِ اَنْ تَبَوَّاٰ لِقَوْمِكُمَا بِمِصْرَ بُيُوْتًا وَّ اجْعَلُوْا بُيُوْتَكُمْ قِبْلَةً وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ ؕ وَ بَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝۸۷

पस फ़रिश्तों ने उनसे पुकार कर कहा, जब वो मेहराब में खड़े नमाज़ पढ़ थे, के अल्लाह आपको खुशख़बरी देता है याहिया की जो कलमातुल्लाह की तसदीक़ करेंगे, मक़तदा होंगे, और अपने नफ़्स को लज़्ज़त से रोकने वाले होंगे, आला दर्जे के शाईस्ता नबी भी होंगे। (3:39)

فَنَادَتْهُ الْمَلٰٓئِكَةُ وَ هُوَ قَآئِمٌ يُّصَلِّيْ فِي الْمِحْرَابِ ۙ اَنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكَ بِيَحْيٰى مُصَدِّقًا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ سَيِّدًا وَّ حَصُوْرًا وَّ نَبِيًّا مِّنَ الصّٰلِحِيْنَ ۝۳۹

قَالَ اِنِّیۡ عَبۡدُ اللّٰہِ ۟ اٰتٰنِیَ الۡکِتٰبَ وَ جَعَلَنِیۡ نَبِیًّا ۙ﴿۳۰﴾ وَّ جَعَلَنِیۡ مُبٰرَکًا اَیۡنَ مَا کُنۡتُ ۪ وَ اَوۡصٰنِیۡ بِالصَّلٰوۃِ وَ الزَّکٰوۃِ مَا دُمۡتُ حَیًّا ۚ﴿۳۱﴾

बच्चे ने कहा, मैं अल्लाह का बन्दा हूँ, उसने मुझे किताब दी है, और नबी बनाया है। और मुझे बरकत वाला बनाया है, मैं जहां होंगा, और मुझे नमाज़ और ज़कात का हुक्म दिया है, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ। (19:30-31)

उपरोक्त आयतों से यह बात स्पष्ट है कि एक अल्लाह की इबादत करना (यानि अल्लाह के लिए नमाज़ पढ़ना), जिसमें इंसान अपने आप को अल्लाह के आगे पूरी तरह झुका देता है, मुहम्मद सल्ल० से पहले दूसरे पैग़म्बरों ने भी अपने अनुयायियों को सिखाई थी। अलग अलग शरीअतों में नमाज़ (सलात) का तरीका अलग अलग हो सकता है, लेकिन नमाज़ का मक़सद यानि अल्लाह के आग नतमस्तक होना (सजदा करना) और अल्लाह से दुआ करना कभी नहीं बदला। अल्लाह के आगे सिर झुकाने की इस क्रिया से एक तरफ़ तो मोमिन को वर्चस्वशाली होने की भावना जैसे घमण्ड, अहंकार, स्वार्थपूर्ति और लालच से बचाती है और दूसरी तरफ़ हीन भावना जैसे निराशा, मन का विचलित होना और निष्क्रियता से बचाती है। इसका प्रभाव साफ तौर से व्यक्ति के नैतिक आचरण, व्यवहार और सामाजिक सम्बंधों पर पडता है। हज़रत शुऐब के ज़माने में उत्तरी अरब के क्षेत्र 'मदयन' में बसने वाले लोगों ने यह महसूस कर लिया था कि एक अल्लाह की इबादत का प्रभाव उनके सामाजिक व आर्थिक व्यवहार पर पड़ता है और यह व्यक्तिवाद और भौतिकतावाद पर लगाम लगाती है (11:87)। हज़रत इब्राहीम ने मक्का में अल्लाह की इबादत का प्राचीन घर बनाया था और वहां अपनी संतान को बसाया था *"ताकि वो वहां नमाज की व्यवस्था बनाएं।"*। अरब की कुछ ऐतिहासिक कहावतों के अनुसार हज़रत मुहम्मद सल्ल० के पैग़म्बर बनने से पहले और इस्लाम की शुरूआत से पहले मक्का में तौहीद की इब्राहीमी शिक्षाओं और तौहीद पर आधारित इबादत के प्रतीक मौजूद थे, यद्यपि समाज पर शिर्क व बुत परस्ती छाई हुई थी।

इबादत के घर (काबा और मस्जिद)

وَ اِذۡ جَعَلۡنَا الۡبَیۡتَ مَثَابَۃً لِّلنَّاسِ وَ اَمۡنًا ؕ وَ اتَّخِذُوۡا مِنۡ مَّقَامِ اِبۡرٰہٖمَ مُصَلًّی ؕ وَ عَہِدۡنَاۤ اِلٰۤی اِبۡرٰہٖمَ وَ اِسۡمٰعِیۡلَ اَنۡ طَہِّرَا بَیۡتِیَ لِلطَّآئِفِیۡنَ وَ الۡعٰکِفِیۡنَ وَ الرُّکَّعِ

और जब हमने ख़ाना-ए-काबा को लोगों के लिए जमा होने और अमन पाने की जगह बनाया, और हुक्म दिया के तुम मुक़ामे इब्राहीम को नमाज़ की जगह बना लो। और इब्राहीम और इसमाईल से हम ने अहेद लिया के मेरे घर को तवाफ़ करने वालों और एतेकाफ़ करने

السُّجُوْدِ ﴿١٢٥﴾

वालों, रूकू करने वालों और सज्दा करने वालों के लिए साफ़ रखा करो। (2:125)

وَ اِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَ اِسْمٰعِيْلُ ؕ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ؕ اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿١٢٧﴾

और जब इब्राहीम और इसमाईल बैतुल्लाह की बुनियादें ऊँची कर रहे थे तो ये दुआ भी करते जाते थे के ऐ हमारे रब! ये हमारी ख़िदमत मंज़ूर फ़रमा, बिलाशुबह तू .ख़ूब सुनने वाला और .ख़ूब जानने वाला है। (2:127)

اِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّ هُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٦﴾ فِيْهِ اٰيٰتٌۢ بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرٰهِيْمَ ۚ۬ وَ مَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا ؕ وَ لِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ اِلَيْهِ سَبِيْلًا ؕ وَ مَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِىٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٧﴾

शक जो मकान लोगों के लिए सबसे पहले बनाया गया जो मक्का में है, वो बड़ा बाबर्कत और दुनिया जहान के लोगों के लिए मोजिबे हिदायत है। उसमें (हमारी) खुली निशानियां हैं, एक मुक़ामे इब्राहीम है जो उसमें दाख़िल हो जाए, अमन पाए, और अल्लाह के लिए उस घर का लोगों के ज़िम्मे हज है जो वहां तक पहुंच जाने की ताक़त व सकत रखता हो, और जो इन्कार करे, तो अल्लाह बे परवाह है, दुनिया जहान वालों से। (3:96-97)

وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَ سَعٰى فِىْ خَرَابِهَا ؕ اُولٰٓئِكَ مَا كَانَ لَهُمْ اَنْ يَّدْخُلُوْهَاۤ اِلَّا خَآئِفِيْنَ ؕ لَهُمْ فِى الدُّنْيَا خِزْىٌ وَّ لَهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١١٤﴾

और उनसे ज़्यादा और कौन ज़ालिम हो सकता है के जो मस्जिदों में अल्लाह के ज़िक्र को मना करे और उनकी वीरानी की कोशिश करे। उनको कोई हक़ नहीं के वो उनमं दाख़िल हों मगर डरते हुए, ऐसे लोगों को दुनिया में भी रुसवाई है। और आख़िरत में बड़ा अज़ाब है। (2:114)

قُلْ اَمَرَ رَبِّىْ بِالْقِسْطِ ۫ وَ اَقِيْمُوْا وُجُوْهَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّ ادْعُوْهُ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ؕ كَمَا بَدَاَكُمْ تَعُوْدُوْنَ ﴿٢٩﴾ ؕ

आप ये फ़रमा दिजिये के मेरे रब ने इन्साफ़ करने का हुक्म दिया है, और ये भी हुक्म दिया है के हर सजदा करने के वक़्त तुम अपना रूख सीधा कर लिया करो और अल्लाह की इबादत भी .ख़ालिस अल्लाह ही के लिए किया करो, अल्लाह ने जिस तरह तुमको शुरू में

पैदा किया था उसी तरह तुम दोबारा भी पैदा होंगे।
(7:29)

يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّ كُلُوْا وَ اشْرَبُوْا وَ لَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ﴿۳۱﴾

ऐ औलादे आदम! तुम अपना लिबास पहने लिया करो जब भी तुम (नमाज़ के लिए) मस्जिद जाया करो, और ख़ूब खाओ और पियो, और हद से आगे मत निकला, बिला शुबह अल्लाह हद से आगे निकलने वालों को महबूब नहीं रखता। (7:31)

اِنَّمَا يَعْمُرُ مَسٰجِدَ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ اَقَامَ الصَّلٰوةَ وَ اٰتَى الزَّكٰوةَ وَ لَمْ يَخْشَ اِلَّا اللّٰهَ فَعَسٰۤى اُولٰٓئِكَ اَنْ يَّكُوْنُوْا مِنَ الْمُهْتَدِيْنَ ﴿۱۸﴾

बेशक अल्लाह की मस्जिदों को वो ही आबाद करते हैं, जो अल्लाह पर और रोज़े आख़िरत पर ईमान लायें और नमाज़ की पाबंदी करें, और ज़कात दें, और अल्लाह के सिवा किसी से ना डरें, यही लोग तवक़्क़ो है अपनी मंज़िल पर पहुंचने वाले हैं। (9:18)

وَ الَّذِيْنَ اتَّخَذُوْا مَسْجِدًا ضِرَارًا وَّ كُفْرًا وَّ تَفْرِيْقًۢا بَيْنَ الْمُؤْمِنِيْنَ وَ اِرْصَادًا لِّمَنْ حَارَبَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ مِنْ قَبْلُ ؕ وَ لَيَحْلِفُنَّ اِنْ اَرَدْنَاۤ اِلَّا الْحُسْنٰى ؕ وَ اللّٰهُ يَشْهَدُ اِنَّهُمْ لَكٰذِبُوْنَ ﴿۱۰۷﴾ لَا تَقُمْ فِيْهِ اَبَدًا ؕ لَمَسْجِدٌ اُسِّسَ عَلَى التَّقْوٰى مِنْ اَوَّلِ يَوْمٍ اَحَقُّ اَنْ تَقُوْمَ فِيْهِ ؕ فِيْهِ رِجَالٌ يُّحِبُّوْنَ اَنْ يَّتَطَهَّرُوْا ؕ وَ اللّٰهُ يُحِبُّ الْمُطَّهِّرِيْنَ ﴿۱۰۸﴾ اَفَمَنْ اَسَّسَ بُنْيَانَهٗ عَلٰى تَقْوٰى مِنَ اللّٰهِ وَ رِضْوَانٍ خَيْرٌ اَمْ مَّنْ اَسَّسَ بُنْيَانَهٗ عَلٰى شَفَا جُرُفٍ هَارٍ

और उनमें वो भी हैं जो मस्जिद बनाते हैं (महज़ मुसलमानों को) नुक़सान पहुंचाने के लिये, और कुफ़्र करने के लिये, और मोमिनीन में तफ़र्रूक़ा डालने के लिये, और जो अशख़ास अल्लाह और रसूल से पहले जंग कर चुके हैं, उनके लिये घात की जगह बनाने के लिये, और क़समें खायेंगे के हमारा मक़सद तो भलाई था, मगर अल्लाह गवाही देता है के वो झूटे हैं। आप उस मस्जिद में कभी ना खड़े हों, अलबत्ता वो मस्जिद जिस की बुनियाद अव्वल दिन से तक़वे पर ही रखी गई हो वो इस लायक़ है के आप उसमें नमाज़ के लिये खड़े हों, उसमें ऐसे आदमी हैं जो पाकी को पसंद करते हैं और अल्लाह ख़ूब पाक रहने वालों को पसंद करता है। फ़िर आया वो शख़्स बेहतर है, जिसने अपनी इमारत की बुनियाद अल्लाह से डरने पर और अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिये रखी हो या वो शख़्स जिसने अपनी इमारत की बुनियाद

فَانْهَارَ بِهٖ فِیْ نَارِ جَهَنَّمَ ؕ وَ اللّٰهُ لَا یَهْدِی الْقَوْمَ الظّٰلِمِیْنَ ﴿۱۰۹﴾

किसी घाटी के किनारे पर जो गिरने वाली हो, रखी हो फ़िर वो इमारत उसको लिये दोज़ख की आग में गिर पड़े, और अल्लाह ऐसे ज़ालिमों को समझ नहीं देता। (9:107-109)

سُبْحٰنَ الَّذِیْۤ اَسْرٰی بِعَبْدِهٖ لَیْلًا مِّنَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اِلَی الْمَسْجِدِ الْاَقْصَا الَّذِیْ بٰرَكْنَا حَوْلَهٗ لِنُرِیَهٗ مِنْ اٰیٰتِنَا ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِیْعُ الْبَصِیْرُ ﴿۱﴾

वो पाक ज़ात है जो रात के एक हिस्से में अपने बन्दे को मस्जिदे हराम से मस्जिदे अक़्सा तक ले गया जिसके चारों तरफ़ हमने अपनी बरकतें रखी हैं, ताके हम उसको अपनी क़ुदरत की निशानियां दिखायें, बेशक वही ख़ूब सुनने वाला और देखने वाला है। (17:1)

اِنْ اَحْسَنْتُمْ اَحْسَنْتُمْ لِاَنْفُسِكُمْ ۫ وَ اِنْ اَسَاْتُمْ فَلَهَا ؕ فَاِذَا جَآءَ وَعْدُ الْاٰخِرَةِ لِیَسُوْٓءٗا وُجُوْهَكُمْ وَ لِیَدْخُلُوا الْمَسْجِدَ كَمَا دَخَلُوْهُ اَوَّلَ مَرَّةٍ وَّ لِیُتَبِّرُوْا مَا عَلَوْا تَتْبِیْرًا ﴿۷﴾

अगर तुम नेकी करोगे तो अपनी जानों के लिये नेकी करोगे, अगर तुम बुरे काम करोगे तो अपने ही लिये, फ़िर जब दूसरे वादे का वक़्त आ गया तो हमने फ़िर अपने बन्दे भेजे ताके वो तुम्हारे चेहरों को बिगाड़ दें, और जिस तरह पहली मर्तबा मस्जिद में दाख़िल हुए थे, उसी तरह फ़िर दाख़िल हो जायें, और जिस चीज़ पर ग़ल्बा पायें उसे तबाह कर दें। (17:7)

وَ كَذٰلِكَ اَعْثَرْنَا عَلَیْهِمْ لِیَعْلَمُوْۤا اَنَّ وَعْدَ اللّٰهِ حَقٌّ وَّ اَنَّ السَّاعَةَ لَا رَیْبَ فِیْهَا ؕ اِذْ یَتَنَازَعُوْنَ بَیْنَهُمْ اَمْرَهُمْ فَقَالُوا ابْنُوْا عَلَیْهِمْ بُنْیَانًا ؕ رَبُّهُمْ اَعْلَمُ بِهِمْ ؕ قَالَ الَّذِیْنَ غَلَبُوْا عَلٰۤی اَمْرِهِمْ لَنَتَّخِذَنَّ عَلَیْهِمْ مَّسْجِدًا ﴿۲۱﴾

और इस तरह हमने लोगों को उनके हाल से ख़बरदार कर दिया था ताके वो जान लें के अल्लाह का वादा सच्चा है, और ये क़यामत के बारे में ज़रा शक नहीं करते, जब ये आपस में उनके बारे में झगड़ रहे थे तो इन लोगों ने कहा उनके पास एक इमारत बना दो, उनका रब उनके हाल से ख़ूब वाक़िफ़ है जो लोग अपने काम पर ग़ल्बा रखते थे उन्होंने कहा के हम उनके ग़ार के पास मस्जिद बनायेंगे। (18:21)

فَخَرَجَ عَلٰی قَوْمِهٖ مِنَ الْمِحْرَابِ فَاَوْحٰۤی

फ़िर ज़क्रिया (एक दिन) हुज्रे से बाहर आये अपनी क़ौम

اِلَيۡهِمۡ اَنۡ سَبِّحُوۡا بُكۡرَةً وَّ عَشِيًّا ﴿۱۱﴾

के पास और उनको इशारे से कहा के तुम सुबह व शाम अपने अल्लाह की पाकी बयान किया करो। (19:11)

فَتَقَبَّلَهَا رَبُّهَا بِقَبُوۡلٍ حَسَنٍ وَّ اَنۡۢبَتَهَا نَبَاتًا حَسَنًا ۙ وَّ كَفَّلَهَا زَكَرِيَّا ؕ كُلَّمَا دَخَلَ عَلَيۡهَا زَكَرِيَّا الۡمِحۡرَابَ ۙ وَجَدَ عِنۡدَهَا رِزۡقًا ۚ قَالَ يٰمَرۡيَمُ اَنّٰى لَكِ هٰذَا ؕ قَالَتۡ هُوَ مِنۡ عِنۡدِ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَرۡزُقُ مَنۡ يَّشَآءُ بِغَيۡرِ حِسَابٍ ﴿۳۷﴾

पस उनको उनके रब ने हुस्ने क़बूल के साथ क़बूल किया, और उनके बेहतरीन तरीक़ा परवरिश किया, और ज़क्रिया (अ.स.) को उनका सरपरस्त बनाया। जब कभी ज़क्रिया उनके पास उम्दा मकान में आते तो उनके पास कुछ खाने पीने की चीज़ें पाते। और कहा करते ऐ मरयम! ये चीज़ें तुम्हारे पास कहां से आईं, वो कहतीं के अल्लाह के पास से आईं, बिला शुबह अल्लाह जिसको चाहता है रिज़्क़ बेहिसाब अता फ़रमाता है। (3:73)

فَنَادَتۡهُ الۡمَلٰٓئِكَةُ وَ هُوَ قَآئِمٌ يُّصَلِّىۡ فِى الۡمِحۡرَابِ ۙ اَنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكَ بِيَحۡيٰى مُصَدِّقًا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَسَيِّدًا وَّ حَصُوۡرًا وَّ نَبِيًّا مِّنَ الصّٰلِحِيۡنَ ﴿۳۹﴾

पस फ़रिश्तों ने उनसे पुकार कर कहा, जब वो मेहराब में खड़े नमाज़ पढ़ थे, के अल्लाह आपको खुशख़बरी देता है याहिया की जो कलमातुल्लाह की तसदीक़ करेंगे, मक़तदा होंगे, और अपने नफ़्स को लज़्ज़त से रोकने वाले होंगे, आला दर्जे के शाईस्ता नबी भी होंगे। (3:39)

وَهَلۡ اَتٰىكَ نَبَؤُا الۡخَصۡمِ ۘ اِذۡ تَسَوَّرُوا الۡمِحۡرَابَ ﴿۲۱﴾ ۙ اِذۡ دَخَلُوۡا عَلٰى دَاوٗدَ فَفَزِعَ مِنۡهُمۡ ؕ قَالُوۡا لَا تَخَفۡ ۚ خَصۡمٰنِ بَغٰى بَعۡضُنَا عَلٰى بَعۡضٍ فَاحۡكُمۡ بَيۡنَنَا بِالۡحَقِّ وَ لَا تُشۡطِطۡ وَاهۡدِنَاۤ اِلٰى سَوَآءِ الصِّرَاطِ ﴿۲۲﴾

और क्या आपके पास उन झगड़ने वालों की ख़बर आई, जब वो दीवार फ़ांद कर आये इबादतखाने की तरफ़। जब वो दाऊद के पास अन्दर दाख़िल हुए, तो वो उनसे घबरा गए, उन्होंने कहा, आप डरिये नहीं, हम दोनों का एक मुक़दमा है, हम में से एक ने दूसरे पर ज़्यादती की है तो आप हम में इन्साफ़ से फ़ैसला कर दीजिये, और आप बेइन्साफ़ी ना कीजियेगा, और हम को सीधी राह दिखा दीजिये। (38:21-22)

وَّ اَنَّ الْمَسٰجِدَ لِلّٰهِ فَلَا تَدْعُوْا مَعَ اللّٰهِ اَحَدًا ﴿۱۸﴾

और ये के मसजिदें ख़ास अल्लाह की हैं तो अल्लाह के सिवा किसी और की इबादत ना किया करो। (72:18)

اِلَّذِيْنَ اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ بِغَيْرِ حَقٍّ اِلَّآ اَنْ يَّقُوْلُوْا رَبُّنَا اللّٰهُ ؕ وَ لَوْ لَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَ بِيَعٌ وَّ صَلَوٰتٌ وَّ مَسٰجِدُ يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيْرًا ؕ وَ لَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِيٌّ عَزِيْزٌ ﴿۴۰﴾

जो नाहक़ अपने घरों से निकाल दिये गए हैं, उन्होंने कोई क़सूर नहीं किया, सिवाय इसके के ये कहते हैं के हमारा रब अल्लाह है, अगर अल्लाह उनको एक दूसरे से ना बचाता तो राहिबों के सौमए, ईसाइयों के गिर्जे और यहूदियों के इबादतख़ाने और मुसलमानों की मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है गिराई जा चुकी होतीं, और जो अल्लाह की मदद करता है, अल्लाह उसकी ज़रूर मदद करता है, बिला शुबह अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला और बड़ा ग़ल्बा रखने वाला है। (22:40)

فِيْ بُيُوْتٍ اَذِنَ اللّٰهُ اَنْ تُرْفَعَ وَ يُذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ ۙ يُسَبِّحُ لَهٗ فِيْهَا بِالْغُدُوِّ وَ الْاٰصَالِ ﴿۳۶﴾ رِجَالٌ ۙ لَّا تُلْهِيْهِمْ تِجَارَةٌ وَّ لَا بَيْعٌ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَ اِقَامِ الصَّلٰوةِ وَ اِيْتَآءِ الزَّكٰوةِ ۪ يَخَافُوْنَ يَوْمًا تَتَقَلَّبُ فِيْهِ الْقُلُوْبُ وَ الْاَبْصَارُ ﴿۳۷﴾

वो क़नदील उन घरों में है जिनके बारे में ख़ुदा ने इरशाद फ़रमाया है के बुलंद किये जायें, और वो वहां ख़ुदा के नाम का ज़िक्र किया जाए, और सुबह व शाम उसकी तसबीह करते हैं। ऐसे लोग जिनको अल्लाह के ज़िक्र से, और नमाज़ पढ़ने से, और ज़कात देने से ना तो तिजारत ग़ाफ़िल रखती है और ना ही ख़रीदो फ़रोख़्त, वो उस दिन से डरते हैं जिसमें दिल और आंखे खौफ़ और घबराहट से उलट जायेगी। (24:36-37)

सामूहिक इबादत और उसके लिए पाक साफ होने और अपने कर्मों को सुधारने का सिलसिला सम्भवतः हज़रत इब्राहीम के समय से चला आ रहा है जिन्होंने अपने बेटे हज़रत इस्माईल के साथ मिल कर मक्का में अल्लाह की इबादत का प्राचीन घर 'काबा' बनाया था (2:125,127(3:96-97)। अरबी का शब्द मस्जिद जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद डवेुनम किया जाता है और इस्लाम में इबादत के घर के लिए इस्तेमाल होता है, का मतलब उसके भाषाई मूल में किसी भी ऐसे स्थान से है जो अल्लाह की इबादत के लिए निर्धारित कर लिया जाए और वहां उसके आगे सजदा और रकूअ (नतमस्तक होना और घुटनों पर झुकना) किया जाए जिससे

अल्लाह की महानता के आगे स्वयं को झुका देने और उसकी बख़्शिशों और कृपा के लिए उसके आभारी होने का इज़हार हो। क़ुरआन में कुछ जगहों पर मस्जिद शब्द का उपयोग उसके साधारण और व्यापक दोनों अर्थों में किया गया है (जैसे 7:29,31(17:7(18:12)। मदीना में मुनाफ़िक़ो ने मुसलमानों में बिखराव और अंधविश्वास फैलाने के लिए जो इबादतगाह बनाई थी उसे भी क़ुरआन में मस्जिद ही कहा गया है इस शब्द के आम अर्थ के लिहाज़ से, लेकिन इस मस्जिद के लिए ''मस्जिद ज़रार'' (नुक़सान पहुंचाने वाली मस्जिदे) का शब्द इस्तेमाल किया गया।

क़ुरआन में इबादत की जगह के लिए एक शब्द 'महराब' भी इस्तेमाल हुआ है जो पैग़म्बर दाऊद, ज़करिया और पैग़म्बर ईसा की मां मरियम के संदर्भ में आया है (38:21-22(3:37-39(19:11)। यह शब्द बाद में इबादत की दिशा के लिए उपयोग होने लगा लेकिन शब्दार्थ के लिहाज से इसका मतलब किसी कमरे (इबादत कक्ष) के आगे का भाग होता है। क़ुरआन में ''बैतुल्लाह'' शब्द का उपयोग भी किया गया है (देखें 24:36-38)। यह नाम अल्लाह के उस घर ('काबा') को दिया गया था जो हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने मक्का में बनाया था जिसे अरबी में 'हरम' कहा जाता है जिसका मतलब होता है पवित्र और आदर्णीय जगह।

चूंकि इबादत के घरों को बैतुल्लाह (अल्लाह का घर) कहा गया है (बैत का बहु वचन ब्यूत है), इसलिए उन्हें क़ानूनी रूप से ऐसा सार्वजिनिक स्थल माना जाता है जो अल्लाह की इबादत (नमाज़) के लिए विशेष किया गया हो या बनाया गया हो चाहे उस जगह की ख़रीदारी और निर्माण व्यक्तिगतगत माल से ही किया गया हो। इस्लामी फ़िक्ह (विधि शास्त्र) में अल्लाह के हक़ से अभिप्राय समाज के सामूहिक अधिकार लिया गया है व्यक्तिगत या निजी हक़ के विपरीत। अल्लाह के घरों को उनके मकसद व लक्ष्यों के विपरीत किसी मक़सद के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता (72:18), मिसाल के लिए किसी के निजी प्रचार या प्रशंसा के लिए या अक़ीदे के विपरीत किसी विचार के प्रचार के लिए। यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उपरोक्त आयत 22:40 में अल्लाह के घरों का ज़िक्र विभिन्न धर्मों के पूजा स्थलों के साथ किया गया है इस लिहाज़ से वो भी धार्मिक श्रद्धा और आदर के केन्द्र होते हैं।

नमाज़ का सम्बंध सब्र (धैर्य) से

وَ اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَ الصَّلٰوةِ ؕ وَ اِنَّهَا لَكَبِيْرَةٌ اِلَّا عَلَى الْخٰشِعِيْنَ ۙ الَّذِيْنَ

और सब्र और नमाज़ के ज़रिये मदद तलब करते रहा करो, और बिला शुबहः ये गिराँ (गुज़रता) है मगर ख़ुशू करने वालों पर नहीं। जो ये ख़्याल रखते हैं के उनको

يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ وَ اَنَّهُمْ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ﴿٤٦﴾

अपने रब से मुलाक़ात करनी है और उसी के पास वापस जाना है। (2:45-46)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَ الصَّلٰوةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٥٣﴾ وَ لَا تَقُوْلُوْا لِمَنْ يُّقْتَلُ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتٌ ؕ بَلْ اَحْيَآءٌ وَّ لٰكِنْ لَّا تَشْعُرُوْنَ ﴿١٥٤﴾ وَ لَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَ الْجُوْعِ وَ نَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَ الْاَنْفُسِ وَ الثَّمَرٰتِ ؕ وَ بَشِّرِ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٥٥﴾ الَّذِيْنَ اِذَاۤ اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ ۙ قَالُوْۤا اِنَّا لِلّٰهِ وَ اِنَّاۤ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ﴿١٥٦﴾ اُولٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوٰتٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ رَحْمَةٌ ۟ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُوْنَ ﴿١٥٧﴾

ऐ मोमिनों! तुम सब्र और नमाज़ के ज़रिये मेरी मदद हासिल करो, बिलाशुबह अल्लाह साबरीन के साथ है। जो अल्लाह के रास्ते में क़त्ल हो जाते हैं तो उनके बारे में ये ना कहा करो के वो मुर्दा हैं बलके (वो तो एक मोअज्ज़िज़ और मुमताज़ हयात के साथ) ज़िंदा हैं। लेकिन तुम अपने इन हवास से उस ज़िन्छगी का इदराक नहीं कर सकते। और हम तुम को आज़मायेंगे कभी ख़ौफ़ से, कभी भूक से, कभी माल में नुक़सान से, कभी जान के नुक़सान से, और कभी फलों में नुक़सान से (वग़ैरा) ऐ नबी (स.अ.स.)! तुम बशारत सुना दो साबरीन को। के जब उन पर कोई मुसीबत आती है तो कहते हैं के हम सब तो अल्लाह ही की मिल्कियत हैं, और हम उसी की तरफ़ लौट जाने वाले हैं। और साबरीन ही तो हैं जिनके ऊपर उनके रब की तरफ़ से ख़ास ख़ास रहमतें होंगी और आम रहमतें भी और यही तो अपने अल्लाह के रास्ते पर चलने वाले हैं। (2:153-157)

اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ هُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَ اِذَا قَامُوْۤا اِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ النَّاسَ وَ لَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿١٤٢﴾

बिलाशुबहः मुनाफ़िक़ लोग अल्लाह को धोका देते हैं, वो उस चाल की उनको सज़ा देने वाला है, और जब वो नमाज़ को खड़े होते हैं तो बहुत काहिली के साथ खड़े होते हैं, सिर्फ़ आदमियों को दिखाते हैं, और अल्लाह का ज़िक्र नहीं करते, मगर बहुत ही मुख़्तसर। (4:142)

وَ مَا مَنَعَهُمْ اَنْ تُقْبَلَ مِنْهُمْ نَفَقٰتُهُمْ اِلَّاۤ اَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاللّٰهِ وَ بِرَسُوْلِهٖ وَ لَا يَاْتُوْنَ الصَّلٰوةَ اِلَّا وَ هُمْ كُسَالٰى وَ لَا

और कोई चीज़ माने नहीं है इस बात के लिए के उनका ख़ैर ख़रात क़बूल हो जाये सिवाये इसके के उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल को नहीं माना, और नमाज़ को नहीं आते मगर सुस्त होकर, और ख़र्च नहीं करते मगर

يُنْفِقُوْنَ اِلَّا وَهُمْ كٰرِهُوْنَ ﴿٥٤﴾

नाख़ुशी से। (9:54)

وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ طَرَفَيِ النَّهَارِ وَ زُلَفًا مِّنَ الَّيْلِ ؕ اِنَّ الْحَسَنٰتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّاٰتِ ؕ ذٰلِكَ ذِكْرٰى لِلذّٰكِرِيْنَ ﴿١١٤﴾ وَاصْبِرْ فَاِنَّ اللّٰهَ لَا يُضِيْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿١١٥﴾

और दिन के दोनों सिरों (यानी सुबह व शाम) और रात के कुछ हिस्सों में नमाज़ पढ़ा करो, बेशक नेकियां बुराईयों को दूर कर देती हैं, ये नसीहत मानने वालों के लिये। और सब्र किया करो के अल्लाह नेक बन्दों का बदला ज़ाय नहीं किया करता। (11:114-115)

وَ الَّذِيْنَ صَبَرُوا ابْتِغَآءَ وَجْهِ رَبِّهِمْ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ سِرًّا وَّ عَلَانِيَةً وَّ يَدْرَءُوْنَ بِالْحَسَنَةِ السَّيِّئَةَ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عُقْبَى الدَّارِ ﴿٢٢﴾

और ये लोग ऐसे हैं के अपने रब की रज़ा की तलाश में सब्र करते हैं, और नमाज़ों को पाबंदी से अदा करते हैं, और जो रिज़्क़ हमने उनको दिया है उसमें से चुपके से भी और ज़ाहिर भी (हमारी राह में) ख़र्च करते हैं, और बदसलूकी को हुस्ने सलूक से टाल देते हैं इस जहान में उन ही लोगों का नेक अंजाम है। (13:22)

رَبُّ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ وَ مَا بَيْنَهُمَا فَاعْبُدْهُ وَ اصْطَبِرْ لِعِبَادَتِهٖ ؕ هَلْ تَعْلَمُ لَهٗ سَمِيًّا ﴿٦٥﴾

आसमानों और ज़मीन, और जो उन दोनों में हैं सबका रब अल्लाह ही है, तो उसी की इबादत किया करो, और उसी की इबादत पर क़ायम रहो, क्या तुम किसी को उस का हम नाम पाते हो। (19:65)

وَ اْمُرْ اَهْلَكَ بِالصَّلٰوةِ وَ اصْطَبِرْ عَلَيْهَا ؕ لَا نَسْـَٔلُكَ رِزْقًا ؕ نَحْنُ نَرْزُقُكَ ؕ وَ الْعَاقِبَةُ لِلتَّقْوٰى ﴿١٣٢﴾

और अपने घर वालों को नमाज़ का हुक्म किया कीजिये, और ख़ुद भी उसकी पाबंदी रखें, हम आपसे रोज़ी के तालिब नहीं हैं रोज़ी तो हम आपको देते हैं, और नेक अंजाम तो तक़वा और परहेज़गारी का है। (20:132)

الَّذِيْنَ اِذَا ذُكِرَ اللّٰهُ وَجِلَتْ قُلُوْبُهُمْ وَ الصّٰبِرِيْنَ عَلٰى مَاۤ اَصَابَهُمْ وَ الْمُقِيْمِى الصَّلٰوةِ ۙ وَ مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ﴿٣٥﴾

ये वो हैं के जब उनके सामने अल्लाह का ज़िक्र किया जाता है तो उनके दिल डर जाते हैं और उन मुसीबतों पर जो उन पर पड़ती हैं सब्र करते हैं और नमाज़ आदाब के साथ अदा करते हैं और जो माल हमने उनको दिया है

उसमें से (नेक कामों में) खर्च करते हैं। (22:35)

आयत 2:45 में नमाज़ का सम्बंध सब्र (धैर्य व संयम) से जोड़ा गया है। ये चीज़ें एक दूसरे को शक्ति देती हैं और एक दूसरे के साथ मिल कर काम करती हैं। सब्र से स्थिरता को बल मिलता है और इस तरह यह अल्लाह से संवाद करने और इस संवाद को सफ़ल बनाने लिए अनुकूल स्थिति उपलब्ध कराता है। इसके अतरिक्त इस संवाद से जो शान्ति मिलती है उससे स्वयं सब्र (धैर्य) की स्थिति बढ़ती और परवान चढ़ती है। ऊपर की आयत में चार बार सब्र का ज़िक्र नमाज़ से पहले किया गया है और तीन बार नमाज़ के बाद, और ये दोनों दुनिया के उतार चढ़ाव का सामना करने के लिए एक दूसरे के साथ अनिवार्य हैं। सब्र और नमाज़ के द्वारा आदमी कामयाबी और शक्ति की स्थिति में स्थिर और संतुलित रहता है और असफलता व कमज़ोरी की स्थिति में संयम और अडिगता से काम लेता है। इस तरह अल्लाह के साथ संवाद करना इंसान को स्वयं पर काबू पाने और जीवन का सामना सकारात्मक रूप से करने के योग्य बनाता और इससे बदलती हुई स्थितियों में सूझबूझ और संतुलित ढंग से काम करने की योग्यता प्राप्त होती है, और ग़ुस्सा, घमण्ड या निराशा की स्थिति में वह त्वरित प्रतिक्रिया से बचता है। ऐसे लोग जीवन में सही राह पर हैं और आत्मविश्वास और अल्लाह की मदद से लाभान्वित होते हैं। नमाज़ के लिए उनके समय की पाबन्दी, पाकी व सफाई और नियंत्रित व व्यवस्थित क्रियाएँ ज़रूरी हैं और इन चीज़ों की बदौलत मोमिन में सब्र पैदा होता है। लेकिन नमाज़ के इन ज़ाहिरी रूपों और गुणों से परे जो चीज़ है वह है सीमित योग्यताओं वाले इंसान का यह अहसास कि वह अपने सीमित ज्ञान और सामर्थ्य (ताक़त) के साथ उस असीमित हस्ती से संवाद कर रहा है जिसे हर चीज़ की जानकारी है और जो हर चीज़ पर क़ुदरत रखती है। नमाज़ें दिन के अलग अलग समय और साप्ताहिक या वार्षिक अवसर पर अदा की जाती हैं, और वैश्विक सम्मेलन (हज) में जीवन में एक बार अनिवार्य की गयी शिरकत के दौरान अदा की जाती हैं, और इस तरह वह अपने मुस्तक़िल प्रभाव रखती हैं और ये प्रभाव आदमी के पूरे जीवन में उस पर पडते रहते हैं। अगर नमाज़ के मक़सद पर नजर रखी जाए तो इससे मनोवैज्ञानिक, नैतिक और व्यवहारिक नतीजे प्राप्त होते हैं, लेकिन ये नतीजे उन लोगों को प्राप्त नहीं हो सकते जो केवल मशीनी ढंग से या दिखावे की नमाज़ पढते हैं, नमाज़ को खड़े होते है:"जो नमाज की तरफ से निश्चिंत रहते हैं, दिखावा करते हैं और साधारण उपयोग की चीजें एक दूसरे को उपयोग करने के लिए नहीं देते" (107:4-7)।

नमाज़ का सम्बंध अच्छे कामों से

وَ جَعَلْنٰهُمْ اَىِٕمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا وَ اَوْحَيْنَاۤ اِلَيْهِمْ فِعْلَ الْخَيْرٰتِ وَ اِقَامَ الصَّلٰوةِ وَ اِيْتَآءَ الزَّكٰوةِ ۚ وَ كَانُوْا لَنَا عٰبِدِيْنَ ﴿۷۳﴾

और हमने उनको पेश्वा बनाया (और) हमारे हुक्म के मुताबिक़ हिदायत करते थे, और उनको नेक काम करने और नमाज़ पढ़ने और ज़कात देने का हुक्म दिया, और वो हमारी इबादत करते थे। (21:73)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ارْكَعُوْا وَ اسْجُدُوْا وَ اعْبُدُوْا رَبَّكُمْ وَ افْعَلُوا الْخَيْرَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۷۷﴾

मोमिनों! रूकू करते रहो, सज्दा करते रहो, और अपने रब की इबादत करते रहो, और नेक काम किया करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। (22:77)

اُتْلُ مَاۤ اُوْحِىَ اِلَيْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لَذِكْرُ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ وَ اللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ ﴿۴۵﴾

(ऐ नबी) आप इस किताब को पढ़ा कीजिये, जो आप पर वही की गई है, और नमाज़ की पाबंदी कीजिये, यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है, और अल्लाह का ज़िक्र बहुत बड़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29:45)

فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّيْنَ ۙ﴿۴﴾ الَّذِيْنَ هُمْ عَنْ صَلَاتِهِمْ سَاهُوْنَ ۙ﴿۵﴾ الَّذِيْنَ هُمْ يُرَآءُوْنَ ۙ﴿۶﴾

अल्लाह की तरफ़ रूजू होकर, और उससे रहो, नमाज़ की पाबंदी करो, और शिर्क करने वालों में से ना होना। उनमें जिन्होंने अपने दीन को टुकड़े टुकड़े कर लिया, और मुख़्तलिफ़ फ़िर्क़े हो गए, हर फ़िर्क़ा उससे ख़ुश है जो उनके पास है। (30:31-32)

مُنِيْبِيْنَ اِلَيْهِ وَ اتَّقُوْهُ وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ لَا تَكُوْنُوْا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۙ﴿۳۱﴾ مُنِيْبِيْنَ اِلَيْهِ وَ اتَّقُوْهُ وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ لَا تَكُوْنُوْا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۙ﴿۳۲﴾

बिला शुबह इन्सान कम हौसला पैदा हुआ है। जब उसे तकलीफ़ पहुंचती है तो घबरा उठता है। और जब आसाईश हासिल होती है तो बख़ील बन जाता है। मगर नमाज़ गुज़ार। जो नमाज़ का एहतमाम करते और बिला नाग़ा पढ़ते हैं। (70:19-23)

إِنَّ الْإِنسَانَ خُلِقَ هَلُوعًا ﴿١٩﴾ إِذَا مَسَّهُ الشَّرُّ جَزُوعًا ﴿٢٠﴾ وَإِذَا مَسَّهُ الْخَيْرُ مَنُوعًا ﴿٢١﴾ إِلَّا الْمُصَلِّينَ ﴿٢٢﴾ الَّذِينَ هُمْ عَلَىٰ صَلَاتِهِمْ دَائِمُونَ ﴿٢٣﴾

तो ऐसे नमाज़ियों के लिये ख़राबी है। जो अपनी न मज़ा की तरफ़ से ग़ाफ़िल रहते हैं। और ऐसे हैं के (लोगों को) दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ते हैं। और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें मांगने पर भी नहीं देते (यानी आरज़ी तौर पर) (107:4-7)

अगर नमाज़ पाबन्दी से और सही ढंग से अदा की जाती रहे तो इससे मोमिन के अन्दर तक़वा (अल्लाह से सम्बंध की भावना) पैदा होती है और अच्छा बनने, अच्छी बात कहने और सभी लोगों से अच्छे ढंग से मिलने की प्रेरणा मिलती है। नमाज़ें चूंकि पूरे दिन में अलग अलग समय में पढ़ी जाती हैं इसलिए नमाज़ के पाबन्द मोमिन को हर समय यह ख़्याल रहता है कि वह अल्लाह के समक्ष हाज़िर हो कर आया है और अभी फिर हाज़िर होना है। नमाज़ों के बीच इतना लम्बा समय नहीं बीतता है कि नमाज़ पाबन्दी से अदा करने वाला अल्लाह से निडर हो जाए। साप्ताहिक और वार्षिक अन्तराल पर पढ़ी जाने वाली विशेष नमाज़ें आत्मा को ताज़ा करती हैं और अच्छे कामों के लिए प्रेरक बनती हैं और बुरे कामों से रोकती हैं (29:45(70:19-23)। उपरोक्त आयतें इस बात को उजागर करती हैं कि नमाज़ का सम्बंध अच्छे कामों से जुड़ा हुआ है। जिन नमाज़ों से नमाज़ पढने वाले को अच्छे काम करने और बुरे कामों से बचने की प्रेरणा न मिले वो ऐसी नमाज़े हैं जो केवल मशीनी रूप से अदा की जाती हैं (30:31-32(107:4-7)। अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल० ने ख़बरदार किया है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो रात को नमाज़ पढ़ते हैं लेकिन उन्हें इस नमाज़ से जागने के अलावा कुछ प्राप्त नहीं होता और कुछ रोज़ा रखने वाले ऐसे हैं कि उन्हें इन रोज़ों से भूखा और प्यासा रहने के अलावा कुछ नहीं मिलता। (इब्ने हंबल, मुस्तदरक अलहाकिम, सुनन बेहिक़ी, अलतिबरानी)

अतः सच्ची नमाज़ें वो हैं जो नमाज़ पढने वाले के अन्दर स्थिरता, संतुलन, धैर्य और अच्छे कामों की भावना पैदा करें क्योंकि नमाज़ के माध्यम से नमाज़ी दिन में कई बार अल्लाह से कलाम (संवाद) करता है। अच्छे कामों का दायरा बहुत व्यापक है और उसके अनेक रूप हैं। मुस्कुराकर मिलना, अच्छा मशौरा देना, जान व माल से मदद करना, ये सभी काम अच्छे हैं जो अलग अलग क्षमताओं और योग्यताओं के लोग अपने अपने अनुसार अंजाम देते हैं और ज़रूरतमंदों की स्थिति के अनुसार उनकी अलग अलग तरह की ज़रूरतें पूरा करने का माध्यम हैं। अल्लाह के रसूल सल्ल० की हदीसें हमें बताती हैं कि किसी से मुस्कुराकर मिलना, भटके हुए को रास्ता बता देना, सलाह और मार्गदर्शन के ज़रूरतमंद को सही मशौरा देना या सही रास्ता बताना और किसी को डूबने से बचने या दलदल से निकलने में मदद देना बहतरीन सदक़ा (पुण्य के काम) हैं (अलबुख़ारी किताबुल आदाब, अलतिरमिज़ी, इब्ने हंबल)। किसी का स्वयं

अपने और अपने घर वालों की ज़रूरत पर ख़र्च करना बहुत वजनदार नेकी के काम है और जो इससे ज़्यादा कुछ नहीं कर सकता उसकी तरफ़ से सदक़ा (पुण दान) हैं (अलहाकिम की रिवायत के अनुसार)। पैग़म्बर साहब ने फ़रमाया कि पति अपनी पत्नि के मुंह में निवाला देता है तो यह भी सदक़ा है (अलबुखारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी)। पैग़म्बर साहब की हदीसों से मालूम होता है कि अल्लाह के एक होने (तौहीद) की गवाही देने से लेकर रास्ते से कोई कष्टदायक चीज़ हटा देने तक दीन या ईमान की बहुत सी शाखाएं हैं (मुस्लिम, अबुदाऊद, नसई, इब्नेमाजा)। क़ुरआन में नेक आमाल (सद्कर्म) का ज़िक्र ईमान और इबादत के साथ किया गया है (2:177,277, 4:114(11:84-88(24:55)।

नमाज़ें और आसमानी ग्रन्थ

وَ الَّذِيْنَ يُمَسِّكُوْنَ بِالْكِتٰبِ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّا لَا نُضِيْعُ اَجْرَ الْمُصْلِحِيْنَ ۝۱۷۰

और जो लोग किताब की पाबंदी करते हैं, और नमाज़ को क़ायम रखते हैं, और हम ऐसे लोगों को जो अपनी इस्लाह कर लें अज्र ज़ाये नहीं करते। (7:170)

اُتْلُ مَاۤ اُوْحِیَ اِلَیْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰی عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لَذِكْرُ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ وَ اللّٰهُ یَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ ۝۴۵

(ऐ नबी) आप इस किताब को पढ़ा कीजिये, जो आप पर वही की गई है, और नमाज़ की पाबंदी कीजिये, यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है, और अल्लाह का ज़िक्र बहुत बड़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29:45)

اِنَّ الَّذِیْنَ یَتْلُوْنَ كِتٰبَ اللّٰهِ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ سِرًّا وَّ عَلَانِیَةً یَّرْجُوْنَ تِجَارَةً لَّنْ تَبُوْرَ ۝۲۹

बेशक वो लोग जो अल्लाह की किताब पढ़ते हैं, और जो नमाज़ की पाबंदी करते हैं, और जो हमने उनको दिया है उसमें से वो पोशीदा और ज़ाहिर ख़र्च करते हैं, वो ऐसी तिजारत की उम्मीद करते हैं जो कभी तबाह ना होगी। (35:29)

नमाज़ जहां इंसान और उसके जनक व पालनहार के बीच एक अध्यात्मिक माध्यम है वहीं अल्लाह की वहीय् जो उसकी किताबों में सुरक्षित है एक धारणात्मक और व्यवहारिक रोशनी है जो अल्लाह ने अपने मोमिन बन्दों को सही रास्ते पर चलने और अच्छे काम करने के लिए

तथा भटकने और बुरे कामों से बचने के लिए दिखाई है (2:38; 16:889; 20:123-127)। नमाज़ में क़ुरआन की तिलावत (उच्चारण) की जाती है लेकिन दूसरे समय मे भीं इसकी तिलावत ज़रूरी है ताकि और हिदायत का मौक़ा मिलता रहे और उस पर पूरा ध्यान केन्द्रित रहे। क़ुरआन की तिलावत इस पर अमल करने यानि इसकी शिक्षा के अनुसार आचरण करने के लिए होना चाहिए, और आयत 7:70 में साफ तौर से यह हवाला दिया गया है कि अल्लाह की किताब से मिलने वाली हिदायत का सम्बंध इबादत को अंजाम देने यानि हिदायत पर चलने से है केवल उसके पढ़ने और उच्चारण करने से नहीं है। आयत 35:29 में किताब की तिलावत करने और नमाज़ की अदायगी के साथ साथ अल्लाह के फ़ज़ल (बख़्शिशों) में से ज़रूरतमंदों पर खर्च करने को भी कहा गया है। इस बात को सामने रख कर कि ख़र्च करने का मतलब केवल माल खर्च करना नहीं है बल्कि इसमें वो सभी चीजें शामिल हैं जो अल्लाह ने इंसान को बख़्शी हैं जैसे ज्ञान, समय, ऊर्जा और नैतिक मदद। इस तरह आदमी यह समझ सकता है कि अच्छे कामों का दायरा कितना व्यापक और बहुमुखी है।

नमाज़ और ज़कात

ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۛ فِيْهِ ۛ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ ۙ﴿۲﴾ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَ مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۙ﴿۳﴾

ये हिदायत देने वाली है, ख़ुदा से डरने वालों को। जो यक़ीन रखते हैं पोशीना चीज़ों का और क़ायम रखते हैं नमाज़ को और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से ख़र्च करते हैं। (2:2-3)

وَ اِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْۤ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۫ وَ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ ذِى الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَ اَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿۸۳﴾

याद करो इसराईल की औलाद से हमने पक्का वादा लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना, माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के साथ, यतीमों, और मिस्कीनों के साथ नेक सुलूक करना, लोगों से भला बात कहना, नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब उस वादे से फिर गये और अब तक फिरे हुए हो। (2:83)

وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ وَ مَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ ؕ

और नमाज़ पूरी पाबंदी से बराबर अदा करते रहो। और ज़कात देते रहो। और जो नेकी अपने लिए कर चुके होगे

إِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿١١٠﴾

वो तुम अल्लाह के हाँ पाओगे। बिलाशुबह अल्लाह तुम्हारे आमाल ख़ूब देख रहा है। (2:110)

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَ الْمَغْرِبِ وَ لٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ الْمَلٰٓئِكَةِ وَ الْكِتٰبِ وَ النَّبِيّٖنَ ۚ وَ اٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِي الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنَ وَ ابْنَ السَّبِيْلِ ۙ وَ السَّآئِلِيْنَ وَ فِي الرِّقَابِ ۚ وَ اَقَامَ الصَّلٰوةَ وَ اٰتَى الزَّكٰوةَ ۚ وَ الْمُوْفُوْنَ بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ وَ الصّٰبِرِيْنَ فِي الْبَاْسَآءِ وَ الضَّرَّآءِ وَ حِيْنَ الْبَاْسِ ؕ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا ؕ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ﴿١٧٧﴾

नेकी ये नहीं है के तम सिर्फ़ अपना मुँह मशरिक़ व मग़रिब को कर लो, लेकिन नेकी दरअसल यही है के जो अल्लाह पर पूरा पूरा यक़ीन लायें यौमे आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, किताबों पर, रसूलों पर ईमान लायें, और माल जो उनको बड़ा अज़ीज़ है अपने रिश्तेदारों को, यतीमों को, मोहताजों को, मुसाफ़िरों को, मांगने वालों को और गुलामों को आज़ाद कराने में सर्फ़ करें, नमाज़ बराबर पढ़ते रहें और ज़कात देते रहें, जब अहेद करें तो इसको पूरा भी किया करें, और सख़्ती और तकलीफ़, और लड़ाई में सब्र किया करें, और साबित क़दम रहा करें। यही हैं जो सच्चे हैं, और यही वो हैं जो अल्लाह से डरने वाले हैं। (2:177)

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ عَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَ لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَ لَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٧٧﴾

बिला शुबह जो ईमान लाए और नेक काम करते रहे और नमाज़ पाबंदी के साथ अदा करते रहे और ज़कात देते रहें तो उनके लिए उनका सवाब उनके रब के पास है। और आख़िरत में उन पर ना कोई ख़ौफ़ होगा और ना कोई ग़म होगा। (2:277)

وَ جَاهِدُوْا فِي اللّٰهِ حَقَّ جِهَادِهٖ ؕ هُوَ اجْتَبٰىكُمْ وَ مَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِي الدِّيْنِ مِنْ حَرَجٍ ؕ مِلَّةَ اَبِيْكُمْ اِبْرٰهِيْمَ ؕ هُوَ سَمّٰىكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ ۙ مِنْ قَبْلُ وَ فِيْ هٰذَا لِيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ شَهِيْدًا عَلَيْكُمْ وَ تَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ ۚ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ

और अल्लाह की राह में जिहाद करो, जैसा के जिहाद का हक़ है, उसने तुम को चुन लिया है, और तुम पर दीन की कोई तंगी नहीं की, अपने बाप इब्राहीम के दीन पर क़ायम रहो, उसी ने तुम्हारा नाम मुसलमान रखा, पहले भी और इस किताब में भी, ताके रसूल तुम्हारे बारे में गवाह रहे, और तुम लोगों के बारे में गवाह रहो, तो तुम लोग नमाज़ पाबंदी से पढ़ा करो, और ज़कात अदा किया करो, और अल्लाह की रस्सी को मज़बूत पकड़े रहो, वही

اٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاعْتَصِمُوْا بِاللّٰهِ ؕ هُوَ مَوْلٰىكُمْ ۚ فَنِعْمَ الْمَوْلٰى وَنِعْمَ النَّصِيْرُ ۝

तुम्हारा कारसाज़ है तो कैसा ही अच्छा कारसाज़, और कैसा ही अच्छा मददगार। (22:78)

وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ وَ اَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ۝

और नमाज़ पढ़ते रहना और ज़कात अदा करते रहना, और रसूल की फ़रमांबर्दारी करते रहना, ताके तुम पर रहम किया जाए। (24:56)

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝ الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ ۝ وَ الَّذِيْنَ هُمْ عَنِ اللَّغْوِ مُعْرِضُوْنَ ۝ وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِلزَّكٰوةِ فٰعِلُوْنَ ۝

तहक़ीक़ उन ईमान वालों ने फ़लाह हासिल कर ली। जो अपनी नमाज़ में इजज़ो नियाज़ करते हैं। और जो बेहूदा बातों से परहेज़ करने वाले हैं। और ज़कात अदा करने वाले हैं। (23:1-4)

क़ुरआन में कई जगहों पर नमाज़ के साथ ज़कात का जिक्र किया गया है। अल्लाह की इबादत ज़रूरतमंद इंसानों की मदद करने में नज़र आना चाहिए। अरबी का शब्द ''ज़कात'' इस बात को उजागर करता है कि ज़रूरतंद की मदद करना एक पवित्र काम है क्योंकि यह इंसान को लालच और स्वार्थ जैसी बुराइयों से पाक करता है तथा इंसान के कमाए हुए माल से माल को पाक करना है जो माल कमाने की प्रक्रिया में किसी भूल चूक या ग़लत बात से शामिल हो जाता है (9:103), और उस माल को समाज को वापस कर देने का माध्यम बनता है इस लिहाज से वह समाज के ज़रूरतमंद व्यक्तियों के पास पहुंच जाता है। नमाज़ और ज़कात के बीच इस ज़बरदस्त सम्बंध के चलते पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबु बक्र ने उन लोगों से लड़ने का फ़ैसला किया जो ग़रीबों और ज़रूरतमंदों का हक़ देने से बच रहे थे हालांकि वो इस ईमान पर बने हुए थे कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूजनीय नहीं और मुहम्मद सल्ल० अल्लाह के पैग़म्बर हैं, और नमाज़ भी अदा करते थे। हज़रत अबु बक्र ने फ़रमाया था कि जो नमाज़ को ज़कात से अलग करेगा मैं उसके ख़िलाफ़ जंग करूंगा। ज़कात और नमाज़ के बीच सम्बंध फ़क़ीहों (इस्लाम के विधि शास्त्रियों) के यहां भी जाना पहचाना है। फक़ीहों ने ज़कात का ज़िक्र नमाज़ के बाद और रमज़ान के रोज़ों से पहले किया है।

ईमान और इबादत की आज़ादी का बचाव

وَ قَاتِلُوْا فِیْ سَبِیْلِ اللّٰهِ الَّذِیْنَ یُقَاتِلُوْنَكُمْ
وَ لَا تَعْتَدُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا یُحِبُّ
الْمُعْتَدِیْنَ ﴿۱۹۰﴾ وَ اقْتُلُوْهُمْ حَیْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ
وَ اَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَیْثُ اَخْرَجُوْكُمْ وَ
الْفِتْنَةُ اَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَ لَا تُقٰتِلُوْهُمْ
عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتّٰی یُقٰتِلُوْكُمْ فِیْهِ ۚ
فَاِنْ قٰتَلُوْكُمْ فَاقْتُلُوْهُمْ ؕ كَذٰلِكَ جَزَآءُ
الْكٰفِرِیْنَ ﴿۱۹۱﴾ فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ
رَّحِیْمٌ ﴿۱۹۲﴾ وَ قٰتِلُوْهُمْ حَتّٰی لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ
وَّ یَكُوْنَ الدِّیْنُ لِلّٰهِ ؕ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا
عُدْوَانَ اِلَّا عَلَی الظّٰلِمِیْنَ ﴿۱۹۳﴾ اَلشَّهْرُ
الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ وَ الْحُرُمٰتُ
قِصَاصٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰی عَلَیْكُمْ فَاعْتَدُوْا
عَلَیْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰی عَلَیْكُمْ ۪ وَ اتَّقُوا
اللّٰهَ وَ اعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِیْنَ ﴿۱۹۴﴾

और तुम अल्लाह के रास्ते में उनसे लड़ो जो तुम से लड़ते हैं, मगर ज़्यादती ना करना, बिलाशुबह अल्लाह ज़्यादती करने वालों को महबूब नहीं रखता। और उनको क़त्ल कर दो जहाँ भी तुम उनको पाओ, और जहाँ से उन्होंने तुम को निकाला था तुम भी उनको निकाल दो, और दीन से गुमराह करने का फ़साद कहीं शदीद है क़त्ल से, और जब तक वो तुम से ख़ाना काबा के आस पास न लड़ें तुम भी वहाँ उनसे ना लड़ना, हाँ अगर वो तुम से वहाँ लड़ें तो तुम भी उनको क़त्ल कर डालो, काफ़िरों की यही सज़ा है। और अगर वो बाज़ आ जायें, तो अल्लाह तो है ही बड़ा बख़्शने वाला, और बड़ा रहम वाला। और उनसे उस वक़्त तक लड़ते रहना के फ़ितना ना रहे और अल्लाह की का दीन क़ायम हो जाए, अगर वो बाज़ आ जायें तो ज़ालिमों के सिवा किसी पर ज़्यादती ना करना। अदब का महीना ऐवज़ है अदब के महीने का, और अदब की चीज़ें अदब की चीज़ों का बदला हैं, पस अगर तुम पर कोई ज़्यादती करे तो तुम भी वैसी ही ज़्यादती करना जैसी उन्होंने तुम पर की थी, और अल्लाह से डरते रहना, और तुम जान लो के अल्लाह महेज़ अल्लाह से डरने वालों के साथ है।

(2:190-194)

اُذِنَ لِلَّذِیْنَ یُقٰتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْا ؕ وَ
اِنَّ اللّٰهَ عَلٰی نَصْرِهِمْ لَقَدِیْرُ ﴿۳۹﴾ ۙ اِلَّذِیْنَ
اُخْرِجُوْا مِنْ دِیَارِهِمْ بِغَیْرِ حَقٍّ اِلَّاۤ اَنْ
یَّقُوْلُوْا رَبُّنَا اللّٰهُ ؕ وَ لَوْ لَا دَفْعُ اللّٰهِ
النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ

लड़ने की इजाज़त दी गई उन लोगों को जिन से लड़ाई की जाती है, इसलिये के उन पर ज़ुल्म हुआ है, और बेशक अल्लाह उनकी मदद पर क़ादिर है। जो नाहक़ अपने घरों से निकाल दिये गए हैं, उन्होंने कोई क़सूर नहीं किया, सिवाय इसके के ये कहते हैं के हमारा रब अल्लाह है, अगर अल्लाह उनको एक दूसरे से ना बचाता तो राहिबों के सौमए, ईसाइयों के गिर्जे और यहूदियों के

صَوَامِعُ وَ بِيَعٌ وَّ صَلَوٰتٌ وَّ مَسٰجِدُ يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيْرًا ؕ وَ لَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِيٌّ عَزِيْزٌ ۝ اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِي الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَ اَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَ نَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لِلّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ۝

इबादतख़ाने और मुसलमानों की मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है गिराई जा चुकी होतीं, और जो अल्लाह की मदद करता है, अल्लाह उसकी ज़रूर मदद करता है, बिला शुबह अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला और बड़ा ग़ल्बा रखने वाला है। ये वो लोग हैं के अगर हम उनको हुकूमत दें मुल्क में तो वो नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें और नेक काम करने का हुक्म दें और बुरे कामों से मना करें, और सब कामों का अंजाम अल्लाह ही के इख़्तियार में है। (22:39-41)

इस्लाम में अक़ीदे और इबादत की आज़ादी एक अनिवार्य बात है, और यदि इस आज़ादी को दबाया जाता है तो इसका बचाव करना एक इंसानी अधिकार और ज़िम्मेदारी है। मुसलमानों को केवल उन लोगों से लड़ने का आदेश दिया गया है जिन्होंने उनके जीवन और उनके अकीदे के विरुध उन पर जंग थोपी (2:190(22:39)। अल्लाह की इबादत के इस पवित्र घर की शिष्टता को बनाए रखना ईमान वालों पर अनिवार्य है जो अल्लाह की इबादत के लिए उस समय से खास है जब हज़रत इब्राहीम और इस्माईल ने उसका निर्माण किया था, और जिन महीनों में इस घर की ज़ियारत (दर्शन) के लिए लोग आते हैं वो महीने भी विशेष आदर के महीने हैं। लेकिन इस पवित्र और आदरणीय घर में या उन आदर वाले महीनों में यदि मुसलमानों पर हमला हो तो उन्हें अपने बचाव में लड़ने का जायज़ अधिकार है (2:191,194)। आयत 2:191 में इस बात को उजागर किया गया है कि दंगा और उत्पात (फ़ितना व फ़साद) क़त्ल से ज़्यादा बुरा है क्योंकि इससे इंसान पर लगातार दबाव बना रहता है और उसके मानवीय अधिकारों का हनन होता है। इसी तरह आयत 2:194 कहती है कि लड़ाई केवल उसी स्थिति में जायज़ है जब ज़ुल्म (उत्पीड़न) को रोकना मकसद हो और इंसान व उसके रब के बीच ईमान व अक़ीदे की आजादी बनी रहे (2:193), और अगर जालिम लोग अपने ज़ुल्म व सितम से रुक जाएं और अकीदे की आज़ादी सुरक्षित जाए तो सच्चे दिल से तौबा करने वालों पर अल्लाह की रहमत उतरती है।

पिछले पन्नों में यह बात कई बार कही गयी है कि आयत 22:39 ''अल्लाह की इबादत के घरों'' से सम्बंधित है जो अलग अलग आस्थाओं के लोग अल्लाह की इबादत के लिए बनाते हैं। यह आयत मस्जिदों, गिरजों, यहूदी पूजा स्थलों और अन्य धार्मिक स्थलों की सुरक्षा का आधार देती है। इस्लामी क़ानून और इस्लामी शासन अक़ीदे और इबादत की आज़ादी का बचाव करते हैं और पूजा स्थलों व धार्मिक अनुष्ठानों के आदर की रक्षा करते हैं और किसी

भी तरह से उसके उल्लंघन पर प्रतिबंध लगाते हैं, चाहे यह उल्लंघन मुसलमान करें या ग़ैर मुस्लिम।

इबादत की क्रियाओं को अंजाम देना

وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ وَ مَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝۱۱۰

और नमाज़ पूरी पाबंदी से बराबर अदा करते रहो। और ज़कात देते रहो। और जो नेकी अपने लिए कर चुके होगे वो तुम अल्लाह के हाँ पाओगे। बिलाशुबह अल्लाह तुम्हारे आमाल ख़ूब देख रहा है। (2:110)

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَآءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰىهَا ۪ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَ حَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ؕ وَ اِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ؕ وَ مَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ۝۱۴۴

हम तुम्हारे चेहरे का बार-बार आसमान की तरफ़ उठना देख रहा हैं, इसलिए हम तुम को उसी क़िबला की तरफ़ जिसको तुम पसंद करते हो मुँह करने का हुक्म देंगे के अपना चेहरा नमाज़ में मस्जिद हराम की तरफ़ किया करो, और तुम सब जहाँ भी मौजूद हो अपने चेहरों को उसी की (यानी मस्जिद हराम ही की) जानिब किया करो, और ये अहले किताब भी यक़ीनन जानते हैं के ये हुक्म बिल्कुल ठीक और उनके रब की तरफ़ से है और अल्लाह उनकी तमाम कारवाईयों से बाख़बर है, और ख़ूब जानता है। (2:144)

मक्का में कुछ समय के लिए और मदीना में निवास करने के बाद भी कुछ समय के लिए मुहम्मद सल्ल० ने यरूशलम (बैतुल मक़दिस) की तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़ी, क्योंकि काबा (मस्जिद अलहराम) की तरफ़ मुंह करने का मतलब यह लिया जा सकता था कि उसमें रखे बुतों की तरफ़ मुंह करके पैग़म्बर साहब नमाज़ पढ़ रहे हैं। हालांकि काबा को हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने मिल कर केवल अल्लाह की इबादत के लिए बनाया था और अरब के लोग उसे काबा कहते थे। चुनांचि "अहले किताब" (तत्कालीन यहूदी व ईसाई) पैग़म्बर साहब पर वह्यि के उतरने या इस्लाम के पैग़ाम की सच्चाई को स्वीकर कर सकते थे अगर वो इस मामले पर बग़ैर किसी पूर्वाग्रह के गम्भीरता से ग़ौर करते। बाद में मदीना में इस्लाम के मज़बूत होने और इस्लामी राज्य की स्थिरता के बाद यह उम्मीद पैदा हुई कि अल्लाह के घर में भी जो कि 25 शाताब्दी पूर्व हज़रत इब्राहीम व हज़रत इस्माईल ने एक अल्लाह की इबादत के लिए ही

बनाया था, केवल अल्लाह की ही इबादत की जाएगी और मक्का के लोग भी इस बात को समझ लेंगे। और इस तरह पूरे अरब में काबा को केवल अल्लाह की इबादत के घर के रूप में देखा जाने लगेगा। यह ऐसी उम्मीद थी जिसे पूरा करने के लिए अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल० ने जीवन भर संघर्ष किया। पैग़म्बर साहब के मदीना हिजरत करने के लगभग छ महीना बाद अल्लाह ने अपने पैग़म्बर की यह कामना पूरी करने का संकेत दिया और आदेश दिया कि अपनी इबादत के लिए काबा की तरफ़ मुंह किया करें और सभी मुसलमान जहां कहीं भी हों वो इसी घर की तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़ा करें।

हज़रत इब्राहीमं व इस्माईल द्वारा बनाई गयी यह इबादतगाह बाद में हर साल की जाने वाली विश्वव्यापी सामूहिक इबादत अर्थात हज का केन्द्र भी बन गयी।

حٰفِظُوْا عَلَى الصَّلَوٰتِ وَالصَّلٰوةِ الْوُسْطٰى ۚ وَ
قُوْمُوْا لِلّٰهِ قٰنِتِيْنَ ﴿٢٣٨﴾ فَاِنْ خِفْتُمْ فَرِجَالًا
اَوْ رُكْبَانًا ۚ فَاِذَآ اَمِنْتُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَمَا
عَلَّمَكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢٣٩﴾

(ऐ मुसलमानों!) सारी नमाज़ों को बड़ी पाबन्दी से अदा करते रहा करो, ख़ुसूसन बीच की नमाज़ (अस का बड़ा) इल्तेज़ाम किया करो और अल्लाह के सामने बड़े अदब से खड़े रहा करो। अगर तुमको ख़ौफ़ हो तो तुम ख़्वाह पैदल हो या सवार हो (जिस हाल में हो नमाज़ पढ़ लो) जब तुम पर सकून हो तो तुम अल्लाह को याद किया करो जिस तरह अल्लाह ने तुमको सिखाया है, जो तुम पहले नहीं जानते थे। (2:238-239)

बीच की नमाज़ (''सलाते वुस्ता'') के मतलब को समझने में मुफ़स्सिरों के बीच अलग अलग मत पाए जाते हैं, और इस बात को समझने में भी कि उसकी पाबन्दी करने के निर्देश का इशारा नमाज़ के समय की तरफ़ है जैसे ज़ुहर के बाद का समय यानि वह समय जब लोग दुनिया के मामलों में व्यस्त होते हैं, या नमाज़ पढ़ने के तरीक़े की तरफ़ है। इस शब्द का यह अनुवाद भी किया जा सकता है कि सबसे ज़्यादा अफ़ज़ल (प्रितिष्ठित) इबादत जो बहुत जल्दी या बहुत धीमें नहीं पढ़ना चाहिए और न बहुत तेज या बहुत धीमी आवाज़ में (7:110)।

अल्लाह ने अपनी रहमत से जंग जैसे ख़तरे में घिरे व्यक्ति को यह छूट दी है कि वह जिस तरह आम स्थिति में नमाज़ पढ़ता है, ख़तरे की स्थिति में भी वैसे ही नमाज़ न पढ़े क्योंकि इस स्थिति में न तो चारों ओर के ख़तरनाक माहौल पर ही उसका ध्यान केन्द्रित रहेगा और न ही नमाज़ में एकाग्रता मिलेगी, बल्कि वह दुशमन के हमले के लिए एक आसान निशाना बन जाएगा। इसलिए नमाज़ यदि समय पर पढ़ना सम्भव न हो तो उसमें देर की जा सकती है। अगर यह सम्भव न हो तो अल्लाह से दुआ करना भी एक आसान तरीक़ा है। अल्लाह ने इस

मामले में जो रिआयतें दी हैं उनके मुताबिक अल्लाह की इबादत की जा सकती है जैसे नमाज़ को छोटा कर देना, अनिवार्य रूप से काबा की ओर मुंह न होना, एक टुकड़ी का नमाज़ पढ़ना और दूसरी टुकड़ी का उनकी रक्षा करना और फिर दूसरी टुकड़ी का नमाज़ पढ़ना और पहली टुकड़ी का रक्षा के लिए खड़ा होना वग़ैरह (4:101-103)।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَ اَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَ لَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِيْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا ؕ وَ اِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَ اَيْدِيْكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُوْرًا ﴿۴۳﴾

मोमिनों! तुम नमाज़ के क़रीब भी ना जाना जबकि तुम नशे में हो, यहां तक कि अपने मुंह से निकले हुए अल्फ़ाज़ ना समझने लगो, नापाकी की हालत में भी नमाज़ की हालत में भी नमाज़ के पास ना जाओ जब तक ग़ुस्ल ना कर लो, अगर तुम सफ़र में चले जा रहे हो और पानी ना हो (तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ लो) और अगर तुम बीमार हो या सफ़र में हो या तुम में से कोई बैतुलख़ला होकर आया हो, या तुम अपनी औरत से हमबिस्तर हुए हो, और तुम को पानी ना मिल रहा हो, तो पाक मिटटी लो और मुंह और हाथों का मसह कर लो (ये तयम्मुम है) बिलाशुबह अल्लाह तो बड़ा माफ़ करने वाला और बड़ा बख़्शने वाला है। (4:43)

اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَ الْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ وَ يَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَ عَنِ الصَّلٰوةِ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ﴿۹۱﴾

बस शैतान तो यही चाहता है के तुमको शराब और जुऐ में डालकर तुममें दुश्मनी और कीना डाल दे, और तुमको अल्लाह की याद और नमाज़ से रोक दे, पस तुम इन कामों से अब भी बाज़ आओगे। (5:91)

सलात (नमाज़) का अर्थ है दुआ, और दुआ अल्लाह से मांगने गिड़गड़ाने और संवाद करने का नाम है। दुआ के लिए पूरी मन की एकाग्रता और अध्यात्मिक भाव ज़रूरी हे और दुआ करने वाले को यह ख़बर होना चाहिए कि वह क्या क्रिया कर रहा है और अल्लाह से क्या मांग रहा है। जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने के समय यह ज़रूरी है कि नमाज़ पढ़ने वाला जो कुछ देख और सुन रहा हो उसे पूरी तरह समझे। इस्लाम से पहले के अरब में शराब का सेवन और जुआबाज़ी बहुत प्रचलित थी और उसकी जड़ें बहुत गहरी थीं। शराब को हराम घोषित करने और उस पर पूरी तरह पाबन्दी लगाने का काम इस्लामी क़ानून प्रक्रिया में क्रमवार हुआ। शुरू

में क़ुरआन में केवल यह कहा गया कि शराब का सेवन और जुआबाज़ी के कुछ फ़ायदे तुम्हे नज़र आते होंगे लेकिन उनके नुक़सान और उनकी ख़राबी उनके फ़ायदों से कहीं ज़्यादा है (2:219)। कुछ समय बाद एक क़दम आगे बढ कर लोगों को इस बात से रोक दिया गया कि वो शराब की हालत में नमाज़ पढ़ें (4:43), उन्हें कहा गया कि जब तक वो अपने होश में न आ जाएं और नमाज़ में क्या पढ़ रहे हैं और क्या क्रियाएँ कर रहे हैं इसको न समझने लगें तब तक नमाज़ के क़रीब भी न जाएं। क़ुरआन ऐसे लोगों की निन्दा करता है जो शरीरिक रूप से नमाज़ की क्रियाएं करते हों लेकिन उनका ध्यान कहीं ओर होता हो (107:4-7), और देखें 9:54)। नमाज़ में केवल शरीरिक क्रिया पूरी करना पर्याप्त नहीं है इससे नमाज़ के मानसिक व व्यवयाहरिक फ़ायदे प्राप्त नहीं होते (29:45)।

शराब के सेवन में मस्त और जुआबाज़ी जैसे कामों में मगन रहने से इंसान गम्भीरता और गहराई से सोचने योग्य नहीं रहता, अल्लाह का ख़्याल उसके दिल व दिमाग़ में नहीं रहता और नमाज़ के लिए लगाई जाने वाली पुकार (अज़ान) पर चल देना उसके बस में नहीं होता। नशे के सेवन से मन पर पड़ने वाले प्रभाव और जुए के द्वारा बग़ैर महनत के माल प्राप्त करने की लालच और चिंता से इंसानों के बीच दुशमनी और फूट की भावनाएँ उग्र होती हैं। क़ुरआन ने आख़िरकार शराब के सेवन और जुए पर पूरी तरह पाबन्दी लगा दी और ईमान वालों पर इसे हमैशा के लिए हराम कर दिया 5:90)।

وَ اِذَا ضَرَبْتُمْ فِی الْاَرْضِ فَلَیْسَ عَلَیْكُمْ
جُنَاحٌ اَنْ تَقْصُرُوْا مِنَ الصَّلٰوةِ ۖ اِنْ
خِفْتُمْ اَنْ یَّفْتِنَكُمُ الَّذِیْنَ كَفَرُوْا ؕ اِنَّ
الْكٰفِرِیْنَ كَانُوْا لَكُمْ عَدُوًّا مُّبِیْنًا ۝ وَ اِذَا
كُنْتَ فِیْهِمْ فَاَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلٰوةَ
فَلْتَقُمْ طَآىِٕفَةٌ مِّنْهُمْ مَّعَكَ وَ
لْیَاْخُذُوْۤا اَسْلِحَتَهُمْ ۫ فَاِذَا سَجَدُوْا
فَلْیَكُوْنُوْا مِنْ وَّرَآىِٕكُمْ ۪ وَ لْتَاْتِ طَآىِٕفَةٌ
اُخْرٰی لَمْ یُصَلُّوْا فَلْیُصَلُّوْا مَعَكَ وَ
لْیَاْخُذُوْا حِذْرَهُمْ وَ اَسْلِحَتَهُمْ ۚ وَدَّ
الَّذِیْنَ كَفَرُوْا لَوْ تَغْفُلُوْنَ عَنْ اَسْلِحَتِكُمْ

और जब तुम ज़मीन में सफ़र करो तो उस में तुम को कोई गुनाह नहीं के तुम नमाज़ में कमी कर दो, अगर तुम को अंदेशा हो के काफ़िर तुम को परेशान करेंगे, बिलाशुबह काफ़िर तुम्हारे खुले दुश्मन हैं। और जब आप उनमें तशरीफ़ रखते हों फ़िर आप उनको नमाज़ पढ़ाना चाहें तो एक गिरोह आप के साथ खड़ा हो जाए और दूसरा हथियार ले ले, (हिफ़ाज़त करे) फिर जब ये सजदा करें तो ये लोग पीछे हट जायें और दूसरे गिरोह जिसने अभी नमाज़ नहीं पढ़ी, आकर नमाज़ अदा करे आपके साथ और ये लोग भी अपने बचाव का सामान और अपने हथियार ले लें, काफ़िरीन ये चाहते हैं अगर तुम अपने हथियारों और सामान से ग़ाफ़िल हो जाओ तो तुम पर एक बारगी हमला कर दें, और अगर तुम को बारिश की वजह से तकलीफ़ हो या तुम बीमार हो जाओ तो

وَ اَمۡتِعَتِكُمۡ فَيَمِيۡلُوۡنَ عَلَيۡكُمۡ مَّيۡلَةً
وَّاحِدَةً ؕ وَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ اِنۡ كَانَ بِكُمۡ
اَذًى مِّنۡ مَّطَرٍ اَوۡ كُنۡتُمۡ مَّرۡضٰۤى اَنۡ
تَضَعُوۡۤا اَسۡلِحَتَكُمۡ ۚ وَ خُذُوۡا حِذۡرَكُمۡ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ اَعَدَّ لِلۡكٰفِرِيۡنَ عَذَابًا مُّهِيۡنًا ﴿۱۰۲﴾ فَاِذَا
قَضَيۡتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذۡكُرُوا اللّٰهَ قِيٰمًا وَّ قُعُوۡدًا
وَّ عَلٰى جُنُوۡبِكُمۡ ۚ فَاِذَا اطۡمَاۡنَنۡتُمۡ فَاَقِيۡمُوا
الصَّلٰوةَ ۚ اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتۡ عَلَى
الۡمُؤۡمِنِيۡنَ كِتٰبًا مَّوۡقُوۡتًا ﴿۱۰۳﴾

तुम पर कोई गुनाह नहीं के अपने हथियार उतार रखो, और अपना बचाव कर लो, बिलाशुबह अल्लाह ने काफ़िरों के लिय अहानत आमेज़ सज़ा मोहय्या कर रखी है। फ़िर जब तुम नमाज़े ख़ौफ़ अदा कर चुको तो अल्लाह की याद में लग जाओ, खड़े भी और बैठे भी और लेटे भी, और जब तुम मुतमईन हो जाओ तो नमाज़ को क़ायदे के मवाफ़िक़ पढ़ने लगो, बेशक नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है और वक़्त के साथ महदूद है। (4:101-103)

ये आयतें यह बताती हैं कि मुसलमानों को विभिन्न परिस्थितियों में स्वयं को संगठित करने और अनुशासन में रहने के लिए किस तरह से प्रशिक्षित किया गया है, यहां तक कि नमाज़ के लिए भी कुछ स्थितियों में निर्देश बदल जाते हैं। इससे यह बात भी ज़ाहिर होती है कि इस्लाम ने मुसलमानों को जिन इबादतों और कर्तव्यों का पाबन्द किया है, खास तौर से नमाज़ की अदायगी, वो मुसलमानों के लिए कोई बोझ नहीं हैं, और परिस्थितियों के हिसाब से इसमें लचक और गुंजाइश रखी गयी है। जमाअत की नमाज़ के लिए भी ऐसी स्थिति में जब लड़ाई चल रही हो, जहां एक तरफ़ यह ख़्याल रखा गया कि नमाज़ की अनिवार्यता बनी रहे और अल्लाह से क़रीबी सम्पर्क बने रहने की ज़रूरत पूरी हो, वहीं दूसरी ओर नमाज़ अदा करने वालों को किसी अचानक हमले से सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक सावधानी की भी सीख दी गयी। एक टुकड़ी सशस्त्र रहते हुए नमाज़ पढ़ती और दूसरी टुकड़ी उसकी रक्षा करती, फिर दूसरी टुकड़ी सशत्र रहते हुए नमाज़ पढ़ती और पहली टुकड़ी उसकी सुरक्षा के लिए चौकन्ना रहती। बारिश, बीमारी, थकन की स्थिति में नमाज़ पढ़ने वालों के लिए सशस्त्र रहना ज़रूरी नहीं रखा गया।

चार रकअत वाली नमाज़ को कम करके दो रकअत में पढ़ा जा सकता है (रकअत एक बार खड़े होने, झुकने, ज़मीन पर सर रखने की पूरी प्रक्रिया को कहते हैं, दो रअकतों में दो बार, तीन में तीन बार और चार रकअतों में चार बार यह उठक बैठक करनी होती है)। नमाज़ को छोटा करने की यह अनुमति पैग़म्बर साहब की एक हदीस में सफ़र (यात्रा) के दौरान भी दी गयी है (देखें बुख़ारी, मुस्लिम, मालिक, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिजी, नसई और इब्ने माजा)। पैग़म्बर

साहब की मौखिक हदीसों, व्यवहारिक तरीकों और फ़िक़्ह (शरीअत के बोध) की किताबों में इसकी व्याख्या दी गयी है।

إِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ هُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَ اِذَا قَامُوْٓا اِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ النَّاسَ وَ لَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝

बिलाशुबहः मुनाफ़िक़ लोग अल्लाह को धोका देते हैं, वो उस चाल की उनको सज़ा देने वाला है, और जब वो नमाज़ को खड़े होते हैं तो बहुत काहिली के साथ खड़े होते हैं, सिर्फ़ आदमियों को दिखाते हैं, और अल्लाह का ज़िक्र नहीं करते, मगर बहुत ही मुख़्तसर। (4:142)

नमाज़ को पाबन्दी से और सही ढंग से अपने समय पर जल्दी से जल्दी अदा करना एक वास्तविक ईमान की और अल्लाह से संवाद करने तथा उसके प्रति अपनी बन्दगी और शुक्रगुज़ारी को व्यक्त करने के चाह का एक प्रतीक है। इसलिए मुनाफ़िक़ इबादत की इन गहराइयों में नहीं जाता और अपनी स्वार्थपूर्ति और दुनियावी फ़ायदों को समटेने में लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिए इतना काफ़ी है कि वो उन लोगों के बीच दिखाई देता रहे जो नमाज़ अदा करते हैं, इस वजह से वह नमाज़ के लिए उठते समय आलस में होता है और भारी क़दमों से नमाज़ के लिए जाता है क्योंकि उसके अंदर की भावना नदारद होती है। मक्का में उतरने वाली प्रारम्भिक आयतों में लोगों को इबादत के मक़सद से दूर रहने के प्रति चेताया गया है और केवल नमाज़ में नज़र आने और नमाज़ी कहलवाने की इच्छा पर उन्हें टोका गया है।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا قُمْتُمْ اِلَى الصَّلٰوةِ فَاغْسِلُوْا وُجُوْهَكُمْ وَ اَيْدِيَكُمْ اِلَى الْمَرَافِقِ وَ امْسَحُوْا بِرُءُوْسِكُمْ وَ اَرْجُلَكُمْ اِلَى الْكَعْبَيْنِ ؕ وَ اِنْ كُنْتُمْ جُنُبًا فَاطَّهَّرُوْا ؕ وَ اِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَ اَيْدِيْكُمْ مِّنْهُ ؕ مَا يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيَجْعَلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ حَرَجٍ وَّ لٰكِنْ يُّرِيْدُ لِيُطَهِّرَكُمْ وَ لِيُتِمَّ

मोमिनों! जब तुम नमाज़ को खड़े होने लगो तो अपने चेहरों (1) को धोया करो और अपने दोनों हाथों (2) को भी कोहनियों समेत धोया करो, और अपने सरों (3) पर हाथ फ़ेर लिया करो, और अपने पैरों (4) को टख़्नों समेत धो लिया करो, और अगर तुम जनाबत की हालत में हो तो सारा बदन ग़ुस्ल करके पाक कर लो और अगर तुम बीमार (1) हो, या सफ़र (2) में हो, या कोई इस्तंजे (3) से आया हो या तुम अपनी बीवियों (4) से हमबिस्तर हुए हो, मगर पानी ना मिले, तो (इन चारों सूरतों में) तुम पाक ज़मीन से तयम्मुम कर लिया करो, यानी अपने चेहरे को और दोनों हाथों पर अपना हाथ फ़ेर लिया करो इस ज़मीन पर से, अल्लाह ये नहीं चाहता के तुम पर कोई तंगी करे, लेकिन वो ये ज़रूर चाहता है के वो तुम

نِعْمَتَهٗ عَلَيْكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝٧ وَ
اذْكُرُوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ مِيْثَاقَهُ الَّذِيْ
وَاثَقَكُمْ بِهٖٓ ۙ اِذْ قُلْتُمْ سَمِعْنَا وَ اَطَعْنَا ۫ وَ
اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ
الصُّدُوْرِ ۝٧

को पाको साफ़ रखे, और ये चाहता है के वो तुम पर अपना ईनाम कर दे ताके तुम शुक्र अदा करो। और तुम अल्लाह के ईनाम को याद करो जो उसने तुम पर किया है, और उसके उस अहद को भी याद करो जिसका तुम से मोआअहदा किया है, जब तुम ने कहा था हमने सुना और मान लिया, और अल्लाह से डरा करो, बिला शुबह अल्लाह दिलों की बातें भी ख़ूब जानता है। (5:6-7)

इन आयतों में नमाज़ के लिए बुनियादी ज़रूरतों और तैयारियों का ज़िक्र किया गया है और वज़ू (हाथ मुंह व पांव धोना की सम्पूर्ण क्रिया) व ग़ुस्ल (स्नान) दोनों का बयान है। पानी उपलब्ध न होने की स्थिति में तयम्मुम करने को कहा गया यानि सूखी ज़मीन पर, साफ मिट्टी पर या रेत अथवा चट्टान पर हाथ मार कर हाथों को एक दूसरे पर और फिर चेहरे पर फेरना वजू या गुस्ल का अस्थाई विकल्प है जो कि नमाज़ के लिए ज़रूरी है। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात जो कि इस्लाम के एक आम सिद्धांत के रूप में बताई गयी है यह है कि अल्लाह तंगी और कठिनाई में डालना नहीं चाहता, और जब किसी अनिवार्य फ़र्ज़ की पूर्ति क्षमता से परे हो तो व्यक्ति को यह इजाज़त है कि जितना वह कर सकता है उतना करे ''अल्लाह किसी को उसकी क्षमता से अधिक बोझिल नहीं करता''(2:286)।

जो इंसान अल्लाह और अल्लाह के दीन पर ईमान रखता है उसे इस दीन के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को और दीन के तक़ाज़ों को पूरा करना चाहिए। अल्लाह के दीन की सभी शिक्षाएं जैसे शरीर, कपड़ों, जगह की पाकी व सफाई और खाने पीने की चीज़ों का पाक होना वग़ैरह जहां तक सम्भव हो इसका प्रबंध करना चाहिए। शरीरिक सफ़ाई से दिल व दिमाग़ की सफ़ाई में भी मदद मिलती है, और यह पूर्ण सफ़ाई मोमिन की पहचान है और उसे शरीरिक, अध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक सफ़ाई की इस चेतना को जगाने की ज़िम्मेदारी भी निभानी है, हर उस जगह जहां वह जाए और उन सभी लोगों के बीच जिनसे वह मिले और सम्बंध रखे।

قُلْ اِنَّ صَلَاتِيْ وَ نُسُكِيْ وَ مَحْيَايَ وَ
مَمَاتِيْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝١٦٢ لَا شَرِيْكَ لَهٗ ۚ
وَ بِذٰلِكَ اُمِرْتُ وَ اَنَا اَوَّلُ الْمُسْلِمِيْنَ ۝١٦٣

आप कह दें के बिला शुबह मेरी नमाज़, मेरी सारी इबादत, मेरा जीना, और मेरा मरना, ये सबकी सब अल्लाह के लिए है, जो सारे जहानों का मालिक है। उसका कोई शरीक नहीं हैं और उसी का मुझको हुक्म हुआ है, और मैं मानने वालों में सबसे पहला हूँ। (6:162-163)

إِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ هُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَ إِذَا قَامُوْٓا إِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ النَّاسَ وَ لَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ إِلَّا قَلِيْلًا ۝

बिलाशुबहः मुनाफ़िक़ लोग अल्लाह को धोका देते हैं, वो उस चाल की उनको सज़ा देने वाला है, और जब वो नमाज़ को खड़े होते हैं तो बहुत काहिली के साथ खड़े होते हैं, सिर्फ़ आदमियों को दिखाते हैं, और अल्लाह का ज़िक्र नहीं करते, मगर बहुत ही मुख़्तसर। (4:142)

وَ مَا مَنَعَهُمْ اَنْ تُقْبَلَ مِنْهُمْ نَفَقٰتُهُمْ إِلَّآ اَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاللّٰهِ وَ بِرَسُوْلِهٖ وَ لَا يَأْتُوْنَ الصَّلٰوةَ إِلَّا وَ هُمْ كُسَالٰى وَ لَا يُنْفِقُوْنَ إِلَّا وَهُمْ كٰرِهُوْنَ ۝

आप कह दीजिये के तुम हमारे हक़ में दो नेकियों में से एक नेकी का इंतिज़ार करते हो, और हम तुम्हारे हक़ में इसका इन्तिज़ार कर रहे हैं के अल्लाह या तो अपने पास से तुम पर कोई अज़ाब नाज़िल फ़रमा दे, या हमारे हाथों से ही अज़ाब दिलवा दे, तो तुम भी इन्तिज़ार करो और हम भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार कर रहे हैं। (9:54)

अल्लाह इंसान को उसकी नियत से जांचता है, उसके दिखने वाले कर्मों से नहीं जो कि भीतर की भावना के बिना भी अंजाम दिए जा सकते हैं। लेकिन कोई इबादत जब तक पूरी चेतना और लगन से अदा न की जाए वह इंसान को अन्दर से नहीं बदल सकती, न उसकी सोच, इरादे और फ़ैसले को ठीक कर सकती है, न उसे अच्छे कामों को करने या अनुचित कामों से बचने की प्रेरणा दे सकती है (29:45)।

أَقِمِ الصَّلٰوةَ لِدُلُوْكِ الشَّمْسِ إِلٰى غَسَقِ الَّيْلِ وَ قُرْاٰنَ الْفَجْرِ ۭ إِنَّ قُرْاٰنَ الْفَجْرِ كَانَ مَشْهُوْدًا ۝ وَ مِنَ الَّيْلِ فَتَهَجَّدْ بِهٖ نَافِلَةً لَّكَ ۖ عَسٰٓى اَنْ يَّبْعَثَكَ رَبُّكَ مَقَامًا مَّحْمُوْدًا ۝ وَ قُلْ رَّبِّ اَدْخِلْنِيْ مُدْخَلَ صِدْقٍ وَّ اَخْرِجْنِيْ مُخْرَجَ صِدْقٍ وَّ اجْعَلْ لِّيْ مِنْ لَّدُنْكَ سُلْطٰنًا نَّصِيْرًا ۝

(ऐ नबी) आप सूरज के ढलने से रात के अंधेरे तक नमाज़ें पढ़ा कीजिये क्योंके क़ुरआन का पढ़ना सुबह के वक़्त हुज़ूरे मलायका का वक़्त है। और रात के बाज़ हिस्से में भी, तो उसमें नमाज़ तहज्जुद पढ़ा कीजिये जो आप के लिये एक ज़ायद चीज़ है उम्मीद है, आपका रब आपको मुक़ामे मेहमूद पर खड़ा कर दे। और आप इस तरह कहा कीजिये के ऐ मेरे रब! मुझ को तू ख़ूबी के साथ पहुंचाईयो, और मुझको ख़ूबी के साथ ले जाईयो! और मुझको अपने पास से ऐसा ग़ल्बा दीजिये! जिसके साथ नुसरत हो। (17:78-80)

ऊपर लिखी पहली आयत से रोज़ाना पांच समय पढ़ी जाने वाली नमाज़ों के निर्देश को

समझा जा सकता है। इसके पहले भाग में चार समय की नमाज़ों का इशारा है जो दिन में सूरज ढलने के बाद से लेकर रात का अंधेरा छाने तक अलग अलग समय में अदा की जाती हैं, फिर इसमें सूर्योदय से पहले यानि सुबह सवेरे की नमाज़ का इशारा है जिसमें क़ुरआन की तिलावत का भी आदेश दिया गया है। फ़ज्र (सुबह सवेरे) की नमाज़ का जिक्र अलग से शायद उस समय की शान्ति की वजह से किया गया है, क्योंकि उस समय की रूहानी स्थिति कुछ अलग ही होती है। रात के पिछले पहर कोई व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार स्वंय अपनी इच्छा और खुशी से नमाज़ अदा कर सकता है, हालांकि पैग़म्बर साहब ने अपनी प्रतिष्ठा और विशेष स्थिति के लिहाज़ से इसे अपने ऊपर अनिवार्य कर लिया था और पाबन्दी से अदा करते थे। आख़री आयत में मोमिन बन्दा अपने रब से दुआ करता है कि उसे सीधे रास्ते पर जमे रहने और अपने कर्म सही तरह से अंजाम देते रहने की हिम्मत दे। इस पूरे सफ़र में आदमी को अपने रब की मदद और मार्गदर्शन की ज़रूरत होती है जो कि अलीम (सब कुछ जानने वाला), हकीम (युक्ति पूर्वक काम करने वाला) और क़दीर (हर चीज़ पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाला) है।

اِنَّ رَبَّكَ يَعْلَمُ اَنَّكَ تَقُوْمُ اَدْنٰى مِنْ ثُلُثَيِ الَّيْلِ وَ نِصْفَهٗ وَ ثُلُثَهٗ وَ طَآئِفَةٌ مِّنَ الَّذِيْنَ مَعَكَ ؕ وَ اللّٰهُ يُقَدِّرُ الَّيْلَ وَ النَّهَارَ ؕ عَلِمَ اَنْ لَّنْ تُحْصُوْهُ فَتَابَ عَلَيْكُمْ فَاقْرَءُوْا مَا تَيَسَّرَ مِنَ الْقُرْاٰنِ ؕ عَلِمَ اَنْ سَيَكُوْنُ مِنْكُمْ مَّرْضٰى ۙ وَ اٰخَرُوْنَ يَضْرِبُوْنَ فِي الْاَرْضِ يَبْتَغُوْنَ مِنْ فَضْلِ اللّٰهِ ۙ وَ اٰخَرُوْنَ يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۟ فَاقْرَءُوْا مَا تَيَسَّرَ مِنْهُ ۙ وَ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ وَ اَقْرِضُوا اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا ؕ وَ مَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ هُوَ خَيْرًا وَّ اَعْظَمَ اَجْرًا ؕ وَ اسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٢٠

बेशक तुम्हारा रब ख़ूब जानता है के तुम और तुम्हारे साथ के लोग (कभी तो) दो तिहाई रात के क़रीब और (कभी) आधी रात, और (कभी) एक तिहाई रात क़याम करते हैं, और अल्लाह तो रात और दिन का अंदाज़ा रखता है, उसने मालूम कर लिया के तुम उसको निबाह ना सकोगे, तो उसने तुम पर मेहरबानी की, पस जितना आसानी से हो सके उतना क़ुरआन पढ़ लिया करो, उसने जान लिया के बाज़ तुम में बीमार हैं, और बाज़ मआश की तलाश में मुल्क में सफ़र करते हैं और बाज़ अल्लाह की राह में लड़ते हैं तो जितना आसानी से हो सके उतना पढ़ लिया करो और नमाज़ की पाबंदी रखो, और ज़कात अदा करते रहो, और अल्लाह को क़र्ज़े हसना देते रहो, और जो नेक अमल तुम अपने लिये आगे भेज दोगे तो उसके सिले में अल्लाह के हां बेहतर और बुज़ुर्ग तर सिला पाओगे, और अल्लाह से बख़्शिश मांगते रहो, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला रहम वाला है।

(73:20)

रात में जिस नमाज़ को पढ़ने की प्रेरणा यहां दी गयी है इसे "तहज्जुद" कहते हैं। यह स्वेच्छा से पढ़ी जाने वाली नमाज़ है जो बन्दा अपने रब की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए पढ़ता है इसे पढ़ना अनिवार्य नहीं है लेकिन जो पढ़ता है उसे बहुत सवाब (पुण) प्राप्त होता है। ऐसी इबादतों को मुस्तहब कहते हैं। तहज्जुद की नमाज का समय रात (इशा) की फ़र्ज (अनिवार्य नमाज) के बाद से लेकर फ़ज्र की नमाज़ का समय शुरू होने से पहले तक होता है। इस्लाम उन कामों या इबादतों को ही अनिवार्य करता है जो एक आम आदमी के बस में हैं, जबकि वो लोग जो और अधिक इबादत करने और ज़्यादा से ज़्यादा अच्छे काम करने की क्षमता और अवसर रखते हैं उन्हें वह इसके लिए उक्साता है, प्रतिस्पर्धा की प्रेरणा देता है और मुस्तहब कामों की तरफ़ बुलाता है ताकि वो अपनी स्वेच्छिक मेहनत और परिश्रम का ज़्यादा से ज़्यादा बदला पा सकें (3:13(3(56:7-14(57:21(83:26)। जो लोग अनिवार्य इबादतों को भी अंजाम देने में सक्षम नहीं होते उन्हें उतना ही करने को कहा जाता है जितना वो कर सकते हें बगैर किसी असहनीय परिश्रम के (2:173,233,286(5:3,6(6:119,149,152(7:42(22:78(16:115(23:62(24:61(48:17)।

उपरोक्त आयत यह इशारा करती है कि किसी भी व्यक्ति को यह नहीं कहा गया कि वह पूरी पूरी रात नफ़िल (ऐच्छिक नमाज़ें) पढता रहे, क्योंकि शरीरिक क्षमता को बनाए रखना, काम करने की ऊर्जा को बनाए रखना और जीविका कमाने की मेहनत करना शरीअत के उद्देश्यों में से है। आदमी रात को अपनी क्षमता के अनुसार कुरआन की तिलावत (उच्चारण) कर सकता है उसी हद तक जिस हद तक उसका शरीर सहन कर सके और उसके जीवन में किसी असंतुलन का कारण न बने। पैग़म्बर साहब की एक हदीस में है कि स्वयं आप, जिन पर आसमानी संदेश उतरा और क़ुरआन अवतरित हुआ, रात को इबादत भी करते थे और सोते भी थे, रोज़ा भी रखते थे और रोज़ा नहीं भी रखते थे, खाते पीते भी थे और विवाह भी करते थे, आपने फ़रमाया यह मेरा तरीक़ा है और जो मेरी तरीक़े का अनुसरण करने से मुंह मोड़ेगा वह मेरा उम्मती (अनुयायी) नहीं है (बुखारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद)। रात की नमाज़ व्यक्तियों के अपने विवेक और इच्छा पर छोड़ी गयी है ताकि वो अपनी क्षमता के अनुसार बन्दगी की भावना के ज़ोर से उसे स्वयं अपनी इच्छा से अदा करें। लेकिन यह अतिरिक्त नमाज़ आपने रमज़ान की रातों में मस्जिद में भी अदा की है और लोगों ने इसमें आपके पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ी है, लेकिन आपने यह मुस्तक़िल रूप से नही किया ताकि इसे एक अनिवार्य इबादत न समझ लिया जाए। बाद में खलीफ़ा हजरत उमर ने रमज़ान में रात की नफ़िल नमाज़ (तरावीह) को मस्जिद में एक इमाम के पीछे सामूहिक रूप से जमाअत बनाकर पढ़ने की व्यवस्था बना दी।

इसके अलावा पैग़म्बर साहब ने रमज़ान के आख़री दस दिनों और रातों में मुस्तक़िल

मस्जिद में रह कर इबादत की जिसे एअतिकाफ़ कहते हैं और यह एअतिकाफ़ किसी भी समय किया जा सकता है अगर कोई इबादत गुज़ार करना चाहे। एअतिकाफ़ के चलते आदमी मस्जिद में खा पी सकता है और सो सकता है, लेकिन उसे सफाई सुथराई और पाकी का ध्यान रखना होगा और नमाज़ पढने वालों के लिए कोई दुशवारी उसके वहां रहने और खाने पीने से न हो इसका ध्यान रखना होगा यह शर्त है। एअतिकाफ़ में बैठा व्यक्ति (या औरत) किसी ज़रूरत से अपने घर के सदस्यों से या बाहर के व्यक्ति से बात चीत कर सकता है, लेकिन पति पत्नि यौन इच्छा से बिल्कुल नहीं मिल सकते क्योंकि एअतिकाफ़ के दौरान यौन इच्छा पूरी तरह प्रतिबंधित है (2:187)।

قُلِ ادْعُوا اللّٰهَ اَوِ ادْعُوا الرَّحْمٰنَ ؕ اَيًّا مَّا تَدْعُوْا فَلَهُ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى ۚ وَ لَا تَجْهَرْ بِصَلَاتِكَ وَ لَا تُخَافِتْ بِهَا وَ ابْتَغِ بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيْلًا ۝

आप फ़रमा दीजिये के चाहे अल्लाह कह कर पुकारा या रहमान कह कर जिस नाम से भी पुकारोगे, सो उसके बहुत अच्छे अच्छे नाम हैं और अपनी नमाज़ें ना तो बहुत ज़ोर से पढ़िये और ना बिल्कुल चुपके से, और उन दोनों के दरमियान एक तरीक़ा इख़्तियार कीजिये।

(17:110)

रहमान अल्लाह के "सिफ़ाती नामों" (गुण बयान करने वाले नाम) में से एक नाम है। उसकी दया और कृपा उसके सभी जीवों को हर समय प्राप्त रहती है, सभी इंसानों को भी चाहे उनकी आस्था और धर्म कुछ भी हो और वो अल्लाह की दया व कृपा पर ईमान रखते हों या उसे झुटलाते हों:"हम इनको और उन सबको तुम्हारे रब की बख़्शिश से मदद देते हैं और तुम्हारे रब की बख़्शिश किसी से रुकी हुई नहीं"(17:20)। लिहाज़ा, अल्लाह को अल्लाह (या गॉड या ख़ुदा या प्रभु) कह कर पुकारा जाए जो सभी गुणों का धारक है या उसे उसके किसी गुण विशेष के हवाले से पुकारा जाए, जैसे "रहमान" जिससे अल्लाह का अपने बन्दों के साथ दया व रहमत का सम्बंध रेखांकित होता है, एक ही बात है। अल्लाह के गुणों वाले नाम जिन्हें "असमाउल हुस्ना" कहते हैं बहुत से हैं। पैगम्बर साहब की एक हदीस में 99 नाम बताए गए हैं। (तिरमिजी, इब्ने हय्यान, अलहाकिम, और बेहिकी)

उपरोक्त आयत में वह तरीका भी बताया गया है जिससे मुसलमानों को नमाज में अल्लाह से संवाद करना चाहिए। बहुत जोर की आवाज या दबी हुई आवाज दोनों से बचना चाहिए। आवाज से पढना, खास से तौर उस समय जब नमाज घर में पढी जा रही हो, दूसरों के लिए कष्ट का कारण हो सकता जो किसी वजह से नमाज में शामिल होने की स्थिति में न हों, जबकि बहुत धीमी आवाज से पीछे खडे होकर साथ में पढने वालों के लिए दिक्कत होगी कि

वो सुन नहीं सकेंगे, और अगर व्यक्ति अकेले नमाज पढ रहा है तो उसका ध्यान पूरी तरह नहीं हो पाएगा। अलबत्ता, पैग़म्बस साहब की सुन्नत से यह इशारा मिलता है कि कुछ विशेष नमाजों में या नमाज के कुछ हिस्सों में क़ुरआन की तिलावत कुछ ऊंची आवाज से की जानी चाहिए, दूसरी नमाज़े चुपके चुपके पढ़ना चाहिएं, जबकि नमाज में अल्लाह की तकबीरे और हम्द दरमियानी आवाज से की जा सकती है।

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ
أُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ۠ وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَ
تُبْ عَلَيْنَا ۚ إِنَّكَ أَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿١٢٨﴾

ऐ हमारे रब! तु हमको फ़रमाँबरदार बनाए रख! और हमारी औलाद में से भी एक जमाअत को अपना मतीअ बना। और हमें अपनी इबादत के तरीक़े सिखा दे, और हमारी तरफ़ अपनी रहमत से तवज्जह फ़रमा, बिलाशुबहः तू अपने बन्दों पर तवज्जोह फ़रमाता है और अपनी रहमतों से नवाज़ता है। (2:128)

رَبَّنَآ إِنِّيٓ أَسْكَنْتُ مِنْ ذُرِّيَّتِيْ بِوَادٍ غَيْرِ
ذِيْ زَرْعٍ عِنْدَ بَيْتِكَ الْمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا
لِيُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ أَفْئِدَةً مِّنَ
النَّاسِ تَهْوِيْٓ إِلَيْهِمْ وَارْزُقْهُمْ مِّنَ
الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُوْنَ ﴿٣٧﴾

ऐ हमारे रब! मैंने अपनी औलाद को मैदान में जहां खेती नहीं होती तेरे मुक़द्दर घर के पास ला बसाया है, ऐ हमारे रब! ताके ये नमाज़ क़ायम करें, पस आप तो कुछ लोगों के दिलों को उनकी तरफ़ मायल कर दें, और मेवे खाने को अता फ़रमा दें ताके शुक्र करें। (14:37)

رَبِّ اجْعَلْنِيْ مُقِيْمَ الصَّلٰوةِ وَمِنْ ذُرِّيَّتِيْ ۖ
رَبَّنَا وَتَقَبَّلْ دُعَآءِ ﴿٤٠﴾

ऐ मेरे रब! तू मुझे नमाज़ का क़ायम करने वाला बना, और मेरी औलाद में भी बाज़ को, ऐ हमारे रब! और मेरी दुआ क़बूल फ़रमा। (14:40)

وَاذْكُرْ فِي الْكِتٰبِ إِسْمٰعِيْلَ ۚ إِنَّهٗ كَانَ
صَادِقَ الْوَعْدِ وَكَانَ رَسُوْلًا نَّبِيًّا ﴿٥٤﴾ ۚ وَ
كَانَ يَأْمُرُ أَهْلَهٗ بِالصَّلٰوةِ وَالزَّكٰوةِ ۚ وَ
كَانَ عِنْدَ رَبِّهٖ مَرْضِيًّا ﴿٥٥﴾

और इस किताब में इसमाईल का भी ज़िक्र कीजिये, वो बेशक वादा के सच्चे थे, वो रसूल भी थे, और नबी भी थे। और वो अपने घर वालों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म करते थे, और अपने रब की नज़दीक पसंदीदा थे। (19:54-55)

وَ اَوۡحَیۡنَاۤ اِلٰی مُوۡسٰی وَ اَخِیۡهِ اَنۡ تَبَوَّاٰ لِقَوۡمِكُمَا بِمِصۡرَ بُیُوۡتًا وَّ اجۡعَلُوۡا بُیُوۡتَكُمۡ قِبۡلَةً وَّ اَقِیۡمُوا الصَّلٰوةَ ؕ وَ بَشِّرِ الۡمُؤۡمِنِیۡنَ ﴿۸۷﴾

और हमने मूसा और उसके भाई को व ही की के तुम अपने लोगों के लिये मिस्र में घर बनाओ, और अपने घरों को नमाज़ की जगह बनाओ, और नमाज़ पढ़ते रहो और मोमिनीन को ख़ुशख़बरी दे दें। (10:87)

हर आदमी पर अपने घर वालें यानि पति या पत्नि और बच्चों में नमाज अदा करने की भावना जगाने और इसके लिए ज़ोर देते रहने की ज़िम्मेदारी है। यह निर्देश फ़र्ज (अनिवार्य) नमाज़ निश्चित रूप से अदा करने पर ज़ोर देने से शुरू होना चाहिए ताकि उन्हें इसके अध्यात्मिक और व्यवहारिक फ़ायदों का अनुभव हो और इबादत की इस संकल्पना को वो ठीक से समझें। फिर जब उन्हें इसके महत्व और इसकी उपयोगिता का अहसास होगा तो उनमें और अधिक इबादत का शौक भी पैदा होगा। अल्लाह से मुस्तक़िल दुआ और संवाद करने से ईमान व रूह को ताज़गी मिलती है और इसमें इज़ाफा होता रहता है (29:45), और इबादत के काम इबादत करने वाले को सफ़ाई व पाकी और बहतरीन व्यक्तिगत व सामाजिक आचरण व संस्कार की शिक्षा व प्रशिक्षण देते हैं। इस्लाम की इबादत इबादत करने वालों को समानता, पाकी व सफाई, अनुशासन, ग़लतियों के सुधार, आत्मनियंत्रण और विश्व एकता जैसे गुण सिखाने का माध्यम बनती हैं। यह एक बिल्कुल प्राकृतिक तक़ाज़ा है कि अल्लाह के पैग़म्बर अपने सगे सम्बंधियों को नमाज़ की उन बरकतों को हासिल करने की प्रेणा दें, जैसा कि ऊपर की आयत से ज़ाहिर होता है, और अल्लाह से दुआ करें कि उनके घर वाले अल्लाह की इबादत में उनका अनुसरण करें और अल्लाह की हिदायत पर चलें।

पैग़म्बरों ने अपने पैगाम को लोगों के दिलों और दिमागों में बैठाने की तरफ ध्यान दिया, और अपने क़रीबी लोगों को उस पैगाम के प्रचार का माध्यम बनाया। उन्होंने उस दीन को मज़बूती से थामना सिखाया और न केवल एक अल्लाह पर ईमान पर जमने की शिक्षा दी बल्कि इबादत के सभी कामों को अंजाम देने और उनके अध्यात्मिक व व्यवहारिक फ़ायदों से उन्हें लाभान्वित होना सिखाया (और देखें 2:132-133)। हज़रत मूसा और हज़रत हारून ने एक क़दम आगे बढ़ कर अपने अनुयायियों को यह निर्देश दिया कि "अपने घरों को इबादत की जगह बना लें" (10:87), क्योंकि वो अत्याचार और उत्पीड़न में जी रहे थे और उन्हें ईमान के इज़हार की आज़ादी नहीं थी क्योंकि उनका ईमान और आस्था राजा द्वारा स्वीकृत आस्था के विपरीत थी। पिता हमैशा अपने बच्चों को अपने अनुभव बताते हैं ताकि वो उनसे फ़ायदा उठाएं और जहां तक हो सके ग़लतियों से बच सकें, और एक अल्लाह पर ईमान व उसकी इबादत सबसे बड़ा व बुलन्द अनुभव है, ख़ास तौर से पैग़म्बरों के लिए।

فَاصْبِرْ عَلٰى مَا يَقُوْلُوْنَ وَ سَبِّحْ بِحَمْدِ
رَبِّكَ قَبْلَ طُلُوْعِ الشَّمْسِ وَ قَبْلَ غُرُوْبِهَا ۚ
وَ مِنْ اٰنَآئِ الَّيْلِ فَسَبِّحْ وَ اَطْرَافَ النَّهَارِ
لَعَلَّكَ تَرْضٰى ﴿١٣٠﴾ وَ لَا تَمُدَّنَّ عَيْنَيْكَ اِلٰى
مَا مَتَّعْنَا بِهٖۤ اَزْوَاجًا مِّنْهُمْ زَهْرَةَ الْحَيٰوةِ
الدُّنْيَا ۙ لِنَفْتِنَهُمْ فِيْهِ ؕ وَ رِزْقُ رَبِّكَ
خَيْرٌ وَّ اَبْقٰى ﴿١٣١﴾ وَ اْمُرْ اَهْلَكَ بِالصَّلٰوةِ وَ
اصْطَبِرْ عَلَيْهَا ؕ لَا نَسْـَٔلُكَ رِزْقًا ؕ نَحْنُ
نَرْزُقُكَ ؕ وَ الْعَاقِبَةُ لِلتَّقْوٰى ﴿١٣٢﴾

पस जो ये बकवास करते हैं उस पर सब्र कीजिये, और अपने रब की हम्द के साथ, सूरज निकलने से पहले और ग़रूब होने से पहले तसबीह कीजिये, रात की साआत में तसबीह किया कीजिये, और दिन के अव्वल और आख़िर में भी ताके आप ख़ुश हों। और आराईश की चीज़ों पर हरगिज़ निगाह ना करना, जो हमने चन्द गिरोहों को अदुनियावी ज़िन्दगी में रौनक़ के लिये दी हैं ताकि हम उनकी आज़माईश करें और आपके रब की अताकर्दा रोज़ी बहुत बेहतर है और बाक़ी रहने वाली है। और अपने घर वालों को नमाज़ का हुक्म किया कीजिये, और ख़ुद भी उसकी पाबंदी रखें, हम आपसे रोज़ी के तालिब नहीं हैं रोज़ी तो हम आपको देते हैं, और नेक अंजाम तो तक़वा और परहेज़गारी का है। (20:130-132)

जो लोग अपने ईमान और नैतिक मूल्यों पर जमे होते हैं और उसके लिए वो शुद्ध भावना रखते हैं उन्हें अपने आसपास के माहौल में इस ईमान व अख़लाक के विपरीत होने वाली बातों को झेलना पड़ता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें बुराइयों को मिटाने का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि यह प्रयास और संघर्ष इस्लाम में ज़रूरी है। उन्हें जिस चीज़ से बचना चाहिए वह है जल्दबाज़ी और असहनशीलता कि ये कमज़ोरियां प्रतिक्रिया का कारण बनती हैं और बे सोचे समझे झगड़ बैठने की वजह बनती हैं। मोमिनों को अल्लाह का ज़िक्र (याद व जाप) करते रहना चाहिए और दिन व रात समय समय पर अल्लाह की वन्दना व गुणगान करते रहना चाहिए ताकि उनके दिलों को इतमिनान (संतोष) और दिमाग़ों को शान्ति मिले और ये चीज़ उनमें संयम, धैर्य और स्थिरता को बढ़ाती है। उन्हें अल्लाह से मदद और सहारे की दुआ करना चाहिए जिससे उन्हें बुराइयों के विरुध संघर्ष करते रहने का जज़्बा मिलेगा और इस काम से दुनिया में उन्हें मन की शान्ति के रूप में बदला मिलेगा और अपने मक़सद व लक्ष्य को प्राप्त करने की उम्मीद मिलेगी। फिर इस दुनिया में उन्हें उनकी मंजिल मिले या न मिले हर दोनों स्थितियों में उनका वास्तविक और महान बदला आख़िरत में मिलने वाला है। यह चीज़ दिन भर में अदा की जाने वाली पांच समय की नमाजों से प्राप्त होती है। अल्लाह से क़रीब होने की भावना और संयम व धीरज की अध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए आदमी नफ़िल (ऐच्छिक) नमाजें पढ़ सकता है जो पैग़म्बर साहब से साबित हैं। इस्लाम जहां एक औसत दर्जे के कर्म के लिए आदर्श देता है वहीं मोमिनों को नेक कामों और इबादत में एक दूसरे से

प्रतिस्पर्धा करने की प्रेरणा भी देता है 3:133(25:32(56:7-14(57:21(83:26)। नमाज़ को पाबन्दी से और सही ढंग से अदा करने के लिए धीरज और संयम की ज़रूरत होती है, और इस तरह नमाज़ स्थिरता और निरन्तरता पैदा करने का माध्यम बनती है और इन मूल्यों व गुणों की बदौलत ही इस पर जमे रहने की ताक़त मिलती है। घर वालों और मिलने जुलने वालों को नमाज़ और इबादत की सीख देते रहने से इंसान की व्यक्तिगत अध्यात्मिक शक्ति में वृ) होती है और इबादत गुज़ारों की जमाअत को सामूहिकता और सौहार्द का ख़ुशगवार अहसास होता है।

एक संवेदनशील और समझदार इंसान का जीवन अल्लाह से मांगते रहने में बीतता है और इस तरह इंसान को सफ़लता के घमण्ड और असफ़लता की निराशा से बचने की योग्यता प्राप्त होती है। इस संसारिक जीवन के आनन्द बहुत आकर्षित करने वाले हैं लेकिन इन भौतिक आनन्दों की तुलना इंसान के मन की संतुष्टि और संतोष से नहीं की जा सकती जो इंसान को स्वार्थ और अदूरदर्शिता से ऊपर उठने पर प्राप्त होता है, और न ही इसकी तुलना आख़िरत में मिलने वाले बदले से की जा सकती है। चुनांचि इस संसारिक जीवन की भौतिक और मनोवैज्ञानिक प्रसन्नताएं अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोगों को उनकी कोशिशों के अनुसार एक परीक्षा के रूप में मिलती हैं, और ये आनन्द जल्द ही समाप्त भी हो जाते हैं जबकि संतोष और दीन के अनुसार अपने बस भर चलने की कोशिश और आख़िरत में मिलने वाला बदला उन लोगों की वास्तविक उपलब्धि है जो अपनी अक़ल से काम लेते हैं और हमेशा के आनन्द को अपने लिए चुनते हैं।

اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِي الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَ اَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَ نَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لِلّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ﴿۴۱﴾

ये वो लोग हैं के अगर हम उनको हुकूमत दें मुल्क में तो वो नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें और नेक काम करने का हुक्म दें और बुरे कामों से मना करें, और सब कामों का अंजाम अल्लाह ही के इख़्तियार में है। (22:41)

शासक जिन्हें देश की जनता अधिकार देती है (4:59) उनकी यह ज़िम्मेदारी है कि सलात क़ायम करें (अर्थात नमाज़ की व्यवस्था बनाएं) और लोगों के अन्दर तक़वा (ईशभय), नेक अमल, अच्छे संस्कार व नैतिक आचरण को विक्सित करें और उनके दिलों में तथा आपस के सम्बंधों में इंसानी अधिकारों और एक दूसरे के सम्मान की भावना को पैदा करें।

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ ۙ﴿۱﴾ الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ ۙ﴿۲﴾

तहक़ीक़ उन ईमान वालों ने फ़लाह हासिल कर ली। जो अपनी नमाज़ में इजज़ो नियाज़ करते हैं। (23:1-2)

जो लोग पूरे ध्यान और लगन के साथ नमाज़ अदा करते हैं उन्हें इबादत का लक्ष्य प्राप्त होता है और इबादत से जो चीज प्राप्त करना होती है वह मिलती है। नमाज़ या दुआ अपने सुधार का एक माध्यम है, और जब आदमी अल्लाह के सामने खड़ा होता है तो उसे ख़ुद अपनी हैसियत का अहसास होता है। जो लोग लगन से नमाज़ पढते हैं और अल्लाह से मार्गदर्शन की दुआ करते और सीधे रास्ते पर चलने में मदद मांगते हैं उन्हें अपनी इबादतों से कुछ संस्कार सीखने को मिलते हैं जैसे सफ़ाई सुथराई, समय की पाबन्दी, सामूहिक आचरण, अनुशासन, ग़लतियों का सुधार, अल्लाह का डर, अनुचित कामों से बचने की प्रवृत्ति। इसके अतिरिक्त उन्हें वह कामयाबी भी मिलेगी जो इन चीज़ों से बहुत बड़ी है यानि आख़िरत की कामयाबी।

وَالَّذِيْنَ هُمْ عَلٰى صَلَوٰتِهِمْ يُحَافِظُوْنَ ۝

और जो अपनी नमाज़ों की पाबंदी करते हैं। (23:9)

(और देखें 70:34)

नमाज़ में विनम्रता और मन की एकसूई (एकाग्रता) पैदा करने के साथ साथ मोमिन के लिए यह भी ज़रूरी है कि वह नमाज़ के नियमों की पूरी पाबन्दी करे। नमाज़ को इस तरह से अदा करना जैसे कि करना चाहिए इंसान की अध्यात्मिक सफ़लता के लिए ज़रूरी है क्योंकि इस तरह मोमिन बन्दा अल्लाह के क़रीब होता है और उसे जीवन के सभी पहलुओं से नमाज़ की बरकतें प्राप्त होती हैं जैसे भौतिक फ़ायदे, अध्यात्मिक फ़ायदे और मनोवैज्ञानिक फ़ायदे, व्यक्तिगत रूप से भी और सामाजिक रूप से भी।

اُتْلُ مَآ اُوْحِيَ اِلَيْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لَذِكْرُ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ وَ اللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ ۝

(ऐ नबी) आप इस किताब को पढ़ा कीजिये, जो आप पर वही की गई है, और नमाज़ की पाबंदी कीजिये, यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है, और अल्लाह का ज़िक्र बहुत बड़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29:45)

क़ुरआन की तिलावत या उसे पढ़ने के साथ यह विचार भी पैदा होता है कि जो कुछ पढ़ा या तिलावत किया है उसका मतलब क्या है? ताकि हमारा जीवन भौतिक, बौद्धिक और अध यात्मिक, मनोवैज्ञानिक व नैतिक समस्त पहलुओं से इस हिदायत के अनुसार बीते, इस तरह नमाज़ और इबादत का मक़सद पूरा होता है। नमाज़ हमें इस बात पर उभारती है कि हम ऐसे विचारों या कामों से बचें जो अल्लाह के सामने हमारे लिए शर्मिन्दगी का कारण बनें या लोगों के सामने हमें शर्मिन्दा होना पड़े, चाहे यह अप्रिय विचार या काम स्वयं हम शुरू करें या हम इसके प्रभाव में आएं या उसमें भागीदार बनें। नमाज़ हमारे जीवन को ऐसा बनाती है कि हम

अल्लाह को अपने सामने मौजूद पाते हैं यानि हमें यह चिंता रहती है कि अल्लाह हमें देख रहा है और हमारे मस्तिष्क में ऐसे विचार लाती है जो पहले से हमारे सामने नहीं होते, और इसकी प्रेरणा हमारे पूरे जीवन पर महसूस होती है। इस तरह नमाज़ (या इबादत) इंसान के दिल व दिमाग़ को अल्लाह के सामने जवाबदेही की भावना से भर देती है और व्यक्तिगत व सामाजिक सुधार का एक अनोखा माध्यम बनती है।

يٰبُنَيَّ اَقِمِ الصَّلٰوةَ وَاْمُرْ بِالْمَعْرُوْفِ وَانْهَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَاصْبِرْ عَلٰى مَآ اَصَابَكَ ؕ اِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ﴿۱۷﴾

ऐ मेरे बेटे! नमाज़ पाबंदी से अदा करते रहना! और अच्छी बातों का हुक्म करते रहना, और बुरी बातों से मना करते रहना, और उस मुसीबत पर सब्र करते रहना जो तुझे पहुंचे, बिलाशुबह ये बड़ी हिम्मत के काम हैं। (31:17)

बच्चों का पालनपोषण केवल यही नहीं है कि उनकी शरीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था कर ली जाए, बल्कि बच्चे के अन्दर नैतिकता और अध्यात्मिकता को विक्सित करना भी ज़रूरी है ताकि उसका विकास संतुलित और सामूहिक रूप से हो। नमाज़ को क़ायम करना और उसकी पाबन्दी केवल एक मेकेनिकल व्यवहार नहीं है बल्कि उसके द्वारा सकारात्मक गुण विक्सित होना चाहिएं। अतःनमाज़ को अगर सही तरीक़े से अदा किया जाए तो इससे ऊंचे नैतिक आचरण का विकास होगा, और व्यक्ति को अच्छे काम करने की प्रेरणा मिलेगी और ग़लत कामों से बचने का जज़्बा पैदा होगा। अल्लाह से मुस्तक़िल दुआ व विनती करने रहने से बन्दे को सामाजिक तक़ाज़ों का अहसास होता है और समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को अदा करने में मदद मिलती है। व्यक्तिगत व सामाजिक मामलों को अंजाम देने में संयम और धैर्य से व्यक्ति और समाज दोनों को इस जीवन के सभी क्षेत्रों में भी कामयाबी मिलेगी और वह कुछ भी प्राप्त होगा जो अल्लाह के पास है और आख़िरत के जीवन में मिलने वाला है।

اِنَّ الْاِنْسَانَ خُلِقَ هَلُوْعًا ﴿۱۹﴾ اِذَا مَسَّهُ الشَّرُّ جَزُوْعًا ﴿۲۰﴾ وَّ اِذَا مَسَّهُ الْخَيْرُ مَنُوْعًا ﴿۲۱﴾ اِلَّا الْمُصَلِّيْنَ ﴿۲۲﴾ الَّذِيْنَ هُمْ عَلٰى صَلَاتِهِمْ دَآئِمُوْنَ ﴿۲۳﴾ وَ الَّذِيْنَ فِيْٓ اَمْوَالِهِمْ حَقٌّ مَّعْلُوْمٌ ﴿۲۴﴾ لِّلسَّآئِلِ وَالْمَحْرُوْمِ ﴿۲۵﴾

बिला शुबह इन्सान कम हौसला पैदा हुआ है। जब उसे तकलीफ़ पहुंचती है तो घबरा उठता है। और जब आसाईश हासिल होती है तो बख़ील बन जाता है। मगर नमाज़ गुज़ार। जो नमाज़ का एहतमाम करते और बिला नाग़ा पढ़ते हैं। और जिन के माल में हिस्सा मुक़र्रर है। (यानी) मांगने वाले का, और ना मांगने वाले का। (70:19-25)

अक़्ल और इरादे की आज़ादी के दुरुपयोग से और इस पर मानवीय कमज़ोरियों जैसे अहंकार व जल्दबाज़ी के कारण इंसान सफ़लता या असफ़लता की स्थिति में अपना संयम और आत्मनियंत्रण खो देता है। वह कभी संतुष्ट या संतुलित नहीं रहता बल्कि सफ़लता के नशे में घमण्ड और अहंकार और असफ़लता की स्थिति में निराशा और हताशा के बीच झूलता रहता है। लेकिन जो लोग नमाज़ क़ायम करते हैं और पूरी भावना व लगन से अदा करते हैं उन्हें दुख और कष्ट के समय धैर्य रखने और शक्ति व अधिकार प्राप्त होने की स्थिति में घमण्ड़ी और बे-लगाम होने से बचने की सीख मिलती है। नमाज़ से दिल व दिमाग़ में अल्लाह का तक़वा बैठना चाहिए, यह केवल एक औपचारिक क्रिया नहीं बननी चाहिए। नमाज़ का अर्थ है अल्लाह के समक्ष अपने आपको पूरी तरह झुका देना और उसकी इच्छा व मार्गदर्शन के आगे आत्मसमर्पित हो जाना। अल्लाह के आगे यह आत्मसमर्पण व्यक्ति को सामाजिक संतुलन देता है और जीवन के उतार चढ़ाव में उसे संतुलित रखता है।

नमाज़ के फ़ायदों में से एक फ़ायदा यह भी है कि आदमी समाज और इंसानियत के साथ अपने रिशते को पहचाने और अपने आधीन चीजों में अन्य ज़रूरतमंदों को शरीक करे चाहे वो मांगने पर मजबूर हो गए हों या अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए अपनी ज़रूरतें छुपाए हुए हों। क़ुरआन में कई जगह पर नमाज़ को क़ायम करने के हुक्म के साथ ज़कात देने का हुक्म भी है। उपरोक्त आयतों में अपनी ज़रूरत से अधिक माल या संसाधन रखने वालों के माल व संसाधनों में ज़रूरतमंदों के अधिकार को माना गया है और उसे जताया गया है (70:24-25)। अतःजरूरतमंद को देना उसका हक़ है उसके ऊपर केवल अहसान करना और अपने लिए सवाब कमाना ही नहीं है। इस्लाम की शिक्षाओं में सभी क्षेत्रों में सामाजिक व आर्थिक न्याय निहित है चाहे ये शिक्षाएं ईमान व अक़ीदे, इबादतों, नैतिक मूल्यों से सम्बंधित हों या कानून व शरीअत से सम्बंधित हों (देखें क़ानून के अध्याय में सामाजिक व आर्थिक न्याय)।

वास्तव में जो लोग मदद के इच्छुक होते हैं उनकी ज़रूरतों के बारे में पहले गहराई से छानबीन कर लेनी चाहिए ताकि सहायता राशि सही जगह पहुंच सके और ज़रूरतमंद अपने पांव पर खड़े होने की स्थिति में आ सकें। ज़रूरतमंद को अपने रोज़गार के लिए मुस्तक़िल साधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से उसे शिक्षा और काम का प्रशिक्षण तथा काम दिलाना चाहिए ताकि वह लगातार ख़ैरात और ज़कात पर निर्भर न रहे। इस तरह के सदक़े व ख़ैरात इस्लाम के उन सिद्धांतों को पूरा करने के लिए हैं जिनसे माल कमाने और खर्च करने के सम्बंध में मार्गदर्शन और शर्तें मालूम होती हैं और उन लोगों की मदद के लिए हैं जो अक्षम हों और काम या महनत करना उनके बस में न हो।

اَرَءَيْتَ الَّذِىْ يُكَذِّبُ بِالدِّيْنِ ۝١ فَذٰلِكَ الَّذِىْ يَدُعُّ الْيَتِيْمَ ۝٢ وَلَا يَحُضُّ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ۝٣ فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّيْنَ ۝٤ الَّذِيْنَ هُمْ عَنْ صَلَاتِهِمْ سَاهُوْنَ ۝٥ الَّذِيْنَ هُمْ يُرَآءُوْنَ ۝٦ وَيَمْنَعُوْنَ الْمَاعُوْنَ ۝٧

क्या तुमने उस शख़्स को नहीं देखा जो रोज़े जज़ा का इन्कार करता है। तो ये वही है जो यतीम को धक्के देता है। और फ़क़ीर को खाना खिलाने की तरग़ीब नहीं देता। तो ऐसे नमाज़ियों के लिये ख़राबी है। जो अपनी न मज़ा की तरफ़ से ग़ाफ़िल रहते हैं। और ऐसे हैं के (लोगों को) दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ते हैं। और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें मांगने पर भी नहीं देते (यानी आरज़ी तौर पर) (107:1-7)

सच्ची इबादत (बन्दगी) केवल कुछ शरीरिक क्रियाओं पर ही आधारित नहीं होती जो दिल व दिमाग़ में अल्लाह की मौजूदगी के अहसास के बिना और उसके दिशा निर्देश को समझे व अपनाए बिना अंजाम दी जाएं। ज़रूरतमंदों की चिंता और उनसे हमदर्दी ज़ाहिर करना इसमें न हो तो शरीरिक क्रियाएं निश्चित रूप से खोखली और बे-मतलब इबादत हैं। ऐसा कठोर ह्रदेय और स्वार्थी व्यक्ति स्वार्थ और कंजूसी से भी आगे बढ़ कर अत्याचारी बन जाता है कि बेसहारा और ज़रूतरमंद यतीम को धक्के देकर धुत्कारता है और दूसरों को भी ज़रूरतमंदों की मदद करने से रोकता है। इस तरह की उदासीनता और निष्क्रियता या कुकर्मों में लिप्त व्यक्ति की नमाज़ को इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि वह केवल दिखावा है। इस तरह के लोगों की क़ुरआन में दोहरी निन्दा की गयी है, एक तो उनके दोग़लेपन की वजह से और दूसरी उनके स्वार्थीपन, कंजूसी और निर्ममता के संदर्भ में।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا نُوْدِىَ لِلصَّلٰوةِ مِنْ يَّوْمِ الْجُمُعَةِ فَاسْعَوْا اِلٰى ذِكْرِ اللّٰهِ وَذَرُوا الْبَيْعَ ۭ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٩ فَاِذَا قُضِيَتِ الصَّلٰوةُ فَانْتَشِرُوْا فِى الْاَرْضِ وَابْتَغُوْا مِنْ فَضْلِ اللّٰهِ وَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ۝١٠ وَاِذَا رَاَوْا تِجَارَةً اَوْ لَهْوَا ِۨانْفَضُّوْٓا اِلَيْهَا وَتَرَكُوْكَ قَآىِٕمًا ۭ قُلْ مَا عِنْدَ اللّٰهِ خَيْرٌ مِّنَ اللَّهْوِ وَمِنَ التِّجَارَةِ ۭ وَاللّٰهُ خَيْرُ الرّٰزِقِيْنَ ۝١١

मोमिनों! जब जुमा के दिन नमाज़ के लिये अज़ान दी जाये तो अल्लाह की याद की तरफ़ चल पड़ो और खरीदो फ़रोख़्त छोड़ दो, ये तुम्हारे हक़ में बेहतर है, अगर तुम जान जाओ। फ़िर जब नमाज़ हो चुके, तो अपनी अपनी राह लो, और अल्लाह का फ़ज़्ल तलाश करो, और अल्लाह को बहुत बहुत याद करते रहो, ताके निजात पाओ। और जब ये लोग सौदा बिकता देखते हैं या तमाशा देखते हैं तो उधर चले जाते हैं और तुम्हें छोड़ जाते हैं कह दो के जो चीज़ अल्लाह के पास है वो तमाशे और सौदे से कहीं बेहतर है, और अल्लाह बेहतरीन रिज़्क़ देने वाला है। (62:9-11)

इस्लाम ने मुसलमानों को रोज़ाना पांच समय जमाअत से (एक साथ मिलकर) नमाज़ अदा करने का निर्देश दिया है जहां तक सम्भव हो, और हर जुमे को दोपहर की विशेष नमाज़ जमाअत से मस्जिद में अदा करना अनिवार्य किया है। उपरोक्त आयतों में व्यक्ति और समाज की अध्यात्मिक और भौतिक ज़रूरतों के बीच एक संतुलन दिया गया है। जब मोमिन जुमा की नमाज़ के लिए अज़ान सुने तो उसे तुरन्त अपने संसारिक काम छोड देना चाहिएं और नमाज़ की तैयारी में लग जाना चाहिए और जल्द से जल्द मस्जिद पहुंच कर इबादत में लग जाना चाहिए, और फिर जब नमाज़ हो चुके तो मोमिनों को ज़मीन में फैल जाना चाहिए ताकि वो अल्लाह का फज़ल (रोज़ी) तलाश करें और उसकी गतिविधियों में लग जाएं। मोमिन को इस दुनिया में किए जाने वाले अपने कामों के हवाले से आख़िरत की भलाई तलब करना चाहिए और इस दुनिया में उसका जो जायज़ हक और ज़िम्मेदारी है उसे भी नहीं भूलना चाहिए (28:77), और उसकी दुआ अल्लाह से हमेशा यह होना चाहिए कि उसे इस दुनिया में भी भलाई प्राप्त हो और आखरित में भी भलाई मिले (2:201)।

एक बड़ी सामूहिक नमाज़ वर्ष में दो बार सुबह के समय अदा की जाती है, एक रमज़ान के रोज़े पूरे होने के बाद नए महीने की सुबह और दूसरी ज़िलहिज के महीने में हज की इबादत मुकम्मल होने के बाद महीने की दसवीं तारीख़ को। दूसरी सामूहिक नमाज़ें जैसे रमज़ान की रातों में तरावीह की नमाज़, बारिश की दुआ के लिए सामूहिक नमाज़ और सूरज या चांद ग्रहण के समय अदा की जाने वाली नमाज़, अनिवार्य नहीं हैं। व्यक्तिगत रूप से अल्लाह से अपनी किसी ज़रूरत के लिए या स्तेख़ारे के लिए नमाज़ अदा की जा सकती है। इस्लाम व्यक्ति और उसके रब के बीच रास्ता खोलता है कि इस तरह अल्लाह से लगातार दुआ का सम्पर्क व सम्बंध बनाए रखने से आदमी का ईमान गहरा होता है और जीवन के उतार चढ़ाव का सामना करने के लिए उसका मनोबल मज़बूत होता है।

ज़कात

الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۙ﴿۳﴾

जो यक़ीन रखते हैं पोशीना चीज़ों का और क़ायम रखते हैं नमाज़ को और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से ख़र्च करते हैं। (2:3)

क़ुरआन की बुनियादी शिक्षाओं में से एक है "इनफ़ाक़"। यानि दूसरों पर खर्च करना। इसका व्यापक अर्थ है वह सब कुछ खर्च करना जो इंसान को मिला हुआ हो और जिससे वह दूसरों को फ़ायदा पहुंचा सकता हो जैसे ताक़त, ज्ञान, हुनर (कला) प्रभाव और रसूख़ वग़ैरह। इस इनफिक़ाक की शिक्षा कुरआन में जगह जगह दी गयी है। इनफ़ा का निर्देश नमाज़ के साथ जोड़ कर दिया गया है और इन दोनों इबादतों का ज़िक्र एक ही महत्व के साथ ईमान के तुरन्त बाद आता है क्योंकि ये दोनों ही काम इंसान के व्यवहार में इस ईमान को दर्शाते हैं और उसके कामों में दिखाई देते हैं ।

وَ اِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْۤ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۫ وَ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ ذِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَ قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَ اَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿۸۳﴾

याद करो इसराईल की औलाद से हमने पक्का वादा लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना, माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के साथ, यतीमों, और मिस्कीनों के साथ नेक सुलूक करना, लोगों से भला बात कहना, नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब उस वादे से फिर गये और अब तक फिरे हुए हो। (2:83)

ज़कात अदा करना यानि माल को पाक करने वाली रक़म अपने माल से निकाल कर ज़रूरतमंदों को देने की ज़िम्मेदारी अल्लाह के दीन में नमाज़ की इबादत के साथ जुड़ी रही है और इस दोहरी ज़िम्मेदारी का ज़िक्र क़ुरआन में लगभग 30 बार आया है। यह आयत ज़कात और अल्लाह व पैग़म्बर तथा आख़िरत पर ईमान के बीच सम्बंध पर ज़ोर देती है कि जो नेक अमल तुम अपने लिए आगे भेजोगे उसको अल्लाह के यहां बहतर और बदले में बहुत अधिक पाओगे (73:20(2:110)।

उपरोक्त आयत में नमाज़ का ज़िक्र ज़कात के साथ है और इन दोनों से पहले एक अल्लाह की इबादत और मातापिता के साथ अच्छा व्यवहार तथा रिश्तेदारों, यतीमों और ग़रीबों के साथ अच्छे ढंग से पेश आने की शिक्षा दी गयी है। अन्तिम निर्देश का मतलब केवल यह नहीं लेना

चाहिए कि केवल अच्छे ढंग से बोलने को ही कहा गया है बल्कि अच्छे और न्यायपूर्ण मामलों पर यह बात फिट होती है। यह आयत इशारा करती है कि ये नैतिक मूल्य बनी इस्राईल के पास आने वाले अल्लाह के पैग़ाम का मूल तत्व हैं और अल्लाह से की गई प्रतिज्ञा का अंग हैं, जिस तरह बाक़ी सभी पैग़म्बरों पर अवतरित होने वाली शिक्षाओं में भी यह बातें बुनियादी महत्व रखती हैं।

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ۚ وَ مَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٩٢﴾

तुम कभी कभी कोई नेकी हासिल न कर सकोगे जब तक तुम अल्लाह की राह में अपनी अज़ीज़ तरीन चीज़ ना ख़र्च करो और जो भी तुम ख़र्च करोगे अल्लाह उसको जानता है। (3:92)

अहसान (उपकार) और ईसार (अपने हक़ को दूसरों के लिए छोड़ना) की सच्ची भावना का सुबूत इस बात से मिलता है कि आदमी दूसरों (ज़रूतमंदों) को वह चीज़ दे जो स्वयं उसकी अपनी प्रिय चीज है और जिसकी वह बहुत चाहत रखता है। देना केवल माल देने तक ही सीमित नहीं है, यहां बुनियादी बात यह कही जा रही है कि जो कुछ तुम्हें प्यारा हो उसमें से खर्च करो चाहे थोड़ा हो या ज़्यादा। किसी का अपने सीमित साधनों से छोटा से अंश निकालना किसी दूसरे के असीमित साधनों में से एक बड़ा सा हिस्सा निकाले जाने से ज़्यादा महत्वपूर्ण बात हो सकती है। व्यक्ति अपनी उर्जा, अपने समय, अपनी योग्यता व क्षमता, अपनी कला और अपने प्रभाव से किसी ज़रूरतमंद को फ़ायदा पहुंचा सकता है। जो कुछ बी ख़र्च किया जाए और उसका जितनी भी मूल्य है उससे अलग, असिल बात यह है कि आदमी को अपने अंदर दूसरों के लिए उन चीज़ों में से खर्च करने की आदत को बढ़ाना चाहिए जो ख़ुद उसके अपने लिए बहुत महत्पूर्ण हैं और स्वार्थीपन से बचना चाहिए तथा सदव्यवहार की भावना बढ़ाना चाहिए।

كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ تَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ؕ وَ لَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ؕ مِنْهُمُ الْمُؤْمِنُوْنَ وَ اَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ ﴿١١٠﴾

तुम बेहतरीन जमात हो जो अवामुन्नास की ख़िदमत के लिए निकली है, तुम नेकी के लिए कहते हो और बदी से रोकते हो, और अल्लाह पर ईमान लाए हो, और अगर अहले किताब ईमान ले आते तो उनके लिए बेहतर होता, उनमें से बाज़ तो मुसलमान हैं, और अक्सर उनमें काफ़िर हैं। (3:110)

ईमान वाले आदमी से केवल यही उम्मीद नहीं की जाती कि वह अच्छे काम करे और लोगों के साथ अच्छा मामला करे, बल्कि पूरे समाज में इस अच्छाई को फैलाने और बुराइयों को रोकने की अपेक्षा भी की जाती है। इसमें ज़कात देना और अपने साधन खर्च करना, शरीरिक, भौतिक, बौद्धिक या नैतिक मदद देना सब शामिल हैं। आयत 107:3 में मोमिनों से तक़ाज़ा किया गया है कि ज़रूरतमंदों को देने के लिए लोगों को उक्साएं और प्रेरित करें।

وَ هُوَ الَّذِیۡۤ اَنۡشَاَ جَنّٰتٍ مَّعۡرُوۡشٰتٍ وَّ غَیۡرَ مَعۡرُوۡشٰتٍ وَّ النَّخۡلَ وَ الزَّرۡعَ مُخۡتَلِفًا اُکُلُهٗ وَ الزَّیۡتُوۡنَ وَ الرُّمَّانَ مُتَشَابِهًا وَّ غَیۡرَ مُتَشَابِهٍ ؕ کُلُوۡا مِنۡ ثَمَرِهٖۤ اِذَاۤ اَثۡمَرَ وَ اٰتُوۡا حَقَّهٗ یَوۡمَ حَصَادِهٖ ۫ وَ لَا تُسۡرِفُوۡا ؕ اِنَّهٗ لَا یُحِبُّ الۡمُسۡرِفِیۡنَ ۙ﴿۱۴۱﴾

और वही है जिसने बाग़ात पैदा किये छत्रियों पर चढ़ाये हुए और नहीं चढ़ाये हुए भी, और खजूर और खेती जिनके तरह तरह के फ़ल होते हैं, और ज़ैतून और अनार जो बाज़ बातों में मिलते जुलते हैं और बाज़ बातों में नहीं मिलते, और जब ये फ़ल दें तो उनके फ़ल खाओ और जिस रोज़ (फल तोड़ो और) खेती काटो तो अल्लाह का हक़ भी अदा करो, और बेजा सर्फ ना करो, क्योंकि अल्लाह हद से गुज़रने वालों को दोस्त नहीं रखता। (6:141)

وَ الَّذِیۡنَ فِیۡۤ اَمۡوَالِهِمۡ حَقٌّ مَّعۡلُوۡمٌ ۙ﴿۲۴﴾ لِّلسَّآئِلِ وَ الۡمَحۡرُوۡمِ ۙ﴿۲۵﴾

और जिन के माल में हिस्सा मुक़र्रर है। (यानी) मांगने वाले का, और ना मांगने वाले का। (70:24-25)

यह आयत जो ज़रूरतमंदों को देने के बारे में निर्देश देती है एक मक्की आयत है और मदीना में जब अनिवार्य रूप से ज़कात देने का हुक्म आया उससे पहले अवतरित हुई। मक्का में अवतरित होने वाली पहली आयतों और सूरतों में (मोमिन) के माल में मांगने वाले और न मांगने वाले (दोनों) के हक की बात कही गयी है (51:19, 70:24-25)। क़ुरआन की मक्की आयतों में आम तौर से ग़रीबों और ज़रूरतमंदों की मदद करने पर उभारा गया है और स्वार्थपूर्ति, लालच व माल जमा करने की निन्दा की गयी है (68:12-14, 17-33; 69:28; 73:11-15; 76:8-9; 89:17-20; 90:11-18; 29:5-11; 93:6-8; 100:6-8; 102:1-2; 104:1-4; 107:1-7)। इस तरह यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि इस्लाम की प्रारम्भिक शिक्षाओं में ही यह सिखाया गया कि ज़रूरतमंद को देना एक हक़ है और माल रखने वालों के माल में माल से वंचित व माल के ज़रूरतमंद लोगों का हिस्सा है।

اِنَّمَا الصَّدَقٰتُ لِلۡفُقَرَآءِ وَ الۡمَسٰکِیۡنِ وَ الۡعٰمِلِیۡنَ عَلَیۡهَا وَ الۡمُؤَلَّفَةِ قُلُوۡبُهُمۡ وَ فِی

सदक़ात तो हक़ है ग़रीबों का, मोहताजों का, और कारकुनाने सदक़ात का, और जिन दिलजुई मंज़ूर है,

الرِّقَابِ وَ الْغٰرِمِيْنَ وَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ؕ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝٦٠

ग़ुलामों की गर्दन छुड़ाने में, क़र्ज़दारों के क़र्ज़े में, और जिहाद में, और मुसाफ़िरीन में, ये हुक्म अल्लाह ही की तरफ़ से है, और अल्लाह तो ख़ूब जानने वाला और बड़ी हिकमत वाला है। (9:60)

यह आयत मदीना में अवतरित हुई थी और इसमें उन लोगों की तरफ़ इशारा किया गया है जो ज़कात या सदक़े या क़फ़ारे (गुनाह के प्रायश्चित) के लिए दान दिए जाने वाले माल को प्राप्त करने के हक़दार हैं। 'फ़क़ीरों' और 'मिस्कीनों' (ग़रीबों) जिनका सदक़े के हक़दारों में सबसे पहले जिक्र किया गया है उनमें फ़र्क़ करने के मामले में मुफ़स्सिरों ने अलग अलग विचार व्यक्त किए हैं। दोनों की ज़रूरत व स्थिति में कुछ अन्तर हो सकता है, या दोनों बराबर से ज़रूरतमंद हो सकते हैं। फ़क़ीर वह है जो काम या मेहनत करने में तो सक्षम है लेकिन उसे काम नहीं मिलता, जबकि मिस्कीन वह है जो शरीरिक या बौद्धिक लिहाज़ से अपंग हो और कोई काम न कर सकता हो।

ज़कात के मुस्तहिक़ (पात्र) लोगों में ''इब्नुस्सबील'' अर्थात मुसाफ़िर को भी शामिल करने की बात बहुत महत्व रखती है क्योंकि इस्लाम समूचे विश्वसमुदाय की बात करता है और आदमी को इस पर उभारता है कि रोज़ी कमाने या ज़ुल्म व सितम से बचने के लिए अगर ज़रूरत हो तो अपनी जगह छोड़ कर किसी दूसरी जगह जाए और वहां अल्लाह का फ़ज़ल तलाश करे (4:97-101; 59:8; 73:20)। इस श्रेणी में वो लोग भी शामिल हो सकते हैं जो राजनीतिक कारणों से शरण लेना चाहते हों। जो लोग क़र्ज़ के बोझ से दबे हों उनकी मदद भी बहुत अहम है और ज़कात को ख़र्च की ज़रूरत तक ही सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि इसके द्वारा उन लोगों की भी आर्थिक सहायता की जा सकती है जो काम करने की क्षमता तो रखते हों लेकिन उन्हें कोई काम न मिलता हो और उन लोगों की भी जो क़र्ज़ के बोझ से दब गए हों। ज़कात के सार्वजनिक माल से बन्धुवा मज़दूरों को छुड़ाने के आदेश से यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि इस्लाम और इस्लामी राज्य सैद्धांतिक रूप से गुलामी और बन्धुवा मजदूरी के ख़िलाफ़ है।

ज़कात के माल का प्रबंध करने अर्थात उसे जमा करने और वितरित करने के काम में जो ख़र्च होता है उनकी व्यवस्था भी ज़कात के पैसे से ही करने को कहा गया है। लेकिन ये खर्चे उचित सीमा में होना चाहिएं क्योंकि फ़ण्ड का अधिकतर भाग सामाजिक सहायता के वास्तविक उद्देश्य को पूरा करने में ही इस्तेमाल होना चाहिए। अरब में इस्लाम के प्रारम्भि काल की ऐतिहासिक स्थिति में यह ज़रूरी था कि एक केन्द्रीय शासन स्थापित करने के लिए एक विश्वसनीय प्रबंध तंत्र हो। इसी लिए ज़कात के माल का कुछ भाग उन लोगों की दिलदारी के

लिए रखा गया जो इसमें सहयोगी बन सकते हों जैसे शत्रु के कैम्प में शामिल रसूख़दार लोग, और ऐसे लोग जो मुसलमानों के सैनिक अभियान के नतीजे में बुरी तरह घायल हुए हों या उन्हें कोई और नुकसान हुआ हो और उनके मन को संतुष्ट करने की ज़रूरत हो।

خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَ تُزَكِّيْهِمْ بِهَا وَصَلِّ عَلَيْهِمْ ؕ اِنَّ صَلٰوتَكَ سَكَنٌ لَّهُمْ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿۱۰۳﴾

आप उनके माल में से ज़कात क़ुबूल करें, उसके ज़रिये से आप उनको पाक साफ़ करेंगे, और उन के हक़ में दुआए ख़ैर भी करें, के आपकी दुआ उनके लिये मौजिबे सुख और चैन है, और अल्लाह तो सुनने वाला और ख़ूब जानने वाला है। (9:103)

मदीना में इस्लामी राज्य के शासक के रूप में पैग़म्बर साहब को अल्लाह की तरफ़ से निर्देश मिला कि मालदारों से ज़कात प्राप्त करें और उसके ज़रूरतमंदों को उसे वितरित करें। इस आयत में पैग़म्बर साहब की अध्यात्मिक ज़िम्मेदारी जैसे मोमिनों के लिए दुआ करना और उनका मन शुद्ध करना के साथ साथ इस्लामी राज्य के शासक के रूप में आपकी संसारिक ज़िम्मेदारियों को जमा कर दिया गया है। इसके अलावा यह आयत इस बात को उजागर करती है कि सामाजिक सुरक्षा और कल्याण इस्लामी राज्य के पहले दिन से उसकी प्राथमिकताओं में शामिल है। इसे तज़किया यानि शुद्ध करने और विक्सित करने के माध्यम के रूप में बयान किया गया है जिसकी अध्यात्मिक और भौतिक दोनों तरह से बहुत महत्व है।

مَآ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ مِنْ اَهْلِ الْقُرٰى فَلِلّٰهِ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِى الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ كَيْ لَا يَكُوْنَ دُوْلَةًۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ ؕ وَ مَآ اٰتٰىكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۗ وَ مَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا ۚ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۘ﴿۷﴾ لِلْفُقَرَآءِ الْمُهٰجِرِيْنَ الَّذِيْنَ اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَ اَمْوَالِهِمْ يَبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنَ اللّٰهِ وَ رِضْوَانًا وَّ يَنْصُرُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ هُمُ الصّٰدِقُوْنَ ۚ﴿۸﴾ وَ

जो माल अल्लाह ने अपने रसूल को देहातों में दिलवाया है, वो अल्लाह का है और उसके रसूल का, और रसूल के रिश्तेदारों, और यतीमों, हाजतमंदों और मुसाफ़िरों का है, ताके जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में ना फ़िरता रहे, और जो चीज़ रसूल तुम को दें वो ले लो, और जिससे मना करें उससे बाज़ रहो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह सख़्त अज़ाब देने वाला है। और ग़रीब वतन छोड़ने वालों का हक़ है जो अपने घरों और मालों से जुदा कर दिये गए हैं, वो अल्लाह के फ़ज़्ल और उसकी रज़ा के तालिब हैं, और ख़ुदा और उसके रसूल मददगार हैं, और यही लोग बच्चे ईमानदार हैं। और उन लोगों के लिये भी जो मुहाजिरीन से पहले मदीना में मुक़ीम और ईमान मे मुस्तक़िल रहे, और जो

اَلَّذِيْنَ تَبَوَّؤُ الدَّارَ وَ الْاِيْمَانَ مِنْ
قَبْلِهِمْ يُحِبُّوْنَ مَنْ هَاجَرَ اِلَيْهِمْ وَ لَا
يَجِدُوْنَ فِيْ صُدُوْرِهِمْ حَاجَةً مِّمَّآ
اُوْتُوْا وَيُؤْثِرُوْنَ عَلٰٓى اَنْفُسِهِمْ وَ لَوْ كَانَ
بِهِمْ خَصَاصَةٌ ۭ وَ مَنْ يُّوْقَ شُحَّ نَفْسِهٖ
فَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝ وَ الَّذِيْنَ جَاۗءُوْ
مِنْۢ بَعْدِهِمْ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا وَ
لِاِخْوَانِنَا الَّذِيْنَ سَبَقُوْنَا بِالْاِيْمَانِ وَ لَا
تَجْعَلْ فِيْ قُلُوْبِنَا غِلًّا لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا رَبَّنَآ
اِنَّكَ رَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ۝

लोग हिज्रत करके उनके पास आते हैं उनसे मोहब्बत करते हैं और जो कुछ उनको मिला उससे अपने दिल में कुछ ख़्वाहिश और ख़लिश नहीं पाते और उनको अपनी जानों से मुक़द्दम रखते हैं ख़्वाह उनको फ़ाक़ा हो और जो शख़्स हिर्से नफ़्स से बचा लिया गया हो तो ऐसे ही लोग मुराद पाने वाले हैं। और उनके लिये भी जो इन मुहाज़्रीन के बादआए, और दुआ करते हैं के ऐ हमारे परवरदिगार हमको माफ़ फ़रमा, और हमारे भाईयों को जो हमसे पहले ईमान लाये हैं और मोमिनीन की तरफ़ से हमारे दिलों में कीना ना पैदा होने दे ऐ हमारे परवरदिगार! तू तो बड़ा शफ़्क़त करने वाला रहम वाला है। (59:7-10)

इन आयतों में ख़ास तौर से मक्का के मुहाजिरों के इस ऐतिहासिक मामले का हवाला है कि वो अपने पीछे मकान और जायदादें छोड कर आए थे। उन्हें मदीना के इस्लामी भाइयों की तरफ़ से हर तरह की भौतिक और नैतिक सहायता दी गयी, इसी लिए उन्हें ''अंसार'' (नुसरत यानि मदद करने वाले) कहा गया। लेकिन यह आयतें किसी भी ज़माने और या किसी भी स्थान के किसी भी इस्लामी राज्य या समाज के लिए एक मुस्तक़िल महत्व रखती हैं। पहली बात तो यह कि कठिन और प्रतिकूल स्थितियों में सामाजिक सौहार्द और सहायता का तक़ाज़ा यह होता है कि उसे बरतने के लिए कुछ विशेष प्रबंध किए जाएं ताकि उन कठिनाइयों का सामना व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयासों से किया जा सके। ये आयतें यह पैगाम भी देती हैं कि सम्पन्न लोगों की तरफ़ से वंचित लोगों की मदद ज़कात की हद से आगे बढ़ कर भी की जानी चाहिए जहां तक माल वाले की गुंजाइश इसकी इजाज़त दे, और ज़रूरतमंद की वास्तविक ज़रूरत का तक़ाज़ा हो और देने व लेने वाले दोनों के लिए कोई दिक़्क़त न हो। हर एक को दूसरे का ख़्याल करना चाहिए और अहंकार पर उपकार की भावना छाई हुई होना चाहिए। इस्लामी समाज का एक अनिवार्य और विशेष सामाजिक व आर्थिक गुण इन शब्दों में समेट दिया गया है ''ताकि तुम्हारी दौलत उन लोगों के बीच ही न घूमती रहे जो तुम में गनी (सम्पन्न) हों''। इसके अलावा पूरे समाज के हित अगली पीढ़ियों तक देखे जाने चाहिएं और वर्तमान संसाधनों को वर्तमान पीढ़ी पर ही खर्च नहीं कर देना चाहिए उन लोगों की क़ीमत पर जो उनके बाद आने वाले हैं और फिर वो लोग अपने से पहले के लोगों के बारे में अच्छे विचार

न रखें। ये आयतें समाज में सामूहिक रूप से सौहार्द और एकता व सहमति को बनाए रखने के लिए सामाजिक व आर्थिक योजना बन्दी का मार्दर्शन करती है।

اَرَءَيْتَ الَّذِىْ يُكَذِّبُ بِالدِّيْنِ ۝١ فَذٰلِكَ الَّذِىْ يَدُعُّ الْيَتِيْمَ ۝٢ وَلَا يَحُضُّ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ۝٣ فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّيْنَ ۝٤ الَّذِيْنَ هُمْ عَنْ صَلَاتِهِمْ سَاهُوْنَ ۝٥ الَّذِيْنَ هُمْ يُرَآءُوْنَ ۝٦ وَيَمْنَعُوْنَ الْمَاعُوْنَ ۝٧

क्या तुमने उस शख़्स को नहीं देखा जो रोज़े जज़ा का इन्कार करता है। तो ये वही है जो यतीम को धक्के देता है। और फ़क़ीर को खाना खिलाने की तरग़ीब नहीं देता। तो ऐसे नमाज़ियों के लिये ख़राबी है। जो अपनी न मज़ा की तरफ़ से ग़ाफ़िल रहते हैं। और ऐसे हैं के (लोगों को) दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ते हैं। और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें मांगने पर भी नहीं देते (यानी आरज़ी तौर पर) (107:1-7)

ऊपर सात आयतों पर आधारित इस सूरत को ''अलमाऊन''का नाम दिया गया है जिसका अर्थ है सहयोग। यह मक्की युग के प्रारम्भिक दिनों में अवतरित हुई थी और सम्भवतः उस सूरत के बाद उतरी जिसमें अधिक से अधिक माल प्राप्त करने की होड़ (''तकासुर'') की निन्दा की गयी है (102, सूरत अलतकासुर)। इन आयतों में यतीम को धुत्कारने, ज़रूरतमंदों की मदद करने की भावना न रखने बल्कि दूसरों को भी ज़रूरतंदों की मदद से रोकने और दिखावा करने जैसी समस्त नैतिक बुराइयों की निन्दा की गयी है क्योंकि ये दुर्व्यवहार और बुरे काम ईमान के सिद्धांतों के विपरीत हैं। ये आयतें उन लोगों की निन्दा करती है जो नमाज़ तो पढ़ते हैं लेकिन अपने साथ के लोगों की सहायता व सहयोग करने से इंकार करते हें और इसी लिए उनकी नमाज़ों को दिखावे की नमाज़ कहा गया है। क़ुरआन में उसके अवतरित होने की शुरूआत से ही इस बात पर ज़ोर दिया गया कि एक इस्लामी समाज बनाने के लिए सामाजिक व आर्थिक सहयोग और एकता व एकजुटता मौलिक तत्व हैं। क़ुरआन की सबसे पहले उतरने वाली पांच आयतों के उतरने के कुछ समय बाद इसी सूरत की निम्नलिखित आयतें अवतरित हुईं और उनमें कहा गया कि:''मगर इंसान सरकश हो जाता है जब अपने आप को सम्पन्न देखता है (हालांकि इस में कोई शक नहीं कि (उस को) तुम्हारे रब की तरफ पलट कर जाना है।''(96:6-8)।

❀ ❀ ❀

रोज़ा

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ
كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَتَّقُوْنَ ﴿١٨٣﴾ اَيَّامًا مَّعْدُوْدٰتٍ ؕ فَمَنْ كَانَ
مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ
اَيَّامٍ اُخَرَ ؕ وَ عَلَى الَّذِيْنَ يُطِيْقُوْنَهٗ
فِدْيَةٌ طَعَامُ مِسْكِيْنٍ ؕ فَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْرًا
فَهُوَ خَيْرٌ لَّهٗ ؕ وَ اَنْ تَصُوْمُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ
اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿١٨٤﴾ شَهْرُ رَمَضَانَ
الَّذِيْٓ اُنْزِلَ فِيْهِ الْقُرْاٰنُ هُدًى لِّلنَّاسِ
وَ بَيِّنٰتٍ مِّنَ الْهُدٰى وَ الْفُرْقَانِ ۚ فَمَنْ
شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ ؕ وَ مَنْ
كَانَ مَرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَيَّامٍ
اُخَرَ ؕ يُرِيْدُ اللّٰهُ بِكُمُ الْيُسْرَ وَ لَا يُرِيْدُ
بِكُمُ الْعُسْرَ ۫ وَ لِتُكْمِلُوا الْعِدَّةَ وَ لِتُكَبِّرُوا
اللّٰهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ وَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿١٨٥﴾
وَ اِذَا سَاَلَكَ عِبَادِيْ عَنِّيْ فَاِنِّيْ قَرِيْبٌ ؕ
اُجِيْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ اِذَا دَعَانِ ۙ
فَلْيَسْتَجِيْبُوْا لِيْ وَ لْيُؤْمِنُوْا بِيْ لَعَلَّهُمْ
يَرْشُدُوْنَ ﴿١٨٦﴾ اُحِلَّ لَكُمْ لَيْلَةَ الصِّيَامِ
الرَّفَثُ اِلٰى نِسَآئِكُمْ ؕ هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَ
اَنْتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ؕ عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ

ऐ मोमिनो! तुम पर रोज़ा फ़र्ज़ कर दिया गया है जिस तरह तुम से पहले लोगों पर फ़र्ज़ किया गया था, ताके तुम मुत्तक़ी हो जाओ। रोज़े के चन्द दिन हैं, जो तुम में से बीमार हो या सफ़र में हो, तो दूसरे दिनों मे पूरे कर लिया करे और जो रोज़े की ताक़त रखते हैं (लेकिन रखते नहीं) तो वो रोज़े के बदले मोहताज को खाना खिला दें, और जो कोई नेकी अपने शौक़ से करे तो उसके हक़ में अच्छा है, अगर तुम रोज़ा रखो तो तुम्हारे लिए बहुत ही अच्छा है, अगर तुम जानो। रोज़ों का महीना ऐसा मुबारक महीना है जिसमें कुरआन मजीद अव्वल अव्वल उतरा था, जो लोगों के लिए हिदायत है जिस में हिदायत की खुली खुली निशानियाँ मौजूद हैं, और जो हक़ व बातिल में फ़र्क़ कर देता है, जो उस महीने में तुम में मौजूद हो उसको चाहिये इस महीने के पूरे रोज़े रखे, जो बीमार हो या सफ़र में हो तो दूसरे दिनों में पूरे करो। अल्लाह तो तुम्हारे लिये आसानी कर देता है और सख़्ती नहीं चाहता, ताके तुम अपनी गिनती पूरी कर लो, और इस हिदायत पर की किब्रियाई और अज़मत को याद करो, और शुक्रगुज़ार बन्दे बनो। ऐ रसूल! जब मेरे बन्दे तुम से मेरे बारे में दरयाफ़्त करें तो तुम कह दो के मैं तो तुम से बहुत क़रीब हूँ, मैं तो दुआ मांगने वाले की दुआ कबूल करता हूँ, जबके वो दुआ करे, तो वो भी मेरे हुक्म को माने और अमल करें, और मुझ पर पूरा पूरा यक़ीन करें ताके वो नेक रास्ता पायें। तुम लोगों के लिए रोज़ो की रातों में अपनी औरतों के पास जाना हलाल कर दिया गया है, वो तुम्हारी पोशाक हैं और तुम उनकी पोशाक हो, अल्लाह ख़ूब जानता है के तुम उनके पास जाने मे अपने हक़ में ख़्यानत करते थे, सो उसने

كُنْتُمْ تَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَكُمْ فَتَابَ عَلَيْكُمْ
وَ عَفَا عَنْكُمْ ۚ فَالْـٰٔنَ بَاشِرُوْهُنَّ وَ ابْتَغُوْا
مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَكُمْ ۪ وَ كُلُوْا وَ اشْرَبُوْا حَتّٰى
يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْاَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ
الْاَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ ۪ ثُمَّ اَتِمُّوا الصِّيَامَ
اِلَى الَّيْلِ ۚ وَلَا تُبَاشِرُوْهُنَّ وَ اَنْتُمْ
عٰكِفُوْنَ ۙ فِي الْمَسٰجِدِ ؕ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ
فَلَا تَقْرَبُوْهَا ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ
لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ﴿۱۸۷﴾ وَلَا تَاْكُلُوْٓا
اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَ تُدْلُوْا بِهَآ
اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ
النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَ اَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿۱۸۸﴾

तुम पर मेहरबानी की और तुम को माफ़ कर दिया। अब तुम उनसे मुबाशरत करो, और अल्लाह से तलब करो जो उसने तुम्हारे लिए लिख है (यानी औलाद) और खाओ और पियो यहाँ तक के सुबह की सफ़ेद धारी रात की स्याह धारी से अलग नज़र आने लगे, फिर तुम रोज़ा रात तक पूरा करो, और जब मस्जिद के अन्दर ऐतेकाफ़ में हो, तो मुबाशरत ना करो। ये अल्लाह ने हदें लगा दी हैं, उनके क़रीब ना जाना, इसी तरह अल्लाह अपनी आयात साफ़ साफ़ बयान करता है ताके लोग अल्लाह से डरें। और एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो और ना उसको हाकिमों के पास पहुँचाओ के नाजायज़ तौर पर लोगों के माल का कोई हिस्सा खा जाओ, और तुम को इल्म भी हो। (2:183-188)

रोज़ा रखना पिछले पैग़म्बरों की शिक्षाओं में भी था हालांकि उसका स्वरूप (ढंग) अलग अलग था। इस्लाम में रोज़ा अपनी ख़ास शर्तों के लिहाज़ से पहले की शरीअतों से अलग है। क़ुरआन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रोजा स्वयं को तकलीफ़ देने के लिए नहीं है, क्योंकि "अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी करना चाहता है और तुम्हें तंगी में डालना नहीं चाहता"। यह केवल दिन के कुछ घण्टों के लिए है और वह भी साल में केवल एक महीने में खाने पीने और यौन संतुष्टि की प्रक्रिया पर अस्थाई रूप से प्रतिबंध का नाम है।

खाने पीने और संभोग की प्रवत्ति हर इंसान की जैविक आवश्यकता है और उनसे अस्थाई रूप से कुछ घण्टों के लिए रुक जाने से एक तरफ़ आत्मनियंत्रण (सेल्फ कण्ट्रोल) की आदत पैदा होती है और दूसरी तरफ़ इंसानी ध्यान इन स्वभाविक प्रवृत्तियों से हट कर बौद्धिक और अध्यात्मिक व नैतिक मामलों की तरफ़ लगता है। ये आदतें एक महीने तक अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखने और ज़रूरतमंदों की ज़्यादा से ज़्यादा से मदद के द्वारा विक्सित होती हैं। इस रूहानी तरक़्क़ी के लिए जो चीज़ें ख़ास तौर से ज़रूरी हैं वो ऐसी बुनियादी बाते हैं जो सभी ईमान वालों के अन्दर होना चाहिएं, लेकिन जो लोग क्षमता रखते हों और नेक कामों में एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते हों उनमें ये खूबियां और अधिक होना चाहिएं और उन्हें अपने अन्दर यें गुण अपनी अध्यात्मिक और बौद्धिक व नैतिक शक्तियों से अपने अन्दर अधिक से

अधिक विक्सित करना चाहिएं (3:133; 57:21; 83:26)।

रोज़े को आम तौर से लोगों की क्षमता के अनुकूल बनाए रखने के लिए लोगों को यह इज़ाज़त दी गयी है कि जब वो बीमार हों या सफर में हों तो रोज़ा छोड़ सकते हैं क्योंकि इन दोनों स्थितियों में आदमी अपनी सामान्य हालत में नहीं होता है और इस हालत में रोज़ा उसके लिए कठिन और कड़ी मुश्क़्क़त का कारण बन सकता है। महिलाओँ को ख़ास तौर से मासिक धर्म या गर्भवति होने या प्रसव के दिनों में रोज़े की अनिवार्यता से मुक्त रखा गया है। लेकिन इन दिनों में जो रोज़े न रखे जाएं उन्हें बाद के दिनों में रख कर महीने के रोज़ों की गिनती पूरी करने का निर्देश दिया गया है। रोज़े की हालत में खाने और पीने से रुक जाने के अलावा पति पत्नि को यौन क्रिया से भी रुके रहना जरूरी है। इंसान अपनी कामोक्ति पर इसी तरह नियंत्रण पा सकता है जिस तरह खाने और पीने की स्वभाविक आवश्यकताओं से भी अस्थाई रूप से रुका जा सकता है, हालांकि ये सब सामान्य क्रियाएं हैं और ये स्वभाविक इच्छाएं किसी के लिए भी शर्म की बात नहीं हैं।

इन स्वभाविक इच्छाओँ पर रोज़े में केवल दिन भर के लिए ही रोक लगाई गयी है, रोज़ा खोल लेने के साथ ही ये तीनों इच्छाएं पूरी करने की आज़ादी मिल जाती है अगले दिन सवेरे तक जब दूसरे दिन का रोज़ा शुरू होता है। इसके अलावा रमज़ान के अन्तिम दस दिनों में मस्जिद में रहना भी एक अतिरिक्त ऐच्छिक इबादत है जो पैग़म्बर साहब से साबित (प्रमाणित) है। इसे एअतिकाफ (मस्जिद में इबादत के लिए निवास करना) कहते हैं। इस एअतिकाफ़ के दौरान पति पत्नि रात के समय भी यौन क्रिया नहीं कर सकते लेकिन जब एअतिकाफ़ की अवधि पूरी होने के बाद वह घर आ जाएं तो आम रोज़ेदारों की तरह रात में इसकी इजाज़त है।

रोज़े से सम्बंधित आयतों में दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहली यह कि अल्लाह इंसान से कितना क़रीब है, और इस बात का सम्बंध रोज़े की रूहानी हालत और आत्मनियंत्रण से है। अल्लाह अपने बन्दों से कहते हैं कि वह उनके करीब हैं और उनकी दुआओं का जवाब देते हैं। यह एक तार्किक बात है कि इंसान जो कि अल्लाह से यह चाहता है कि अल्लाह उसकी दुआओं का जवाब दें, ख़ुद अल्लाह के पैग़ाम और हिदायत पर अमल करे जिससे समझदारी, दूरदर्शिता और अन्तःदृष्टि निश्चित रूप से पैदा होती है।

दूसरा बात इंसान की एक लालच से जुड़ी हुई है जो खाने पीने और यौन इच्छा के अलावा है, और वह है दौलत व शक्ति का लालच। रोज़े से अगर इस लालच पर भी नियंत्रण न पाया जा सके तो रोज़ा रखने का कोई फ़ायदा नहीं होगा कि यह वासना और लालच चोरी, डकेती और धोखाधड़ी की खुली आदतों के अलावा भी दूसरे रास्ते खोलती है। क़ुरआन दूसरों के अधिकार का हनन करने की निन्दा करता है ख़ास तौर से उन लोगों के द्वारा जो शक्तिशाली और अधिकारी होते हैं, जो लोगों के जायज़ कामों के बदले उनसे रिश्वत लेते हैं। इस तरह से

दूसरों के अधिकार और माल को हड़पने वाले दोहरा उत्पीड़न करते हैं, एक तो यह कि दूसरों की चीज़ पर क़ब्ज़ा करते हैं और दूसरा यह कि इस तरह वो समाज में और अधिकारियों व कर्मचारियों में भृष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। इस तरह नाजायज़ तरीक़े से दौलत बटोरने की हौड़ पर नियंत्रण पाने के लिए रोज़ेदार को अपने रोज़े से शक्ति व प्रेरणा लेनी चाहिए।

د قَالَ رَبِّ اجْعَلْ لِّيْٓ اٰيَةً ؕ قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ اِلَّا رَمْزًا ؕ وَ اذْكُرْ رَّبَّكَ كَثِيْرًا وَّسَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَ الْاِبْكَارِ ﴿۴۱﴾

ज़क्रिया ने अर्ज़ किया कि ऐ मेरे रब! मेरे लिए कोई निशानी मुक़र्रर फ़रमा दीजिये, अल्लाह ने फ़रमाया तुम्हारी निशानी यही है कि तुम लोगों से तीन रोज़ तक बातें ना कर सकोगे, बजुज़ इशारा के, और अपने रब को बकसरत याद करो और तसबीह करो दिन ढले और सुबह भी। (3:41)

قَالَ رَبِّ اجْعَلْ لِّيْٓ اٰيَةً ؕ قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلٰثَ لَيَالٍ سَوِيًّا ﴿۱۰﴾ فَخَرَجَ عَلٰى قَوْمِهٖ مِنَ الْمِحْرَابِ فَاَوْحٰٓى اِلَيْهِمْ اَنْ سَبِّحُوْا بُكْرَةً وَّعَشِيًّا ﴿۱۱﴾

मोमिन के बारे में तो ना रिश्तेदारी का लिहाज़ करते हैं और ना अहद ही का, और ये लोग हद से आगे बढ़ने वाले हैं। फ़िर अगर ये तौबा कर लें और नमाज़ के पाबंद हो जायें और ज़कात देने लगें तो वो तुम्हारे दीनी भाई हैं और समझदारों के लिये हम अपनी आयात साफ़ साफ़ बयान करते हैं। (9:10-11)

فَكُلِيْ وَاشْرَبِيْ وَقَرِّيْ عَيْنًا ۚ فَاِمَّا تَرَيِنَّ مِنَ الْبَشَرِ اَحَدًا ۙ فَقُوْلِيْٓ اِنِّيْ نَذَرْتُ لِلرَّحْمٰنِ صَوْمًا فَلَنْ اُكَلِّمَ الْيَوْمَ اِنْسِيًّا ﴿۲۶﴾

तो तुम खाओ और पियो, और आंखें ठंड़ी करो, अगर तुम किसी आदमी को देखी तो ये कहना के मैंने अल्लाह के लिये रोज़े की मन्नत मानी है, तो आज मैं किसी आदमी से बात ना करूंगी। (19:26)

इन आयतों में रोज़े के एक अन्य रूप यानि चुप रहने और बातचीत न करने का ज़िक्र है जो कुछ ख़ास लोगों को ख़ास समय के लिए सुझाया गया। इस संदर्भ में क़ुर्आन में हज़रत ज़करिया और बीबी मरियम का ज़िक्र है। हज़रत ज़करिया जब बूढे हो गए थे तो उन्हें अल्लाह ने अपनी एक निशानी (प्रतीक) के रूप में इस तरह के रोज़े का हुक्म दिया और मरियम जब कुंवारी थीं और अल्लाह के हुक्म से गर्भवती हो गयी थीं तो उन्हें भी इस तरह के रोज़े का निर्देश मिला (3:40,47(19:8-9,20-21)। चूंकि दोनों को अल्लाह ने चमत्कारी वरदान दिए थे इसलिए अल्लाह ने दोनों को कुछ समय के लिए लोगों से बात करने को मना कर दिया था

लेकिन वो इशारों से ज़रूरत की बात कर सकते थे (3:41(19:10-11,29)। इसे एक रूहानी हालत या इबादत की स्थिति समझा जा सकता है जिसमें बन्दा अल्लाह से एक ख़ास सम्पर्क की हालत में है और ऐसी हालत में इंसानों के द्वारा कोई हस्तक्षेप उचित नहीं, और यह निशानी इस बात को याद दिलाती है कि हर चीज़ अल्लाह की है जो हर चीज़ का जनक है और हर चीज़ पर नियंत्रण रखता है (3:40,47(19:9,21)। इस तरह मौन रहना शब्दों से कहीं अधिक प्रभावपूर्ण, महत्वपूर्ण और स्पष्ट अभिव्यक्ति है। लेकिन इबादत या रोज़े का यह रूप या इस तरह की कोई रूहानी क्रिया अन्तिम पैग़म्बर की शरीअत में नहीं है, केवल नमाज़ के दौरान बातचीत करना मना है।

وَ اَتِمُّوا الۡحَجَّ وَ الۡعُمۡرَةَ لِلّٰهِ ؕ فَاِنۡ اُحۡصِرۡتُمۡ
فَمَا اسۡتَيۡسَرَ مِنَ الۡهَدۡىِ ۚ وَ لَا تَحۡلِقُوۡا
رُءُوۡسَكُمۡ حَتّٰى يَبۡلُغَ الۡهَدۡىُ مَحِلَّهٗ ؕ فَمَنۡ
كَانَ مِنۡكُمۡ مَّرِيۡضًا اَوۡ بِهٖۤ اَذًى مِّنۡ رَّاۡسِهٖ
فَفِدۡيَةٌ مِّنۡ صِيَامٍ اَوۡ صَدَقَةٍ اَوۡ نُسُكٍ ۚ
فَاِذَاۤ اَمِنۡتُمۡ ۪ فَمَنۡ تَمَتَّعَ بِالۡعُمۡرَةِ اِلَى
الۡحَجِّ فَمَا اسۡتَيۡسَرَ مِنَ الۡهَدۡىِ ۚ فَمَنۡ لَّمۡ
يَجِدۡ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ فِى الۡحَجِّ وَ سَبۡعَةٍ
اِذَا رَجَعۡتُمۡ ؕ تِلۡكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ؕ ذٰلِكَ لِمَنۡ
لَّمۡ يَكُنۡ اَهۡلُهٗ حَاضِرِى الۡمَسۡجِدِ الۡحَرَامِ ؕ وَ
اتَّقُوا اللّٰهَ وَ اعۡلَمُوۡۤا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيۡدُ الۡعِقَابِ ﴿۱۹۶﴾

और अल्लाह ही की रज़ा के लिए हज पूरा करो, और उमरा पूरा करो, और अगर तुम रास्ता ही मे रोक लिए जाओ तो जो भी तुम कुर्बानी आसानी के साथ कर सको कर डालो, और जब तक कुर्बानी अपने मक़ासम पर ना पहुँच जाये तुम सर ना मुंडवाओ, अगर तुम में कोई बीमार हो, या उसके सर में कोई तकलीफ़ हो (तो वो अगर सर मुंडा ले) तो उसके बदले रोज़े रखे, या सदक़ा दे, या कुर्बानी करे, फिर जब तुम को सुकून हो जाए तो जो शख़्स हज के साथ उमरा को मिलाकर फ़ायदा उठाए तो जो कुर्बानी आसानी से मिल जाए वो करो, जिसको कुर्बानी न मिलो तो वो तीन रोज़े अय्यामे हज में रख ले, और सात रोज़े जब के तुम वापस हो, ये पूरे दस रोज़े हैं, ये हुक्म उसके लिए है जिस के अहलो अयाल मक्का में ना रहते हों और अल्लाह ही से डरते रहो, और जान लो के अल्लाह तो है ही बड़ा अज़ाब देना वाला। (2:196)

وَ مَا كَانَ لِمُؤۡمِنٍ اَنۡ يَّقۡتُلَ مُؤۡمِنًا اِلَّا
خَطَـئًا ۚ وَ مَنۡ قَتَلَ مُؤۡمِنًا خَطَـئًا فَتَحۡرِيۡرُ
رَقَبَةٍ مُّؤۡمِنَةٍ وَّ دِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰۤى اَهۡلِهٖۤ
اِلَّاۤ اَنۡ يَّصَّدَّقُوۡا ؕ فَاِنۡ كَانَ مِنۡ قَوۡمٍ عَدُوٍّ

और किसी मोमिन की ये शान नहीं के दूसरे मूमिन को क़त्ल करे, मगर ग़लती से, और जो किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उस पर मुसलमान ग़ुलाम या लौंड़ी का आज़ाद करना है, और ख़ून बहा है जो उसके ख़ानदान को दे दे, मगर ये के वो लोग माफ़ कर दें (तो उनको इख़्तियार है) अगर मक़्तूल तुम्हारे दुश्मनों में से है

لَّكُمْ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ؕ وَ اِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَ تَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ مُتَتَابِعَيْنِ ۙ تَوْبَةً مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿۹۲﴾

वो ख़ुद मोमिन हो तो सिर्फ़ एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंड़ी का आज़ाद करना है, और अगर मक़्तूल ऐसे लोगों में से है जिनमें और तुम में सुलेह का अहद हो तो वारिसाने मक़्तूल को ख़ून बहा देना है, और एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंड़ी आज़ाद करना है, और जिसको ये मयस्सर ना हो तो मुतावातिर दो महीने के रोज़े रखे बतौर तौबा के जो मुक़र्रर हुई है अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह ख़ूब जानने वाला और हिकमत वाला है। (4:92)

لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَ لٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا عَقَّدْتُّمُ الْاَيْمَانَ ۚ فَكَفَّارَتُهٗٓ اِطْعَامُ عَشَرَةِ مَسٰكِيْنَ مِنْ اَوْسَطِ مَا تُطْعِمُوْنَ اَهْلِيْكُمْ اَوْ كِسْوَتُهُمْ اَوْ تَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ ؕ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ ؕ ذٰلِكَ كَفَّارَةُ اَيْمَانِكُمْ اِذَا حَلَفْتُمْ ؕ وَ احْفَظُوْٓا اَيْمَانَكُمْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿۸۹﴾

अल्लाह लग़ू क़समों पर तुम को निरफ़्त में नहीं लेगा, लेकिन तुम्हारी पुख़्ता क़समों पर ज़रूर मवाख़िज़ा करेगा, तो उसका कुफ़्फ़ारा दस मोहताजों को औसत दर्जा का खाना खिलाना है, जो अपने अहलो अयाल को खिलाते हो, या उनको कपड़े देना, या एक ग़ुलाम लौंड़ी आज़ाद करना, और जो ये ना कर सके वो तीन रोज़े रख ले, ये तुम्हारी क़समों का कुफ़्फ़ारा है, जब तुम क़सम खा लो (और उसे तोड़ डाला) और अपनी क़समों की हिफ़ाज़त किया करो, इसी तरह अल्लाह तुम से अपनी आयात बयान फ़रमाता है, ताके तुम शुक्रगुज़ार बन जाओ। (5:89)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْتُلُوا الصَّيْدَ وَ اَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ وَ مَنْ قَتَلَهٗ مِنْكُمْ مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآءٌ مِّثْلُ مَا قَتَلَ مِنَ النَّعَمِ يَحْكُمُ بِهٖ ذَوَا عَدْلٍ مِّنْكُمْ هَدْيًۢا بٰلِغَ الْكَعْبَةِ اَوْ كَفَّارَةٌ طَعَامُ مَسٰكِيْنَ اَوْ عَدْلُ ذٰلِكَ صِيَامًا لِّيَذُوْقَ وَبَالَ اَمْرِهٖ ؕ عَفَا اللّٰهُ عَمَّا

मोमिनों! जब तुम एहराम में हो तो शिकार ना किया करो, जो जान बुझ कर उसको क़त्ल करेगा तो या उसका बदला दे, उस ही जैसा चार पाया जिसे तुम में से दो मोअतबर आदमी मुक़र्रर करें लेकिन इस तौर पर के बतौर नियाज़ ये जानवर काबा तक पहुंचाए, या कफ़्फ़ारा दे, मिसकीनों को खाना खिलाए या उसके बराबर रोज़े रखे, ताके अपने काम की सज़ा चखे, और जो पहले हो चुका वो अल्लाह ने माफ़ कर दिया, और

سَلَفَ ؕ وَ مَنۡ عَادَ فَيَنۡتَقِمُ اللّٰهُ مِنۡهُ ؕ وَ اللّٰهُ عَزِيۡزٌ ذُو انۡتِقَامٍ ﴿۹۵﴾

जो फ़िर ऐसा करेगा, तो अल्लाह उससे बदला लेगा, और अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, और बड़ा ही बदला लेने वाला। (5:95)

وَ الَّذِيۡنَ يُظٰهِرُوۡنَ مِنۡ نِّسَآئِهِمۡ ثُمَّ يَعُوۡدُوۡنَ لِمَا قَالُوۡا فَتَحۡرِيۡرُ رَقَبَةٍ مِّنۡ قَبۡلِ اَنۡ يَّتَمَآسَّا ؕ ذٰلِكُمۡ تُوۡعَظُوۡنَ بِهٖ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ خَبِيۡرٌ ﴿۳﴾ فَمَنۡ لَّمۡ يَجِدۡ فَصِيَامُ شَهۡرَيۡنِ مُتَتَابِعَيۡنِ مِنۡ قَبۡلِ اَنۡ يَّتَمَآسَّا ۚ فَمَنۡ لَّمۡ يَسۡتَطِعۡ فَاِطۡعَامُ سِتِّيۡنَ مِسۡكِيۡنًا ؕ ذٰلِكَ لِتُؤۡمِنُوۡا بِاللّٰهِ وَ رَسُوۡلِهٖ ؕ وَ تِلۡكَ حُدُوۡدُ اللّٰهِ ؕ وَ لِلۡكٰفِرِيۡنَ عَذَابٌ اَلِيۡمٌ ﴿۴﴾

और जो लोग अपनी बीवियों से ज़िहार कर बैठे हैं, फ़िर अपनी बात से लौट जाना चाहें तो उनको हम बिस्तर होने से पहले एक ग़ुलाम आज़ाद करना (ज़रूरी) है, इस हुक्म के ज़रिये तुम को नसीहत की जाती है, और अल्लाह ख़ूब देख रहा है जो भी तुम करते हो। तो जिस को कोई ग़ुलाम ना मिले, तो वो दो महीने के रोज़े लगातार अपनी बीवी से हम बिस्तर होने से पहले (पूरे कर दे) और जिसको (ये भी) क़ुदरत हासिल ना हो तो साठ मोहताजों को खाना खिला दे, ये इसलिये है के तुम अल्लाह और उसके रसूल पर पूरा ईमान लाओ, और ये अल्लाह की हदें हैं और ना मानने वालों के लिये दर्दनाक अज़ाब है। (58:3-4)

बहुत सी ऐसी ग़लतिया होती हैं जिनकी भरपाई की ज़िम्मेदारी क़ुरआन ने ख़ुद व्यक्ति पर रखी है ना कि राज्य शक्ति पर कि राज्य के क़ानून से उसमें काम लिया जाए। इस्लामी शरीअत राज्य कानूनों को कम से कम और सीमित रखने की पक्षधर है इस हद तक कि राज्य के शासकों द्वारा बलपूर्वक उनको लागू करना बिल्कुल एक प्राकृतिक तथ्य हो, ताकि ये क़ानून और उनका लागू करना अदालतों और जजों के लिए एक बोझ न बने। जिन अपराधों की सज़ा कुरआन व सुन्नत में तय कर दी गयी है उनकी संख्या बहुत कम है, और बाक़ी मामलों के लिए इंसानी प्रयासों का दरवाज़ा खुला छोड़ा गया है कि बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार क़ानून बनाने और फ़ैसले करने के उपाय किए जाएं जिन्हें ताज़ीर कहा जाता है (देखें:क़ानून के अध्याय में 'पेनल ल०')। ''हसबा'' (जवाबदेही) का विभाग तुरन्त और और छोटे छोटे मामलों में न्याय का एक तंत्र था जो प्रशासनिक और न्यायिक अधिकारों के बीच की एक व्यवस्था थी, और जिसके फ़ैसलों को अदालत में चुनौती दी जा सकती थी यदि सम्बंधित पक्ष ऐसा चाहें। उपरोक्त आयतें अधिकतर उन अपराधों से सम्बंधित हैं जो पूरी तरह धार्मिक मामलों से जुड़े हों जैसे इबादतें, और वो शपथ जो निजी रूप से ली जाती हैं अदालत में नहीं, सिवाय अनैच्छिक हत्या के। इस मामले में दोषी अनैच्छिक हत्या के अपराध के लिए

मुआवजा देगा, लेकिन राज्य उस पर अतिरिक्त जुर्माना भी लगा सकता है अगर ज़रूरी हो।

इबादत, या शपथ का अल्लंघन करने से सम्बंधित ग़लतियों का प्रायिश्चित करके उनकी भरपाई की जाती है और यह प्रायिश्चित करना अपने आप में एक इबादत की प्रक्रिया भी है और जुर्माना भी। शरीअत का मक़सद इंसान को उसके अन्दर से सुधारना है और साथ ही सामाजिक न्याय को भी स्थापित करना है जिसे देख कर लोग सबक लें और अपराध करने से डरें ना कि केवल दोषी पर व्यक्तिगत रूप से जुर्माना लगाना। यहां तक कि आम ताज़ीरी क़ानूनों में भी अगर सज़ा से पहले यह साबित हो जाए कि दोषी ने तौबा की है तो इससे उसकी सज़ा में कटोती हो सकती है या कभी सज़ा को पूरी तरह मआफ़ किया सकता है (देखे 5:34,39(24:5, और देखें सेक्शन 'पेनल ल०')।

ऊपर की आयत में जिस क़फारे (प्रायिश्चित/म्पचपंजपवद) या भरपाई का इशारा दिया गया है उसके मामले में रोज़ा भी गुनाह का क़फ़ारा हो सकता है अगर किसी और तरह से क़फ़ारा अदा करना सम्भव न हो। जब कोई व्यक्ति हज की कुछ निर्धारित क्रियाएं पूरी करने से रह जाए तो उसे ग़रीबों को खिलाने के लिए एक जानवर क़ुरबान करना (दम देना) होता है, और अगर यह भी सम्भव न हो तो ऐसे व्यक्ति को हज यात्रा के बीच में में ही तीन दिन के रोज़े रखने का निर्देश दिया गया है, और यदि वह व्यक्ति मस्जिद-ए-हराम (काबा) के पास का रहने वाला है तो उसे घर आकर भी सात दिन तक रोज़े रखना हैं (2:196)। हज का उद्देश्य हज यात्रियों को प्रशिक्षण देना और बन्दगी का तरीका सिखाना है (2:197(5:95)। हज या उमरे के दौरान शिकार करना मना है, और यदि ऐसा हो जाए तो इस ग़लती के दोषी को काबा के पास में ही ग़रीबों के लिए एक कुर्बानी करना होगी, और जितने जानवर शिकार में या ग़लती से मरे हैं उतने ही जानवरों की कुर्बानी देना होगी, या ज़रूरतमंदों को खाना खिलाना होगा। इस मामले में ऐसे हज यात्रियों के लिए जो उपरोक्त दोनों तरह से क़फ़ारा अदा करने (प्रायिश्चित करने) की स्थिति में न हों रोज़े रखने का विकल्प दिया गया है। इस मामले में रोज़े के लिए कोई गिनती नही दी गयी है न यह ज़िक्र किया गया है कि कितने लोगों को खाना खिलाया जाए।

यह महत्वपूर्ण बात है कि इंसान को गुलामी से आज़ाद कराना क़फ़ारे (पाप के प्रायिश्चित) का पहला तरीक़ा बताया गया है। अनैच्छिक हत्या के मामले में भी (4:92), और ज़िहार (पत्निक मां समान बोल देने की कुप्रथा जो अरब में प्रचलित थी) के मामले में भी (58:3-4)। क़सम तोड़ने अर्थात शपथ के उल्लंघन के क़फ़ारे में ग़ुलाम को रिहा करने की बात कही गयी है। इस तरह इस्लाम ने ग़ुलामी को ख़त्म करने के लिए अनेक रास्ते खोले।

पहले दो मामलों में यदि इंसान को ग़ुलामी से छुड़ाने का क़फ़ारा अदा करना सम्भव न हो तो दो महीने तक लगातार रोज़े रखने को कहा गया है। इतने लम्बे समय तक रोज़े यानि

रमज़ान के फ़र्ज़ रोजों से भी दो गुणा रखने को जो अनिवार्य किया गया तो इससे यह ज़ाहिर होता है कि अनैच्छिक रूप से किसी व्यक्ति की हत्या कर बैठना, और पत्नि से शरीरिक सम्बंध ा तोड़ लेना जो एक तरह से पत्नि की नैतिक हत्या करने जैसा है, कितना गम्भीर अपराध है। साठ मिस्कीनों (ग़रीबों) को खाना खिलाने की अनुमति ज़िहार के मामले में उन लोगों को दी गयी जो दो महीने लगातार रोज़े नहीं रख सकते, लेकिन अनैच्छिक हत्या के दोषी को यह छूट भी नहीं दी गयी है और इसमें लगातार दो महीने तक रोज़े रखना ही इसका क़फ़ारा (प्रायिश्चित) है यदि दोषी किसी ग़ुलाम को आज़ाद नहीं कर सकता और "क़िसास" (मुआवज़ा) नहीं दे सकता। अलबत्ता क़ैद या जनसेवा के लिए मेहनत व मुशक्कत को इस मामले में मंज़ूर किया गया है।

रोज़े की इन सभी दिक्कतों के अलावा रोज़े के अध्यात्मिक, नैतिक और व्यवहारिक फ़ायदों को बढ़ाने के लिए कुछ ख़ास दिनों में ऐक्छिक रोज़े (नफ़िल रोज़े) रखने की भी शिक्षा दी गयी है जो पैग़म्बर साहब से साबित है जिस तरह फ़र्ज़ नमाज़ो के साथ नफ़िल नमाज़ों की शिक्षा दी गयी है। नफ़िल रोज़े हते या महीने के किसी भी दिन रखे जा सकते हैं ईद का दिन छोड़ कर। जुमे के दिन भी नफ़िल रोज़े रखने की प्रेरणा नहीं दी गयी है बल्कि उसके पहले और बाद के दिनों में रखने को कहा गया है। जीवन भर लगातार रोज़े रखते रहने को भी मना किया गया है (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने माजा, इब्ने हंबल, तिरमिज़ी, नसई)।

إِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِيْنَ
وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْقٰنِتٰتِ
وَالصّٰدِقِيْنَ وَالصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِيْنَ
وَالصّٰبِرٰتِ وَالْخٰشِعِيْنَ وَالْخٰشِعٰتِ
وَالْمُتَصَدِّقِيْنَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّآئِمِيْنَ
وَالصّٰٓئِمٰتِ وَالْحٰفِظِيْنَ فُرُوْجَهُمْ وَ
الْحٰفِظٰتِ وَالذّٰكِرِيْنَ اللّٰهَ كَثِيْرًا وَّالذّٰكِرٰتِ ۙ
اَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّاَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٣٥﴾

बेशक मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें, मोमिन मर्द और मोमिना औरतें, फ़रमांबर्दार औरतें, रास्त बाज़ मर्द और रास्त बाज़ औरतें, सब्र करने वाले मर्द और सब्र करने वाली औरतें, और आजिज़ी करने वाले मर्द और आजज़ी करने वाले मर्द और आजज़ी करने वाली औरतें, ख़ैरात करने वाले मर्द, और सब्र करने वाली औरतें, रोज़ा रखने वाले मर्द और रोज़ा रखने वाली औरतें, अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाले मर्द और अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाली औरतें और अल्लाह को कसरत से याद करने वाले मर्द और अल्लाह को कसरत से याद करने वाली औरतें, अल्लाह ने सब के लिये तैयार कर रखा है अज्रे अज़ीम। (33:35)

अरबी भाषा में बहुवचन का पुर्लिंग हालांकि मर्दों और औरतों दोनों के लिए बोला जाता

है लेकिन ऊपर की आयत में पुर्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों का बहुवचन प्रयोग किया गया है जिसकी मंशा यह समझाना हो सकती है कि मुस्लिम समाज में महिलाओं की धार्मिक और नैतिक ज़िम्मेदारियां समान और स्वतंत्र रूप से अलग अलग हैं (और देखें 2:221; 3:195; 4:124; 9:71-72; 16:97; 24:12,30-31; 33:36, 58,73; 40:40; 47:19; 48:5,25; 49:13; 57:12; 71:28; 85:10)। मुस्लिम मर्दों और मुस्लिम औरतों की जो विशेषताएं ऊपर बयान की गयी हैं उनमें ईमान के अलावा उनके ख़ुलूस (दिल की सच्चाई), उनकी सदाक़त (ज़बान की सच्चाई), उनके सब्र (धैर्य), अल्लाह से उनके डरने, ज़रूरतमंदों पर खर्च करने (सदक़ा देने), रोज़े रखने, बुराइयों से दूर रहने, अपनी इज़्ज़त को सुरक्षित रखने के गुणों का बयान है। चूंकि रोज़े से इंसान के अन्दर आत्मनियंत्रण पैदा होता है इसलिए उसका उद्देश्य केवल खाने पीने और यौन संतुष्टि से रुक जाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि हर मामले में अल्लाह का तक़वा (ईशभय) और हर समय एक नैतिक व्यवहार अपनाने तक व्याप्त है (2:138)। इस लिहाज़ से पैग़म्बर सल्ल० ने रोज़े को एक ढाल बताया है जो मोमिन के दुर्व्यवहार और ज़बान या हाथ से किसी को पीड़ा पहुंचाने से रोकती है (इब्ने हंबल, नसई, इब्ने माजा, बेहिक़ी, तिबरी)। पैग़म्बर साहब ने रोज़े में इंसान की नैतिक शालीनता को आधा सब्र (धैर्य) कहा है (इब्ने माजा)। आपने फ़रमाया है कि जो व्यक्ति रोज़ा रख कर झूट बोलना न छोडे उसके भूखे और प्यासे रहने से की अल्लाह को कोई परवाह नहीं है (बुख़ारी, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिजी, नसई और इब्ने माजा)।

हज

وَ اِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَ اَمْنًا ؕ
وَ اتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرٰهٖمَ مُصَلًّى ؕ وَ
عَهِدْنَاۤ اِلٰۤى اِبْرٰهٖمَ وَ اِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا
بَيْتِىَ لِلطَّآئِفِيْنَ وَ الْعٰكِفِيْنَ وَ الرُّكَّعِ
السُّجُوْدِ ﴿۱۲۵﴾ وَ اِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اجْعَلْ
هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا وَّ ارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرٰتِ
مَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ قَالَ
وَ مَنْ كَفَرَ فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ اَضْطَرُّهٗۤ اِلٰى
عَذَابِ النَّارِ ؕ وَ بِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿۱۲۶﴾ وَ اِذْ
يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ
وَ اِسْمٰعِيْلُ ؕ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ؕ اِنَّكَ اَنْتَ
السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿۱۲۷﴾ رَبَّنَا وَ اجْعَلْنَا
مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَ مِنْ ذُرِّيَّتِنَاۤ اُمَّةً مُّسْلِمَةً
لَّكَ ۠ وَ اَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَ تُبْ عَلَيْنَا ۚ اِنَّكَ
اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿۱۲۸﴾ رَبَّنَا وَ ابْعَثْ
فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِكَ
وَ يُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَ الْحِكْمَةَ وَ يُزَكِّيْهِمْ ؕ
اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿۱۲۹﴾

और जब हमने ख़ाना-ए-काबा को लोगों के लिए जमा होने और अमन पाने की जगह बनाया, और हुक्म दिया के तुम मुक़ामे इब्राहीम को नमाज़ की जगह बना लो। और इब्राहीम और इसमाईल से हम ने अहेद लिया के मेरे घर को तवाफ़ करने वालों और एतेकाफ़ करने वालों, रूकू करने वालों और सज्दा करने वालों के लिए साफ़ रखा करो। और जब इब्राहीम ने दुआ की के ऐ मेरे रब इस शहर को अमन की जगह बना दे। और इस शहर के बाशिंदों को जो अल्लाह पर ईमान लाये और रोज़े आख़िरत पर ईमान लाये उनके खाने के लिए मेवे अता फ़रमा, कहा के जो काफ़िर हो जाए उसके लिए भी मैं किसी क़द्र फ़ायदा पहुँचाऊंगा। फिर उसको अज़ाबे दोज़ख के लिए मजबूर करूंगा और वो बहुत बुरी जगह है। और जब इब्राहीम और इसमाईल बैतुल्लाह की बुनियादें ऊँची कर रहे थे तो ये दुआ भी करते जाते थे के ऐ हमारे रब! ये हमारी ख़िदमत मंज़ूर फ़रमा, बिलाशुबह तू ख़ूब सुनने वाला और ख़ूब जानने वाला है। ऐ हमारे रब! तु हमको फ़रमाँबरदार बनाए रख! और हमारी औलाद में से भी एक जमाअत को अपना मतीअ बना। और हमें अपनी इबादत के तरीक़े सिखा दे, और हमारी तरफ़ अपनी रहमत से तवज्जह फ़रमा, बिलाशुबहः तू अपने बन्दों पर तवज्जोह फ़रमाता है और अपनी रहमतों से नवाज़ता है। ऐ हमारे रब! और उन ही में से एक रसूल मबऊस फ़रमा जो उनको आपकी आयात पढ पढ़कर सुनाए, और किताब और दानाई की बातें सिखाया करे, और उनके दिलों को पाकीज़ा कर दिया करे। बिलाशुबह तू बड़ा ज़बरदस्त ग़ालिब और बड़ी-बड़ी हिकमतों वाला है। (2:125-129)

رَبَّنَآ اِنِّیۡۤ اَسۡکَنۡتُ مِنۡ ذُرِّیَّتِیۡ بِوَادٍ غَیۡرِ ذِیۡ زَرۡعٍ عِنۡدَ بَیۡتِکَ الۡمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا لِیُقِیۡمُوا الصَّلٰوۃَ فَاجۡعَلۡ اَفۡئِدَۃً مِّنَ النَّاسِ تَہۡوِیۡۤ اِلَیۡہِمۡ وَ ارۡزُقۡہُمۡ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّہُمۡ یَشۡکُرُوۡنَ ﴿۳۷﴾

ऐ हमारे रब! मैंने अपनी औलाद को मैदान में जहां खेती नहीं होती तेरे मुक़द्दर घर के पास ला बसाया है, ऐ हमारे रब! ताके ये नमाज़ क़ायम करें, पस आप तो कुछ लोगों के दिलों को उनकी तरफ़ मायल कर दें, और मेवे खाने को अता फ़रमा दें ताके शुक्र करें। (14:37)

मक्का में अल्लाह के घर काबा का निर्माण हज़रत इब्राहीम और उनके बड़े बेटे हज़रत इस्माईल ने मिल कर किया था। यह एक पवित्र स्थान था जिसका आदर और सम्मान विभिन्न धर्मों के लोग करते थे। इसकी परिसीमाओं में लड़ाई झगड़ा मना था, जैसा कि अभी भी है, अरब में इसे बदले और हिंसा से मुक्त और सुरक्षित जगह माना जाता था। एक वीरान और अलग थलग जगह पर स्थित होने के कारण हज़रत इब्राहीम ने अल्लाह से दुआ की कि यहां भूमि उपजाऊ हो जाए और पैदावार हो और यहां बसने वालों को अन्न प्रचुर मात्रा में मिलता रहे क्योंकि वहां वह अपनी पत्नि हाजरा और बेटे इस्माईल को छोड़ कर गए थे और हज़रत इस्माईल की पीढ़ी को यहीं पलना बढ़ना था।

अल्लाह का यह पवित्र घर काबा लोगों के लिए पूजा स्थल बना और धीरे धीरे पूरे अरब द्वीप के लोगों की श्रद्धा का केन्द्र बन गया जिसके चारों ओर व्यापार एवं वाणिज्यक व सांस्कृतिक गतिविधियां विक्सित होती गयीं। हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने अल्लाह से दुआ की कि स्वयं वो भी और उनकी संतान भी अल्लाह की भक्ति व बन्दगी में लगे रहें इसी सीख और शक्ति उन्हें मिलती रहे और जिस उद्देश्य अर्थात अल्लाह की इबादत के लिए यह घर बनाया गया है, उस पर उनकी संतान बनी रहे। अल्लाह के आज्ञापालन को अरबी में इस्लाम कहा जाता है। हज़रत इब्राहीम व इस्माईल ने अपनी भावी पीढ़ी में एक पैग़म्बर होने की भी दुआ की जो उन लोगों को अल्लाह की आयतें सुनाएं, उन्हें किताब और हिकमत (युक्ति) की शिक्षा दें और उनका मन शुद्ध करें (अर्थात उनकी बुराइयां उनके अंदर से दूर करें और उनकी नेक प्रवृत्तियों को उनके अन्दर विक्सित करें। इसके लिए कुर्आन ने तज़किया शब्द प्रयोग किया है जिसका अर्थ है पाक करना)।

اِنَّ الصَّفَا وَ الۡمَرۡوَۃَ مِنۡ شَعَآئِرِ اللّٰہِ ۚ فَمَنۡ حَجَّ الۡبَیۡتَ اَوِ اعۡتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَیۡہِ اَنۡ یَّطَّوَّفَ بِہِمَا ؕ وَ مَنۡ تَطَوَّعَ خَیۡرًا ۙ فَاِنَّ اللّٰہَ

बिलाशुबहः कोहे सफ़ा और मरवा भी अल्लाह की दीनी यादगारों में से हैं, सो जो बैतुल्लाह का हज या उमरा करे तो उस पर कोई गुनाह नहीं है के वो उन दोनों पहाड़ियों के दरमियान सई करे और जो ख़ुशी ख़ुशी कोई नेक

شَاكِرٌ عَلِيمٌ ﴿١٥٨﴾

काम करे, तो अल्लाह इसकी बड़ी क़द्र करता है और उनके ख़ुलूसे निय्यत को ख़ूब जानता है। (2:158)

कहावत है कि हज़रत इब्राहीम की पत्नि और शिशु इस्माईल की मां हाजरा इस रेतीली घाटी में पानी की खोज में लगी रहीं। वह 'सफ़ा' और 'मरवा' नामी पहाड़ियों के बीच में चक्कर लगाती रहती थीं कि कहीं पानी मिले, कभी इधर से उधर कभी उधर से इधर इसी धुन में दौड़ती रहीं, बीच बीच में वह शिशु इस्माईल को भी देखने और चूमने जाती थीं। इसी दौडध ाूप में उन्हें पानी का एक सोता दिखाई दिया जो उस जगह ज़मीन में से फूट रहा था जहां शिशु इस्माईल लेटे हुए एड़ियां रगड़ रहे थे। हज़रत हाजरा का दोनों पहाड़ियों के बीच इस तरह व्याकुल हो कर दोड़ने पर अल्लाह को इतनी दया आयी और उनकी यह बेचैनी अल्लाह को इतनी अच्छी लगी कि अल्लाह ने 'सफ़ा' और 'मरवा' पहाडियों के बीच दोड़ कर चक्कर लगाने को हज की एक क्रिया बना दिया। काबा को बुतों से पाक कर देने से पहले इन दोनों पहाड़ियों पर भी मूर्तियां खड़ी थीं जिसकी वजह से उस समय काबा की परिक्रिमा और दर्शन के लिए आने वाले नेक लोग इन पहाड़ियों के बीच दोड़ने की क्रिया करने से बचते थे। जब पैग़म्बर मुहम्मद साहब मक्का में दाख़िल हुए और आपने काबा के अन्दर व आस पास से मूर्तियां हटा दीं तो इन पहाड़ियों से भी मूर्तियां हटा दी गयीं।

वैसे क़ुर्आन की इस आयत से यह पता चलता है कि जब तक काबा को केवल एक अल्लाह की इबादत के लिए शुरू नहीं किया गया था तब भी 'सफ़ा' और 'मरवा' पहाड़ियों पर मूर्तियां खड़ी होने के बावजूद हज और उमरा की इबादत की जा सकती थी।

وَ اَتِمُّوا الْحَجَّ وَ الْعُمْرَةَ لِلّٰهِ ؕ فَاِنْ
اُحْصِرْتُمْ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ وَ لَا
تَحْلِقُوْا رُءُوْسَكُمْ حَتّٰى يَبْلُغَ الْهَدْيُ
مَحِلَّهٗ ؕ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ بِهٖۤ
اَذًى مِّنْ رَّاْسِهٖ فَفِدْيَةٌ مِّنْ صِيَامٍ اَوْ
صَدَقَةٍ اَوْ نُسُكٍ ۚ فَاِذَاۤ اَمِنْتُمْ ۪ فَمَنْ
تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ اِلَى الْحَجِّ فَمَا اسْتَيْسَرَ
مِنَ الْهَدْيِ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ
اَيَّامٍ فِي الْحَجِّ وَ سَبْعَةٍ اِذَا رَجَعْتُمْ ؕ

और अल्लाह ही की रज़ा के लिए हज पूरा करो, और उमरा पूरा करो, और अगर तुम रास्ता ही मे रोक लिए जाओ तो जो भी तुम कुर्बानी आसानी के साथ कर सको कर डालो, और जब तक कुर्बानी अपने मक़ासम पर ना पहुँच जाये तुम सर ना मुंडवाओ, अगर तुम में कोई बीमार हो, या उसके सर में कोई तकलीफ़ हो (तो वो अगर सर मुंडा ले) तो उसके बदले रोज़े रखे, या सदक़ा दे, या कुर्बानी करे, फिर जब तुम को सुकून हो जाए तो जो शख़्स हज के साथ उमरा को मिलाकर फ़ायदा उठाए तो जो कुर्बानी आसानी से मिल जाए वो करो, जिसको कुर्बानी न मिलो तो वो तीन रोज़े अय्यामे हज में रख ले,

और सात रोज़े जब के तुम वापस हो, ये पूरे दस रोज़े हैं, ये हुक्म उसके लिए है जिस के अहलो अयाल मक्का में ना रहते हों और अल्लाह ही से डरते रहो, और जान लो के अल्लाह तो है ही बड़ा अज़ाब देना वाला। (2:196)

تِلْكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ۗ ذٰلِكَ لِمَنْ لَّمْ يَكُنْ
اَهْلُهٗ حَاضِرِى الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۗ وَ اتَّقُوا
اللّٰهَ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿١٩٦﴾

हज के महीने तो मुताअय्यन हैं, उनको सब जानते हैं, तो जो उन महीनों मे हज का फ़र्ज़ कदा करने की नियत करे तो उन दिनों में ना औरत से जिमा करे ना कोई बुरा फ़ेल करे, ना किसी से झगड़ा करे, और जो नेक काम करोगे वो भी अल्लाह को मालूम हो जाएगा, और अपने साथ रास्ते का ख़र्च ज़रूर ले जाओ बेहतरीन ज़ादेराह परहेज़गारी है और ऐ अक़्ल वालो तुम मुझ से ही डरते रहा करो। इसमें तुम्हारे लिए कोई गुनाह नहीं है के हज के ज़माने में तुम तिजारत के ज़रिये रोज़ी हासिल करो और जब तुम अरफ़ात से वापस होने लगो तो तुम मशअरे हराम के पास (यानी मुज़दल्फ़ा में ठहरो और) अल्लाह का ज़िक्र करो और ज़िक्र का तरीक़ा वही है जो तुम को सिखाया है, और इससे पहले तुम उन तरीक़ों से मेहज़ नावाक़िफ़ थे। फिर तुम वहीं से वापस आओ जहाँ से दूसरे लोग वापस हों, और अल्लाह से बख़शिश मांगो, बिलाशुबह अल्लाह तो है ही बड़ा बख़शने वाला और बड़ा रहमत वाला। और जब तुम अपने सारे अरकान पूरे कर लो, तो अल्लाह का ज़िक्र किया करो जैसा के तुम अपने बाप दादा का करते आए हो, बल्के उससे भी ज्यादा और बाज़े आदमी दुआ करते है। के ऐ हमारे रब! हमको इस दुनिया में दे दीजिये, ऐसे लोगों का आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है। और बाज़ इस तरह दुआ करते हैं के ऐ हमारे रब! तू हमें अपनी नेमत से इस दुनिया में भी नवाज़ दे और आख़िरत में भी अपनी मेहरबानी से अता फ़रमा और दोज़ख के अज़ाब से भी निजात दे। उन्हीं लोगों के लिए उनके नेक कामों का बड़ा हिस्सा

اَلْحَجُّ اَشْهُرٌ مَّعْلُوْمٰتٌ ۚ فَمَنْ فَرَضَ
فِيْهِنَّ الْحَجَّ فَلَا رَفَثَ وَ لَا فُسُوْقَ ۙ وَ لَا
جِدَالَ فِى الْحَجِّ ۗ وَ مَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ
يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ ۗ وَ تَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ
التَّقْوٰى ۫ وَ اتَّقُوْنِ يٰٓاُولِى الْاَلْبَابِ ﴿١٩٧﴾
لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ
رَّبِّكُمْ ۗ فَاِذَآ اَفَضْتُمْ مِّنْ عَرَفٰتٍ فَاذْكُرُوا
اللّٰهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ ۠ وَ اذْكُرُوْهُ كَمَا
هَدٰىكُمْ ۚ وَ اِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ
الضَّآلِّيْنَ ﴿١٩٨﴾ ثُمَّ اَفِيْضُوْا مِنْ حَيْثُ اَفَاضَ
النَّاسُ وَ اسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ ۗ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ
رَّحِيْمٌ ﴿١٩٩﴾ فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ
فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ
ذِكْرًا ۗ فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا
فِى الدُّنْيَا وَ مَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ
خَلَاقٍ ﴿٢٠٠﴾ وَ مِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا
فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّ فِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّ
قِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿٢٠١﴾ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ نَصِيْبٌ
مِّمَّا كَسَبُوْا ۗ وَ اللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿٢٠٢﴾ وَ
اذْكُرُوا اللّٰهَ فِىْٓ اَيَّامٍ مَّعْدُوْدٰتٍ ۗ فَمَنْ

تَعَجَّلَ فِيْ يَوْمَيْنِ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۚ وَ مَنْ تَاَخَّرَ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۙ لِمَنِ اتَّقٰى ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ ۝

तैयार है, और अल्लाह तो बहुत जल्दी हिसाब लेने वाला है। और क़यामे मिना में भी जो गिनती के चन्द रोज़ है अल्लाह ही का ज़िक्र किया करो, और जिसे जल्दी ही वो दो ही दिन में चल दे, इस में कोई गुनाह नहीं, और जो बाद तक ठहरे उस पर भी कोई गुनाह नहीं, उस के लिए जो अल्लाह ही से डरता है, और अल्लाह ही से डरते रहा करो, और ये जान लो के तुम सबको उसी के पास जमा होना है। (2:197-203)

हज की पूरी प्रक्रिया और उसकी मुख्य क्रियाएं अरब के ल्यूनर कैलेण्डर (चन्द्रमासी कैलेंडर) के अनुसार जिलहिज महीने के पहले 13 दिन के बीच अंजाम दी जाती हैं। जबकि केवल काबा का दर्शन यानि उमरा की इबादत एक साधारण सी रस्म है जो साल में कभी भी अंजाम दी जा सकती है। हज या उमरा दोनों तरह की इबादत के लिए मक्का में प्रवेश करने से पहले यात्रि को दो बिना सिले कपड़ों से अपना शरीर ढांकना होता है जिसे अहराम कहते हें। महिलाओं के लिए इसमें यह छूट है कि वो सिला हुआ अहराम पहन सकती हैं। अहराम पहन लेना इस बात का प्रतीक है कि व्यक्ति संसारिक शान और रहन सहन के अपने ढंग को और निजी अहंकार व घमण्ड को परित्याग कर अल्लाह के घर में तुच्छ और विनम्र होकर हाज़िर हुआ है। हज या उमरा के लिए जब अहराम बांध लिया जाए तो फिर हज की सभी क्रियाएँ (''मनासिक'') पूरी होने तक व्यक्ति को दैनिक आदतों को छोड़ देना होता है, जैसे सिले हुए कपडे पहनना, बाल कटवाना या शेव कराने, या दाढी बनवाने, नाखुन काटना, शिकार करना या यौन संतुष्टि प्राप्त करना। हज और उमरा दोनों में काबा के यात्री को सात बार काबा की परिक्रिया करना होती है और सफा व मरवा के बीच सात चक्कर लगाना होते हैं। हज में इसके अलावा यह करना होता है कि 'अरफ़ात' के विशाल मैदान में जिलहिज की 9 तारीख को जमा होना होता है। हज या उमरा की क्रियाएं पूरी होने के प्रतीक के रूप में मर्द को अपना बाल कटवाना या मुंडा देना होते हैं जबकि औरतों को थोड़े से बाल काटना होते हैं। इसके बाद अहराम खोल कर सामान्य लिबास पहन लिया जाता है।

ऊपर की आयत में बताया गया है कि हज करने वाले व्यक्ति को सभी क्रियाएं (मनासिक) पूरे करना चाहिएं और इबादत की यह प्रक्रिया कोई संसारिक रीति के रूप में या संसारिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि विशुद्ध रूप से अल्लाह की इबादत के लिए करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी वजह से हज की कोई क्रिया (''नुसुक'') पूरे करने से रह जाए (पूरे न कर सकता हो) तो उसे उसके बदले उसी जगह 'दम' (एक जानवर की कुर्बानी) देना

चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अहराम बांध कर बीमार हो जाए और उसे कपड़े पहनने की ज़रूरत हो या सर में घाव या खाल में कोई बीमारी होने की वजह से बाल न कटवा सकता हो तो वह बदले में रोज़ा रखे या मिस्कीन (ग़रीब) को खाना खिलाए या एक कुर्बानी करके उसका गोश्त गरीबों में वितरित करे।

जो लोग हज का दिन शुरू होने से पहले मक्का पहुंच जाएं तो पहुंच कर पहले उमरा करना चाहिए। इस स्थिति में वो अहराम में ही रहेंगे और हज पूरा होने तक उन सभी कामों से स्वयं को रोक रखेंगे जो हज के दौरान मना हैं, या फिर उमरा करके अहराम खोल सकते हैं इस शर्त के साथ एक कुर्बानी देंगे और उसका गोश्त गरीबों में बांट देंगे।

हज या उमरा के सफ़र पर निकलने वाले को अपने साथ सफ़र की ज़रूरत का सामान लेकर निकलना चाहिए। क़ुरआन कहता है कि रास्ते के इस सफ़र में सबसे बहतरीन चीज़ अल्लाह का तक़वा और रूहानी तैयारी है। हज के दौरान जो चीज़ें ज़रूरी कर दी गयी हैं और जिन से रोक दिया गया है उनसे इन भावनाओं को पनपने का मौका मिलता है। हज के दौरान पति पत्नि को शरीरिक सम्बंध बनाने, और उन सभी कामों से बचना चाहिए जो मना हैं जैसे लड़ाई झगड़ा और तकरार। यह हज के दौरान अल्लाह का तक़वा अपने अन्दर पैदा करने का एक प्रिशिक्षण और उसकी जांच का हिस्सा है जो हज के बाद हाज करने वाले के जीवन में जारी रहना चाहिए। इबादत का कोई भी काम इस लिए नहीं होता कि मुसलमान दुनिया के जीवन से अपने आप को अलग करलें बल्कि इसका मक़सद यह होता है कि इससे मुसलमान के जीवन में संतुलन बना रहे और उसका जीवन अध्यात्मिकता (रूहानियत) से जुडा हो जिससे वह बन्दा ज़्यादा से ज़्यादा इंसानों को फ़ायदा पहुंचाने वाला हो:"और कुछ ऐसे हैं कि दुआ करते हैं कि ऐ अल्लाह हमें दुनिया में भी नेअमतें दे और आखिरत में भी नेअमतें देना और जहन्नम के अज़ाब से बचाना। यही लोग हैं जिनके कामों का फल (उन्हें मिलने वाला) है और अल्लाह जल्द हिसाब लेने वाला (और जल्द बदला देने वाला) है" (201-202)। इस्लामी दृष्टिकोण और व्यवहार यह है कि न तो संसार को त्याग दो और न उसमें पूरी तरह मगन हो जाओ कि आदमी भविष्य में मिलने वाले नए जीवन को भूल जाए जो कभी ख़त्म नहीं होगा।

قُلْ صَدَقَ اللّٰهُ ۟ فَاتَّبِعُوْا مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ؕ وَ مَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿۹۵﴾ اِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّ هُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ﴿۹۶﴾ فِيْهِ اٰيٰتٌۢ بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرٰهِيْمَ ۚ۬ وَ مَنْ دَخَلَهٗ كَانَ

आप कह दीजिये, अल्लाह ने सच कह दिया, सो तुम मिल्लते इब्राहीम की पैरवी करो, जिस में ज़रा भी कजी नहीं और वो मुशरिक भी नहीं थे। बेशक जो मकान लोगों के लिए सबसे पहले बनाया गया जो मक्का में है, वो बड़ा बाबर्कत और दुनिया जहान के लोगों के लिए मोजिबे हिदायत है। उसमें (हमारी) खुली निशानियां हैं,

اٰمِنًا ؕ وَ لِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ
اسْتَطَاعَ اِلَيْهِ سَبِيْلًا ؕ وَ مَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ
غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٧﴾

एक मुक़ामे इब्राहीम है जो उसमें दाख़िल हो जाए, अमन पाए, और अल्लाह के लिए उस घर का लोगों के ज़िम्मे हज है जो वहां तक पहुंच जाने की ताक़त व सकत रखता हो, और जो इन्कार करे, तो अल्लाह बे परवाह है, दुनिया जहान वालों से। (3:95-97)

क़ुरआन में यह बात बार बार कही गयी है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० का संदेश हज़रत इब्राहीम के तरीक़े को अपनाने का ही आग्रह है, उनके ही दीन व अक़ीदे को अपनाने की दावत है। इसीलिए मक्का में, जिसे क़ुरआन में "बक्का" भी कहा गया है और जहां अल्लाह की इबादत का प्राचीन घर हज़रत इब्राहीम ने अपने बेटे हज़रत इस्माईल की मदद से बनाया था उस घर की ज़ियारत और तवाफ़ (दर्शन और परिक्रिमा) करने के लिए आना सभी ईमान वालों पर फ़र्ज़ किया गया जो यहां आने की क्षमता व हैसियत रखते हों। इस तरह यह इस्लामी इबादत हज़रत इब्राहीम के उन प्रयासों की याद मनाने का एक साधन है जो आप ने अल्लाह का पैगाम इंसानों के देने के लिए किए। वह जहां जहां भी गए वहां इसी तौहीद (एक अल्लाह को मानना और उसकी इबादत करना) की दावत लोगों को दी और अरब की उस बस्ती में तौहीद का एक केन्द्र स्थापित किया जो हज़रत मुहम्मद साहब के ज़माने तक सुरक्षित रहा और उनके पैग़म्बर बनाए जाने के बाद फिर यहीं से तौहीद का पैग़ाम दुनिया के कोने कोने में फैला।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْتُلُوا الصَّيْدَ وَ
اَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ وَ مَنْ قَتَلَهٗ مِنْكُمْ مُّتَعَمِّدًا
فَجَزَآءٌ مِّثْلُ مَا قَتَلَ مِنَ النَّعَمِ يَحْكُمُ بِهٖ
ذَوَا عَدْلٍ مِّنْكُمْ هَدْيًۢا بٰلِغَ الْكَعْبَةِ اَوْ
كَفَّارَةٌ طَعَامُ مَسٰكِيْنَ اَوْ عَدْلُ ذٰلِكَ
صِيَامًا لِّيَذُوْقَ وَبَالَ اَمْرِهٖ ؕ عَفَا اللّٰهُ عَمَّا
سَلَفَ ؕ وَ مَنْ عَادَ فَيَنْتَقِمُ اللّٰهُ مِنْهُ ؕ وَ
اللّٰهُ عَزِيْزٌ ذُو انْتِقَامٍ ﴿٩٥﴾ اُحِلَّ لَكُمْ صَيْدُ
الْبَحْرِ وَ طَعَامُهٗ مَتَاعًا لَّكُمْ وَ لِلسَّيَّارَةِ ۚ
وَ حُرِّمَ عَلَيْكُمْ صَيْدُ الْبَرِّ مَا دُمْتُمْ

मोमिनों! जब तुम एहराम में हो तो शिकार ना किया करो, जो जान बुझ कर उसको क़त्ल करेगा तो या उसका बदला दे, उस ही जैसा चार पाया जिसे तुम में से दो मोअतबर आदमी मुक़र्रर करें लेकिन इस तौर पर के बतौर नियाज़ ये जानवर काबा तक पहुंचाए, या कफ़्फ़ारा दे, मिसकीनों को खाना खिलाए या उसके बराबर रोज़े रखे, ताके अपने काम की सज़ा चखे, और जो पहले हो चुका वो अल्लाह ने माफ़ कर दिया, और जो फ़िर ऐसा करेगा, तो अल्लाह उससे बदला लेगा, और अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, और बड़ा ही बदला लेने वाला। तुम्हारे लिये दरयाई चीज़ों का शिकार, और उनका खाना हलाल कर दिया गया है, तुम्हारे और मुसाफ़िरों के फ़ायदे के लिए, और जंगल का शिकार एहराम की हालत में हराम कर दिया गया, और अल्लाह

حُرُمًا ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِیۡۤ اِلَیۡهِ تُحۡشَرُوۡنَ ﴿۹۶﴾

से डरते रहो जिसके पास तुम सबको जमा किया जाएगा। (5:95-96)

हज के दिन अपने भीतर शान्तिपूर्ण व्यवहार का प्रशिक्षण लेने के दिन हैं कि इन दिनों में दूसरों से वाद विवाद करना भी मना है (2:197), और केवल इंसानों से ही नहीं बल्कि खाने के लिए जानवरों का शिकार करना तक मना है (5:95)। अगर किसी से इस आदेश का उल्लंघन हो जाए तो जितने जानवर शिकार किए हों उतनी ही जानवरों की क़ुरबानी काबा के पास करना होगी और उनका गोश्त गरीबों में बांटना होगा। ग़रीबों को दूसरी तरह से भी खिलाया जा सकता है और अगर इसकी क्षमता न हो तो इतने ही रोज़े रखना होंगे। कितने ग़रीबों को खाना खिलाया जाए या कितने दिन के रोज़े रखे जाएं इसका निर्धारण उन जानवरों की संख्या के अनुपात में होगा जो अहराम की हालत में हाजी से मरे हों।

وَ اِذۡ بَوَّاۡنَا لِاِبۡرٰهِیۡمَ مَکَانَ الۡبَیۡتِ اَنۡ لَّا تُشۡرِکۡ بِیۡ شَیۡـًٔا وَّ طَهِّرۡ بَیۡتِیَ لِلطَّآئِفِیۡنَ وَالۡقَآئِمِیۡنَ وَالرُّکَّعِ السُّجُوۡدِ ﴿۲۶﴾ وَ اَذِّنۡ فِی النَّاسِ بِالۡحَجِّ یَاۡتُوۡکَ رِجَالًا وَّ عَلٰی کُلِّ ضَامِرٍ یَّاۡتِیۡنَ مِنۡ کُلِّ فَجٍّ عَمِیۡقٍ ﴿۲۷﴾ لِّیَشۡهَدُوۡا مَنَافِعَ لَهُمۡ وَ یَذۡکُرُوا اسۡمَ اللّٰهِ فِیۡۤ اَیَّامٍ مَّعۡلُوۡمٰتٍ عَلٰی مَا رَزَقَهُمۡ مِّنۡۢ بَهِیۡمَةِ الۡاَنۡعَامِ ۚ فَکُلُوۡا مِنۡهَا وَ اَطۡعِمُوا الۡبَآئِسَ الۡفَقِیۡرَ ﴿۲۸﴾ ثُمَّ لۡیَقۡضُوۡا تَفَثَهُمۡ وَ لۡیُوۡفُوۡا نُذُوۡرَهُمۡ وَ لۡیَطَّوَّفُوۡا بِالۡبَیۡتِ الۡعَتِیۡقِ ﴿۲۹﴾ ذٰلِکَ ۬ؕ وَ مَنۡ یُّعَظِّمۡ حُرُمٰتِ اللّٰهِ فَهُوَ خَیۡرٌ لَّهٗ عِنۡدَ رَبِّهٖ ؕ وَ اُحِلَّتۡ لَکُمُ الۡاَنۡعَامُ اِلَّا مَا یُتۡلٰی عَلَیۡکُمۡ فَاجۡتَنِبُوا الرِّجۡسَ مِنَ الۡاَوۡثَانِ وَ اجۡتَنِبُوۡا قَوۡلَ

और जब हमने बतला दी इब्राहीम (अ.स.) को बैतुल्लाह की जगह के मेरे साथ किसी को शरीक ना करना, और मेरे घर को पाक रखना तवाफ़ करने वालों के लिये, और रूकू व सजूद करने वालों के लिये। और लोगों में हज का एलान कर दो, तुम्हारी तरफ़ लोग पैदल भी और दुबले पतले ऊँटों पर दूर व दराज़ रस्तों से चले आयेंगे। ताके वो अपने फ़ायदों के लिये हाज़िर हों, और ताके मुक़र्ररा अय्याम में उन ख़ास चौपायों पर अल्लाह का नाम लें जो अल्लाह ने उनको अता फ़रमाये हैं तो उन चौपायों में से ख़ुद भी खाओ, और मोहताजों और मुसीबत ज़दा (लोगों) को भी खिलाओ। फ़िर चाहिये के अपना मैल कुचैल दूर करें, और अपनी नज़रें पूरी करें, और मेहफ़ूज़ घर का तवाफ़ करें। ये अल्लाह का हुक्म है, और जो अल्लाह के अहकाम का एहत्राम करेगा तो ये उसके लिये बेहतर है उनके परवरदिगार के नज़दीक, और तुम्हारे लिये मवेशी हलाल कर दिये गए सिवा उनके जो तुम को पढ़ कर सुनाये जाते हैं, तो बुतों की गंदगी से बचते रहो, और झूटी बात से परहेज़ करो। तुम एक ही अल्लाह के हो जाओ, किसी को उसका शरीक ना बनाओ, और जो अल्लाह का किसी को शरीक बनाएगा,

الزُّوْرِ ﴿٣٠﴾ حُنَفَآءَ لِلّٰهِ غَيْرَ مُشْرِكِيْنَ بِهٖ ؕ
وَ مَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَكَاَنَّمَا خَرَّ مِنَ
السَّمَآءِ فَتَخْطَفُهُ الطَّيْرُ اَوْ تَهْوِيْ بِهِ
الرِّيْحُ فِيْ مَكَانٍ سَحِيْقٍ ﴿٣١﴾ ذٰلِكَ ۫ وَ مَنْ
يُّعَظِّمْ شَعَآئِرَ اللّٰهِ فَاِنَّهَا مِنْ تَقْوَى
الْقُلُوْبِ ﴿٣٢﴾ لَكُمْ فِيْهَا مَنَافِعُ اِلٰۤى اَجَلٍ
مُّسَمًّى ثُمَّ مَحِلُّهَاۤ اِلَى الْبَيْتِ الْعَتِيْقِ ﴿٣٣﴾ ع
وَ لِكُلِّ اُمَّةٍ جَعَلْنَا مَنْسَكًا لِّيَذْكُرُوا
اسْمَ اللّٰهِ عَلٰى مَا رَزَقَهُمْ مِّنْۢ بَهِيْمَةِ
الْاَنْعَامِ ؕ فَاِلٰهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ فَلَهٗۤ
اَسْلِمُوْا ؕ وَ بَشِّرِ الْمُخْبِتِيْنَ ﴿٣٤﴾ ۙ الَّذِيْنَ
اِذَا ذُكِرَ اللّٰهُ وَجِلَتْ قُلُوْبُهُمْ وَ الصّٰبِرِيْنَ
عَلٰى مَاۤ اَصَابَهُمْ وَ الْمُقِيْمِي الصَّلٰوةِ ۙ وَ مِمَّا
رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ﴿٣٥﴾ وَ الْبُدْنَ جَعَلْنٰهَا
لَكُمْ مِّنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ لَكُمْ فِيْهَا خَيْرٌ ۫
فَاذْكُرُوا اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهَا صَوَآفَّ ۚ فَاِذَا
وَجَبَتْ جُنُوْبُهَا فَكُلُوْا مِنْهَا وَ اَطْعِمُوا
الْقَانِعَ وَ الْمُعْتَرَّ ؕ كَذٰلِكَ سَخَّرْنٰهَا
لَكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿٣٦﴾ لَنْ يَّنَالَ اللّٰهَ
لُحُوْمُهَا وَ لَا دِمَآؤُهَا وَ لٰكِنْ يَّنَالُهُ
التَّقْوٰى مِنْكُمْ ؕ كَذٰلِكَ سَخَّرَهَا لَكُمْ
لِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ ؕ وَ بَشِّرِ
الْمُحْسِنِيْنَ ﴿٣٧﴾

तो वो ऐसा है जैसा के आसमान से गिर पड़े, फ़िर परिन्दे उसको उचक ले जायें या हवा किसी दूर जगह उड़ कर फेंक दे। ये हमारा हुक्म है, और जो अल्लाह के दीन की निशानियों का एहत्राम करेगा, तो ये अमल दिलों की परहेज़गारी में से है। उनमें तुम्हारे लिये एक वक़्ते मुक़र्रर तक फ़ायदे, फ़िर उनको क़दीम घर (बैतुल्लाह) तक पहुंचना है। और हमने हर उम्मत के लिये क़ुरबानी का तरीक़ा मुक़र्रर कर दिया है, ताके मवेशी चौपाये जो अल्लाह ने उनको दिये हैं। (उनके ज़िबह के वक़्त) उन पर अल्लाह का नाम लें, सो तुम्हारा माबूद एक ही माबूद है, तो तुम उसी की इताअत किया करो, और आप आजिज़ी करने वालों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिये। ये वो हैं के जब उनके सामने अल्लाह का ज़िक्र किया जाता है तो उनके दिल डर जाते हैं और उन मुसीबतों पर जो उन पर पड़ती हैं सब्र करते हैं और नमाज़ आदाब के साथ अदा करते हैं और जो माल हमने उनको दिया है उसमें से (नेक कामों में) खर्च करते हैं। और क़ुरबानी के ऊँट, गायों को भी हमने तुम्हारे लिये अल्लाह के नाम की निशानी मुक़र्रर की है, उसमें तुम्हारे फ़ायदे हैं, तो (क़ुरबानी के वक़्त) क़तार में बांध कर उन पर अल्लाह का नाम लिया करो, जब वो पहलू के बल गिर पड़ें तो उसमें से ख़ुद खाओ और क़नाअत करने वालों और मांगने वालों को भी खिलाओ, इस तरह हमने उनको तुम्हारे ज़ेरे फ़रमान कर दिया, ताके तुम शुक्र अदा करो। अल्लाह तक ना तो उनका गोश्त पहुंचता है और ना उनका ख़ून, बल्के उस तक तो सिर्फ़ तुम्हारी परहेज़गारी ही जाती है, इस तरह अल्लाह ने उनको तुम्हारे ज़ेरे फ़रमान कर दिया है ताके तुम अल्लाह की बड़ाई बयान करो इस बात पर के उसने तुम को हिदायत दी, और (ऐ नबी) नेक बन्दों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिये। (22:26-37)

जब हज का ज़माना आता है तो दुनिया के हर क्षेत्र से और दूर व पास के हर स्थान से मुसलमान हज के लिए निकल पड़ते हें, पैदल भी और सवारियों पर भी, सफ़र की दिक्कतों की परवाह किए बिना अल्लाह की बन्दगी का तकाजा पूरा करने के लिए और अपने ऊपर लाज़िम एक कर्तव्य को पूरा करने के लिए लब्बैक कहते हुए। इस विश्वास के साथ कि हज की इस यात्रा से उनके जीवन में बरकतें आएंगी और इसके बहुत से नैतिक व अध्यात्मिक फ़ायदे प्राप्त होंगे और आख़िरत के जीवन में भी इसका बदला मिलेगा। इस यात्रा के अवसर पर हालांकि कुछ लोग भौतिक लाभ भी अर्जित करते हैं जिससे उन्हें मना नहीं किया गया है। यात्रा चाहे आज के आधुनिक आरामदायक यातायात साधनों से ही हो, अपने फ़ायदों के साथ साथ शरीरिक, मानसिक और सामाजिक लिहाज़ से दिक्कतों और कठिनाइयों से भरी होती है, और ख़ास तौर से हज का सफ़र। हाजी को टेंट में ठहरना होता है और तरह तरह की स्थितियों से दोचार होना पड़ता है। इसके अलावा अपने प्यारों और घर वालों को छोड़ कर एक लम्बे सफ़र पर निकलने का मानसिक दबाव और भावनात्मक पीड़ा सहन करनी पड़ती है। अलबत्ता, हाजी को नई जगहों, वहां के लोगों, उनके हालात और इतिहास की जानकारी प्राप्त करने का मौक़ा भी मिलता है, और कारोबार करने वाले लोग एक दूसरे से परिचित होते हैं और उन्हें व्यापारिक सम्बंध बनाने का मौक़ा भी मिलता है।

लेकिन इन सबके बावजूद, असिल चीज़ जो सब से ज़्यादा ज़रूरी और फ़ायदेमंद है वह है अध्यात्मिक फ़ायदा जो हाजी को मिलता है। अल्लाह के घर पहुंच कर अल्लाह से क़रीब होने का अहसास होता है और हज़रत इब्राहीम व इस्माईल से लेकर मुहम्मद सल्ल० तक पैग़म्बरों का जो सिलसिला है उससे जुड़े होने की भावना जगती है। यह वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन इंसानी बराबरी और विश्व एकता और प्रेम व भाईचारे का एक दर्शन प्रस्तुत करता है। भौगौलिक, नस्लीय, राजनीतिक, शैक्षिक और सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से भिन्न लोग इंसानी भाईचारे के रिश्ते में बंधे हुए एक दूसरे से बराबर के सम्मान व अधिकारों के साथ एक जगह जमा होते हैं। हज के दौरान आपस में एक दूसरे से परिचित होना और एक दूसरे की सहायता करना एक सामान्य बात है। हज की प्रक्रिया का एक अंग कुर्बानी भी है जो अल्लाह के नाम पर की जाती है और जिसका फ़ायदा ग़रीबों और मिस्कीनों को मिलता है, लेकिन इस बारे में कुर्आन का जो संदेश है उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और वह यह है कि:"अल्लाह को उन (पशुओं) का गोश्त पहुंचता है न खून बल्कि उस तक तुम्हारी नेकी पहुंचती है।

अल्लाह का तक़वा और उसका आज्ञापालन ही हर इबादत का मक़सद है:"कहो मेरी नमाज़ और मेरी इबादत और मेरा जीना और मेरा मरना सब अल्लाह के लिए है जो सारे जगतों का रब है जिसका कोई साझीदार नहीं है और मुझे इसी बात का आदेश मिला है और मैं सबसे पहले आदेश मानने वालों में से हूं (6:162-163)।

इबादत के दूसरे काम

وَ اِذَا سَاَلَكَ عِبَادِیْ عَنِّیْ فَاِنِّیْ قَرِیْبٌ ؕ اُجِیْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ اِذَا دَعَانِ ۙ فَلْیَسْتَجِیْبُوْا لِیْ وَ لْیُؤْمِنُوْا بِیْ لَعَلَّهُمْ یَرْشُدُوْنَ ﴿۱۸۶﴾

ऐ रसूल! जब मेरे बन्दे तुम से मेरे बारे में दरयाफ़्त करें तो तुम कह दो के मैं तो तुम से बहुत क़रीब हूँ, मैं तो दुआ मांगने वाले की दुआ कबूल करता हूँ, जबके वो दुआ करे, तो वो भी मेरे हुक्म को माने और अमल करें, और मुझ पर पूरा पूरा यक़ीन करें ताके वो नेक रास्ता पायें। (2:186)

اِنَّ فِیْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ وَ اخْتِلَافِ الَّیْلِ وَ النَّهَارِ لَاٰیٰتٍ لِّاُولِی الْاَلْبَابِ ﴿۱۹۰﴾ الَّذِیْنَ یَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِیٰمًا وَّ قُعُوْدًا وَّ عَلٰی جُنُوْبِهِمْ وَ یَتَفَكَّرُوْنَ فِیْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا ۚ سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿۱۹۱﴾ رَبَّنَاۤ اِنَّكَ مَنْ تُدْخِلِ النَّارَ فَقَدْ اَخْزَیْتَهٗ ؕ وَ مَا لِلظّٰلِمِیْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ﴿۱۹۲﴾ رَبَّنَاۤ اِنَّنَا سَمِعْنَا مُنَادِیًا یُّنَادِیْ لِلْاِیْمَانِ اَنْ اٰمِنُوْا بِرَبِّكُمْ فَاٰمَنَّا ۟ رَبَّنَا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَ كَفِّرْ عَنَّا سَیِّاٰتِنَا وَ تَوَفَّنَا مَعَ الْاَبْرَارِ ﴿۱۹۳﴾ رَبَّنَا وَ اٰتِنَا مَا وَعَدْتَّنَا عَلٰی رُسُلِكَ وَ لَا تُخْزِنَا یَوْمَ الْقِیٰمَةِ ؕ اِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِیْعَادَ ﴿۱۹۴﴾ فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ اَنِّیْ لَاۤ اُضِیْعُ عَمَلَ عَامِلٍ مِّنْكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰی ۚ بَعْضُكُمْ مِّنْ بَعْضٍ ۚ فَالَّذِیْنَ هَاجَرُوْا

बिला शुबह आसमानों और ज़मीन के बनाने में और रात और दिन के अदल बदल जाने में अक़्ल वालों के लिए निशानियां हैं। जो खड़े, बैठे, और लेटे हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं और आसमानों और ज़मीन के बनाने में फ़िक्र करते हैं और कहते हैं के ऐ हमारे रब! तूने ये सब बेकार या बेफ़ायदा नहीं बनाया, तू पाक है, हमें दोज़ख के अज़ाब से बचा। ऐ हमारे रब! बेशक आप जिसको दोज़ख में दाख़िल करें बिला शुबह आपने इसको रूसवा ही कर दिया और वाक़ई ऐसे ज़ालिमों का कोई हामी व नासिर नहीं होता। ऐ हमारे रब! बेशक हमने एक पुकारने वाले को सुना के वो एलान कर रहा है के तुम अपने रब पर ईमान लाओ सो हम ईमान लाये, ऐ हमारे रब! तू हमारे गुनाहों को भी माफ़ फ़रमा दे, और बुराईयों को भी हम से दूर कर दे और हमको मौत नेक लोगों के साथ दीजिये। ऐ हमारे रब! और वो चीज़ भी ईनायत फ़रमा दे जो तूने हमसे अपने रसूल की मार्फ़त वादा किया था और हमको क़यामत के रोज़ रूसवा ना करना, बेशक आप वादा ख़िलाफ़ी नहीं करते। सो उनके रब ने उनकी दरख्वास्त मंज़ूर कर ली के मैं तुम में से किसी अमल करने वाले के अमल को ज़ाए नहीं करता, ख़्वाह वो मर्द हो या औरत हो, तुम आपस

وَاُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَاُوْذُوْا فِيْ سَبِيْلِيْ وَ قٰتَلُوْا وَ قُتِلُوْا لَاُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّاٰتِهِمْ وَ لَاُدْخِلَنَّهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۚ ثَوَابًا مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ ؕ وَ اللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الثَّوَابِ ﴿۱۹۵﴾

में एक दूसरे के जुज़ हो, सो जो अपने वतन को छोड़ कर निकले और अपने घरों से निकाले गए और मेरी राह में तकलीफ़ें उठायें और जिहाद किया और शहीद हो गए तो ज़रूर में उनके गुनाह माफ़ कर दूंगा और बाग़ात में दाख़िल कर दूंगा जिनके नीचे नहरें जारी होंगी, ये बदला मिलेगा अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह के पास तो अच्छा ही बदला है। (3:190-195)

इंसान कैसी भी स्थिति में हो, अल्लाह की याद और अल्लाह से दुआ और विनती वह कभी भी कर सकता है क्योंकि अल्लाह से कलाम करने की प्रक्रिया केवल इबादत के कुछ खास कामों तक ही सीमित नहीं है। उदाहरण के तौर पर, लेब में काम करते हुए या टेलीस्कोप से अंतरिक्ष में होने वाली गतिविधियों का नज़ारा करते हुए कोई शोधकर्ता अल्लाह की क़ुदरत की निशानियां देखे तो, या सूरज के निकलने औ डूबने का दृश्य देखे, या कोई आम आदमी प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता को देखे तो अल्लाह की रचनाओं के करिश्मों से अल्लाह की प्रशंसा और वन्दना करने की तरफ़ उसका ध्यान जा सकता है। इन तमाम हैरान करने वाले और आंखें खोल देने वाले दृश्यों से इंसान को यह प्रेरणा मिलती है कि वह अल्लाह के आगे झुक जाए और अल्लाह का गुणगान करे और अल्लाह से दुआ करे। जीवन की कुछ खास परिस्थितियों में इंसान अपने आप को बेबस पाता है और अल्लाह से मदद व मार्गदर्शन मांगता है। इंसान अपने ऊपर अल्लाह की कृपा व दया को महसूस करके उसका शुक्र अदा करता है। जब कभी इंसान को अल्लाह के आगे इन भावनाओं को व्यक्त करने की ज़रूरत होती है और अपनी ज़रूरत वह अल्लाह के आगे रखता है तो अल्लाह के दरवाज़े उसके लिए खुले होते हैं और उसके लिए किसी औपचारिक प्रक्रिया की ज़रूरत नही होती। यह रूहानी हालत ही इबादत की रूह है और यह किसी ख़ास समय और ख़ास रूप में करने तक सीमित नहीं है। और जो लोग अल्लाह का डर रखते हैं उनके लिए अल्लाह की रहमत और दुआ का बदला हमेशा बे हिसाब और असीमित है। जो अल्लाह की हिदायत पर चलते हैं और अल्लाह की मदद को आकर्षित करने वाले काम करते हैं, चाहे वो ग़रीब हों या अमीर, कमज़ोर हों यो ताक़तवर, किसी भी जगह के हों, किसी भी रंग के हों और जो भी उनकी परिस्थितियां हों अल्लाह किसी के कर्म को बेकार नहीं करता और किसी को निराश नहीं करता। एक इंसान और मोमिन होने के रूप में मर्द और औरत दोनों बराबर हैं, इसलिए उनके अधिकार और ज़िम्मेदारियां भी समान हैं, दुआ और दुआ के कुबूल होने में भी दोनों का मामला बराबर है और इसी तरह अच्छे अमल करने और उनका बदला पाने में भी दोनों में कोई अन्तर नहीं और भेद नहीं है।

ادْعُوْا رَبَّكُمْ تَضَرُّعًا وَّ خُفْيَةً ۚ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ۝٥٥

तुम अपने रब ही से दुआ किया करो, अच्छी तरह गिड़गिड़ा कर और आहिस्ता आहिस्ता, वो वाक़ई हद से आगे बढ़ने वालों को पसंद नहीं करता। (7:55)

وَاذْكُرْ رَّبَّكَ فِيْ نَفْسِكَ تَضَرُّعًا وَّ خِيْفَةً وَّ دُوْنَ الْجَهْرِ مِنَ الْقَوْلِ بِالْغُدُوِّ وَ الْاٰصَالِ وَلَا تَكُنْ مِّنَ الْغٰفِلِيْنَ ۝٢٠٥

और अपने रब को याद किया करो अपने दिल में आजज़ी से, डरते हुए, ज़ोर की आवाज़ की बजाये कम आवाज़ से सुबह व शाम, और ग़ाफ़िलों में ना रहना। (7:205)

जब भी कोई बन्दा अल्लाह से दुआ करे और किसी नुक़सान या ख़तरे से सुरक्षित रहने या किसी भलाई और लाभ को पाने के लिए अल्लाह से मदद मांगे तो उसे चाहिए कि विनम्रता को अपनाए और दिल की गहराई से मांगे, ज़ोर ज़ोर से पुकार लगाने और दिखावा करने से बचे। हद से निकलना तो आम तौर से है ही ग़लत, और ख़ास तौर से जब हम अल्लाह से उसकी कृपा व दया मांगा करे हों तो अल्लाह के सामने चीख़ना चिल्लाना और भी बड़ी गुस्ताखी है।

وَ لِلّٰهِ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى فَادْعُوْهُ بِهَا ۪ وَ ذَرُوا الَّذِيْنَ يُلْحِدُوْنَ فِيْۤ اَسْمَآئِهٖ ؕ سَيُجْزَوْنَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝١٨٠

और अच्छे अच्छे नाम अल्लाह ही के लिए हैं, सो तुम अल्लाह को उन ही नामों से याद किया करो और उन लोगों को छोड़ दो जो अल्लाह के नामों में कजरवी करते हैं, सो उन लोगों को उनके किये की सज़ा ज़रूर मिलेगी। (7:180)

قُلِ ادْعُوا اللّٰهَ اَوِ ادْعُوا الرَّحْمٰنَ ؕ اَيًّا مَّا تَدْعُوْا فَلَهُ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى ۚ وَ لَا تَجْهَرْ بِصَلَاتِكَ وَ لَا تُخَافِتْ بِهَا وَ ابْتَغِ بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيْلًا ۝١١٠

आप फ़रमा दीजिये के चाहे अल्लाह कह कर पुकारा या रहमान कह कर जिस नाम से भी पुकारोगे, सो उसके बहुत अच्छे अच्छे नाम हैं और अपनी नमाज़ें ना तो बहुत ज़ोर से पढ़िये और ना बिल्कुल चुपके से, और उन दोनों के दरमियान एक तरीक़ा इख़्तियार कीजिये। (17:110)

अल्लाह की हस्ती बहुत ऊंची और महान है और उसके गुण बे गिनती हैं। इस गुणों को बताने वाले उसके बहुत से प्यारे प्यारे मुबारक नाम हैं जो उसकी शान बयान करने के लिए ख़ास हैं। इन नामों में जहां उसकी क़ुदरत व ताक़त और महानता को बयान करने वाले नाम हैं वहीं उसकी रहमत, करम, फ़ज़ल, मेहरबानी और शालीनता को व्यक्त करने वाले नाम भी

हैं। तथा कुछ नाम उसकी पैदा करने, बनाने और संवारने की शक्ति को बयान करते हैं। उसकी शान बेमिसाल है और अपनी क़ुदरत व फ़ज़्ल में वह बे नज़ीर व अनोखा (अद्वितीय) है। वह इंसान के अनुभव और कल्पना से भी परे है:"(वह ऐसा है कि) आंखें उसको नहीं पा सकतीं लेकिन वह आंखों को देखता है और वह भेद जानने वाला ख़बरदार है" (6:103), "आसमानों और ज़मीन में उसकी शान बहुत ऊंची है और ज़बरदस्त हिकमत वाला है" (30:27)। ये बहुमुखी गुण इंसान को अल्लाह की बहुमुखी शान और महानता को समझने में मदद देते हैं और ये ऐसे गुण हैं जो इतने ऊंचे दर्जे में ख़ालिक़ व मालिक अल्लाह के अलावा किसी और में जमा नहीं हो सकते। दूसरी तरफ़ ये इंसान को यह बताते हैं कि वो क्या गुण हैं जो उसे अपने सामने आदर्श के रूप में रखना चाहिएं। इन गुणों से सुसज्जित होना और इन गुणों से काम लेना उसके लिए कमाल की बात होगी हालांकि कोई इंसान इन गुणों के उत्तम दर्जे तक नहीं पहुंच सकता न ये सभी गुण एक समय में उसके अन्दर जमा हो सकते हैं क्योंकि यह अल्लाह की ही शान है और अल्लाह के लिए ही हैं। इस तरह उच्चतम शान वाली और मुकम्मल हस्ती की तरफ़ से इंसान का मार्गदर्शन किया जाता है कि इस आदर्श को अपने सामने रखें लेकिन यह बात ध्यान रहे कि इंसान बस वहीं तक पहुंच सकता है जहां तक उसकी सीमाएं हैं क्योंकि वह मख़लूक़ (रचना) है जिसका काम अल्लाह की इबादत करना और अल्लाह का बन्दा बन कर रहना है।

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ تَطْمَئِنُّ قُلُوْبُهُمْ بِذِكْرِ اللّٰهِ ؕ اَلَا بِذِكْرِ اللّٰهِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوْبُ ﴿۲۸﴾

जो ईमान ले आए हैं और जिन के दिल अल्लाह की याद से सुकून पाते हैं, सुन लो के अल्लाह की याद से दिलों को सुकून मिलता है। (13:28)

इंसान केवल अल्लाह की एक रचना (मख़लूक़) है, और उसे जो कुछ भी योग्यताएं व क्षमताएं दी गयी हैं उन सब के बावजूद उसे अपने ऊपर एक हस्ती की मदद दरकार होती है। यह हर व्यक्ति की एक बौद्धिक और मानसिक ज़रूरत है चाहे उसे कितनी भी ताक़त मिली हुई हो, क्योंकि हर एक को जीवन के उतार चढ़ाव में मदद और सहारे की ज़रूरत होती है और क़ुदरती रूप से व इंसानों की तरफ़ से सामाजिक व भौतिक चुनौतियां सामने आती रहती हैं। अल्लाह से इंसान का सम्बंध कोई बाहरी चीज़ नहीं है, यह एक आन्तरिक मामला है, इंसान के दिल व दिमाग़ और रूह का सम्बंध है। यह इंसान का एक आन्तरिक अनुभव होता है। जब कोई बन्दा अल्लाह की तरफ़ पलटता (या पलटती) है तो उसे यह अध्यात्मिक और मानसिक व बौद्धिक अनुभव होता है। अगर कोई इंसान खुद अल्लाह की तरफ़ नहीं पलटता तो अल्लाह उसे इसके लिए मजबूर नहीं करता लेकिन वह इंसान स्वयं नुक़सान उठाता (उठाती) है क्योंकि इस तरह वह स्वयं ही उस लगातार बने रहने वाले वास्तविक सहारे, सुकून, संतुलन और

स्थिरता को खो देता (देती) है। इस दुनिया में जीवन के उतार चढ़ाव में अल्लाह की याद से दिल को संतोष और सहारा मिलता है, इंसान अपने ऊपर नियंत्रण रखता है और अपना संतुलन खोने से बचा रहता है, जिससे वह अहंकार, घमण्ड, स्वार्थपूर्ति, जल्दबाज़ी और निराशा से बचा रहता है।

وَيَدْعُ الْإِنسَانُ بِالشَّرِّ دُعَاءَهُ بِالْخَيْرِ ۖ وَكَانَ الْإِنسَانُ عَجُولًا ﴿١١﴾

और इन्सान बुराई के लिये इस तरह दरख्वास्त करता है जिस तरह नेकी की दरख्वास्त, और इन्सान जल्द बाज़ है। (17:11)

इंसान अपनी अज्ञानता या जल्दबाज़ी की वजह से यह नहीं समझता कि उसके लिए सही क्या है और ग़लत क्या है, और अपनी इन कमज़ोरियों की वजह से उन चीज़ों को मांगता है जो किसी ख़ास समय में उसके पास नहीं होतीं हालांकि ज़रूरी नहीं कि वह चीज उसके लिए फ़ायदे वाली ही हो, बल्कि वह नुक़सान दायक भी हो सकती है। लेकिन बुद्धिमान और होशियार आदमी धैर्य और बुि से काम लेता है और किसी चीज़ से ज़ाहिर में महरूम होने की वजह से किसी जल्दबाज़ी वाली प्रतिक्रिया के चक्कर में नहीं पड़ता बल्कि सब कुछ जानने वाले और हिकमत वाले अल्लाह की हिदायत पर अमल करता है। इसी तरह, अपने रहीम व करीम और महरबान रब से मांगने का जो मौक़ा बन्दे को मिला हुआ है उसका इस्तेमाल उसे स्वार्थपूर्ति, ना समझी और जल्दबाज़ी से ख़ुद अपने लिए या दूसरों के लिए किसी नुक़सान की तमन्ना के लिए नहीं करना चाहिए। कभी किसी ख़ास कठिन परिस्थिति में ऐसा होता है कि कि इंसान अपने लिए या अपने बच्चों वगैरह के लिए कोई बद-दुआ कर बैठता है। क़ुरआन बताता है कि हक़ के झुटलाने वालों ने अल्लाह से कहा:"ऐ अल्लाह अगर यह (क़ुरआन) तेरी तरफ़ से सत्य है तो हम पर आसमान से पत्थर बरसा दे, या कोई और यातना देने वाला अज़ाब भेज" (8:32)। इंसान को अल्लाह से कुछ मांगते हुए बहुत सावधान रहना चाहिए और इस ज़बरदस्त अवसर को मूर्खतापूर्ण मांगों के लिए इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। किसी के साथ अगर कोई उत्पीड़न हुआ हो तो पीड़ित के लिए यद्यपि इस बात की इजाज़त है कि वह अपने आक़ा व हाकिम रब से इसकी शिकायत करे लेकिन बहतर बात यह है कि वह अल्लाह से इंसाफ की दुआ करे और यह उसी पर छोड़ दे कि वह क्या फ़ैसला करता है और उसके नज़दीक उचित क्या है, या अल्लाह से यह दुआ करे कि उसके साथ जो अन्याय हुआ है उसकी भरपाई हो, और ज़ुल्म करने वाले को क्या सजा मिले यह उसी पर छोड़ दे।

وَقَالَ رَبُّكُمُ ادْعُونِي أَسْتَجِبْ لَكُمْ ۚ إِنَّ الَّذِينَ يَسْتَكْبِرُونَ عَنْ عِبَادَتِي

और तुम्हारे रब ने कहा है के मुझको पुकारो, मैं तुम्हारी दुआ क़ुबूल करूंगा, जो लोग मेरी इबादत करने से

سَيَدْخُلُونَ جَهَنَّمَ دَاخِرِينَ ۝

तकब्बुर करते हैं, वो बहुत जल्द दोज़ख में ज़लील होकर दाख़िल होंगे। (40:60)

जीवन चूंकि अनन्त नहीं है इसलिए आख़िरत के जीवन में इंसानी क्षमताओं की पूर्ति और मुकम्मल इंसाफ के लिए हमें दुआ करना चाहिए और इस इंसाफ़ को पाने के लिए सभी जीवों और सभी जगतों के पालनहार से हम केवल दुआ ही कर सकते हैं। वह हमारी दुआएं सुनेगा, हमें रास्ता दिखाएगा, हमारे गुनाह मआफ़ करेगा और दुनिया व आख़िरत में हमारा रास्ता आसान करेगा। अगर हम अहंकार से काम लेंगे और अल्लाह के आगे विनम्रतापूर्वक झुक कर उससे मआफ़ी और बख़्शिश नहीं मांगेंगे तो न सिर्फ़ आख़िरत के जीवन में यह हमारी नाकामी और ज़िल्लत की वजह बनेगा बल्कि इस दुनिया के जीवन में भी हमें राहत व आनन्द और सम्मान नहीं मिलेगा। यह एक इंसानी ज़रूरत है कि असीमित हिकमत और क़ुदरत वाले रब का सहारा पकड़ा जाए और जो कोई इस अक़ली, रूहानी और मानसिक ज़रूरत से मुंह मोड़ता है वह नुक़सान में है और एक दिन ज़िल्लत व दुर्गति और लाचारी में ढकेल दिया जाएगा।

लेकिन जो इंसान अल्लाह से किसी चीज़ की दुआ करता है या किसी चीज़ से बचने के लिए उसकी मदद मांगता है उसे पूरी तरह यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी चीज़ के अच्छे या बुरे होने के बारे में इंसान का अपना फ़ैसला अन्तिम नहीं है बल्कि इंसान की अपनी सीमाएं हैं जिनसे आगे वह जा नहीं सकता। अल्लाह हर चीज़ की जानकारी रखता है और उसकी हिकमत (युक्ति) असीमित है। वही जानता है कि जो इंसान उससे किसी चीज़ की दुआ कर रहा है उसके लिए और उससे जुड़े दूसरे लोगों के लिए आख़िरकार बहतर क्या है और क्या नुकसादायक है। इसलिए उसका फैसला ही बहतर है। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने यह बताया है कि कोई मुसलमान जब अल्लाह से किसी ऐसी चीज़ की दुआ करता है जो अपने आप में बुरी नहीं है या सम्बंधों को तोड़ने वाली नहीं है तो उसकी दुआ ज़रूर क़ुबूल होती है और अल्लाह उसकी दुआ तीन तरह से पूरी करता हैःया तो वह तुरन्त ही पूरी हो जाती है या आख़िरत में उससे बहतर कोई बात उसके लिए लिख दी जाती है या उसके ऊपर से कोई मुसीबत टाल दी जाती है (इब्ने हंबल)।

अल्लाह से दुआ हर समय और हर तरह के हालात में की जा सकती है लेकिन फिर भी पैग़म्बर साहब की हदीस से मालूम होता है कि कुछ दुआएं अल्लाह के नज़दीक खास महत्व रखती हैं। जैसे बच्चों के लिए मातापिता की दुआ, मुसाफ़िर (यात्री) की दुआ जब कि वह घर वापस आए, रोज़ेदार की दुआ और उत्पीड़न का निशाना बनने वाले की दुआ (इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी)। अल्लाह से दुआ करते हुए बन्दे को पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि अल्लाह से उसे क्या मांगना है, और उसकी असीमित सहायता व सहारे की दुआ करते हुए उसे

पूरी तरह गम्भीर होना चाहिए। मातापिता अपने बच्चों की मदद के लिए हमैशा मौजूद नहीं रहेंगे और मुसाफ़िर जो सफ़र में अपनी कमज़ोरी व लाचारी को महसूस करता है, और रोज़ेदार व उत्पीड़ित ये सब अपनी ज़रूरत और अपनी कमज़ोरी को समझते हैं। दूसरे इंसानों की भलाई के लिए उनकी बेख़बरी में दुआ करना भी अल्लाह के यहां बहुत प्रिय और क़ुबूल होने वाली दुआ है। (मुस्लिम, अबुदाऊद, तिरमिज़ी)।

कुछ ख़ास घडियां व अवसर भी ऐसे होते हैं जिनमें की जाने वाली दुआएं क़ुबूल होती हैं। सजदे में की जाने वाली दुआ, हर नमाज़ के बाद की जाने वाली दुआ, रात के अन्तिम समय उठकर की जाने वाली दुआ, रमज़ान में की जाने वाली दुआएं, और हज के दौरान अरफ़ात के मैदान में की जाने वाली दुआ। इसके अलावा पैग़म्बर साहब ने जीवन में लगातार बदलते रहने वाली परिस्थितियों के लिए अपने तरीक़े से रास्ता दिखाया है और अलग अलग समय की जाने वाली दुआएं सिखाई हैं। सुबह को उठने की दुआ, रात को सोते समय की दुआ, दिन निकलने की दुआ, शाम ढलने की दुआ, घर से निकलने और घर वापस आने की दुआ, खाने पीने, कपड़े पहनने, सवारी पर चढ़ने, नया चांद देखने की दुआ, विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक परिस्थितियों में की जाने वाली दुआएं, दिक़्क़त के समय दुआ, ग़ुस्से की हालत के लिए दुआ, ख़ुशी के मौक़े की दुआ वग़ैरह। पैग़म्बर सल्ल० द्वारा सिखाई गयी दुआएं हर तरह के हालात में एक मार्गदर्शन हैं जैसे यह कि अल्लाह से बख़्शिश की दुआ की जाए, हिफ़ाज़त के लिए दुआ की जाए और दुनिया व आख़िरत के जीवन में हर मौक़े पर बहतरी व आसानी के लिए उससे दुआ की जाए। चिन्ता और दुख से निकलने के लिए दुआ की जाए, आलस से बचने की दुआ की जाए, क़र्ज़ से मुक्ति पाने के लिए दुआ की जाए, लोगों की ज़ोर ज़बरदस्ती से बचने के लिए दुआ की जाए।

पैगम्बर साहब सल्ल० यह कुरआनी दुआ (2:102) हमेशा पढ़ा करते थेः "रब्बना आतिना फ़िद दुनिया हसनःव फ़िल आख़िरति हसनःव क़िना अज़ाब अल्न्नार (ऐ हमारे रब हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे और हमें जहन्नम के अज़ाब से बचाना।"
(बुख़ारी, मुस्लिम)।

क़ुरआन और पैग़म्बर साहब द्वारा सिखाई गयी दुआएं मोमिन को कल्पनात्मक, नैतिक और व्यवहारिक आदर्श और मर्यादाओं को याद दिलाती हैं कि विभिन्न हालतों में अपने आप को कैसा रखना है। यह साफ है कि वो दुआएं जो व्यक्तिगत, घरेलू और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को समेटती हैं, इस कुरआनी कृति (इस पुस्तक) का सबसे शानदार और ज़ोरदार अन्त होंगी, इसलिए इस पुस्तक का आख़री अध्याय दुआओं के लिए ख़ास है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि अल्लाह से हिदायत और मदद की दुआ करने के लिए विनम्रता ज़रूरी है और यह अहसास रखना कि इंसान अपने आप में कमज़ोर है और अल्लाह ज़बरदस्त

व सर्वशक्तिमान है। और यह बात कि इस हिदायत (सीख) के अनुसार खुद को ढालना और यह कि जो दुआ मांगी जा रही है उसकी सच्ची तमन्ना व कामना रखना। अल्लाह से कुछ निर्धारित शब्दों में ही दुआ करना काफ़ी नहीं है बल्कि इंसान अपने हाल और हालत के लिहाज़ से अपने शब्दों में अपनी ज़रूरत अल्लाह के सामने रखे और उससे हिदायत मांगे तो यह भी ठीक और स्वभाविक बात है।

अल्लाह की हम्द (वन्दना), तस्बीह व तकबीर (पाकी और बड़ाई बयान करना) और तौबा व इस्तग़फ़ार (मआफ़ी और बख़्शिश मांगना) का बयान

فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ وَ اشْكُرُوْا لِيْ وَ لَا تَكْفُرُوْنِ ﴿۱۵۲﴾

तो तुम मेरी नेमतों को याद किया करो, मैं भी तुम को इनायत से याद रखूँगा। और मेरी नेमत पर शुक्र करो और मेरी नाशुक्री न करो। (2:152)

فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ؕ فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِي الدُّنْيَا وَ مَا لَهٗ فِي الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ﴿۲۰۰﴾ وَ مِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِي الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّ فِي الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّ قِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿۲۰۱﴾ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَ اللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿۲۰۲﴾

और जब तुम अपने सारे अरकान पूरे कर लो, तो अल्लाह का ज़िक्र किया करो जैसा के तुम अपने बाप दादा का करते आए हो, बल्के उससे भी ज़्यादा और बाज़े आदमी दुआ करते है। के ऐ हमारे रब! हमको इस दुनिया में दे दीजिये, ऐसे लोगों का आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है। और बाज़ इस तरह दुआ करते हैं के ऐ हमारे रब! तू हमें अपनी नेमत से इस दुनिया में भी नवाज़ दे और आख़िरत में भी अपनी मेहरबानी से अता फ़रमा और दोज़ख के अज़ाब से भी निजात दे। उन्हीं लोगों के लिए उनके नेक कामों का बड़ा हिस्सा तैयार है, और अल्लाह तो बहुत जल्दी हिसाब लेने वाला है। (2:200-202)

وَ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ ؕ قُلْ هُوَ اَذًى ۙ فَاعْتَزِلُوا النِّسَآءَ فِي الْمَحِيْضِ ۙ وَ لَا تَقْرَبُوْهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ ۚ فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوْهُنَّ مِنْ حَيْثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ

और वो हैज के बारे में दरयाफ़्त करत हैं कह दो के वो एक गंदी चीज़ है, तो हैज़ के दिनों में तुम औरत से अलग रहो, और उनके क़रीब न जाओ जब तक वो पाक न हो जायें, फिर जब वो अच्छी तरह पाक हो जाये तो उनके पास जाओ जिस जगह से अल्लाह ने तुम को

يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَ يُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ﴿٢٢٢﴾

हुक्म दिया है, बिला शुबह अल्लाह तौबा करने वालों और पाक साफ़ रहने वालों को अपना महबूब रखता है। (2:222)

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ؕ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَ عَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ؕ رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَاۤ اِنْ نَّسِيْنَاۤ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا وَ لَا تَحْمِلْ عَلَيْنَاۤ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَ لَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ وَ اعْفُ عَنَّا ۟ وَ اغْفِرْ لَنَا ۟ وَ ارْحَمْنَا ۟ اَنْتَ مَوْلٰىنَا فَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٨٦﴾

अल्लाह किसी को तकलीफ़ नहीं देता मगर जितना उसकी ताक़त में है। उसको सवाब भी उसी का मिलेगा जो इरादा से किया। और उस पर अज़ाब भी उसी का होगा जो इरादा से किया। ऐ हमारे रब! हम पर दारोगीर ना फ़रमा, अगर हम भूल जायें। या चूक जायें, ऐ हमारे रब! और हम पर कोई सख़्त हुक्म न भेज, जैसे हम से पहले लोगों पर आप ने भेजा था। ऐ हमारे रब! और हम पर ऐसा बार (दुनिया या आख़िरत में) ना डाल, जो हम बर्दाश्त ना कर सकें। हम से दरगुज़र फ़रमा, और हम को बख़्श दे। हम पर रहम फ़रमा, आप हमारे कारसाज़ हैं और हमें काफ़िरों पर ग़ल्बा और नुसरत अता फ़रमा। (2:286)

اَلَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَاۤ اِنَّنَاۤ اٰمَنَّا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَ قِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿١٦﴾ اَلصّٰبِرِيْنَ وَ الصّٰدِقِيْنَ وَ الْقٰنِتِيْنَ وَ الْمُنْفِقِيْنَ وَ الْمُسْتَغْفِرِيْنَ بِالْاَسْحَارِ ﴿١٧﴾

जो अल्लाह से इल्तिजा करते हैं के ऐ हमारे रब! हम ईमान ले आए, तो आप हमारे गुनाह माफ़ कर दीजिये और दोज़ख के अज़ाब से बचा दीजिये। ये ही मुसीबत में सब्र करते हैं, और सच बोलते हैं और इबादत में लगे रहते हैं, और अल्लाह के रास्ते में खर्च करते हैं। और अवक़ाते सहर में अपने गुनाहों की माफ़ी मांगते हैं। (3:16-17)

قَالَ رَبِّ اجْعَلْ لِّيْۤ اٰيَةً ؕ قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ اِلَّا رَمْزًا ؕ وَ اذْكُرْ رَّبَّكَ كَثِيْرًا وَّ سَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَ الْاِبْكَارِ ﴿٤١﴾

ज़क्रिया ने अर्ज़ किया कि ऐ मेरे रब! मेरे लिए कोई निशानी मुक़र्रर फ़रमा दीजिये, अल्लाह ने फ़रमाया तुम्हारी निशानी यही है कि तुम लोगों से तीन रोज़ तक बातें ना कर सकोगे, बजुज़ इशारा के, और अपने रब को बकसरत याद करो और तसबीह करो दिन ढले और सुबह भी। (3:41)

وَ الَّذِيْنَ اِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً اَوْ ظَلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ ذَكَرُوا اللّٰهَ فَاسْتَغْفَرُوْا لِذُنُوْبِهِمْ ۫ وَ مَنْ يَّغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اللّٰهُ ۫ وَ لَمْ يُصِرُّوْا عَلٰى مَا فَعَلُوْا وَ هُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿۱۳۵﴾ اُولٰٓئِكَ جَزَآؤُهُمْ مَّغْفِرَةٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ وَ نِعْمَ اَجْرُ الْعٰمِلِيْنَ ﴿۱۳۶﴾

ये मोहसिनीन वो हैं जो जब कोई ऐसा काम कर गुज़रते हैं जिसमें ज़्यादती हो जाए या अपनी ज़ात पर ज़ुल्म कर लेते हैं तो वो अल्लाह को याद करते हैं, और अपने गुनाहों की माफ़ी मांगते हैं, और अल्लाह के सिवा और है भी कौन? जो गुनाहों को बख़्शता हो, और वो अपने फ़ैलों पर इसरार नहीं किया करते और वो ख़ूब जानते हैं। उन लोगों की जज़ा उनके रब की तरफ़ से बख़्शिश है और बाग़ात जिनके नीचे नहरें चलती हैं, ये हमेशा उन ही में रहेंगे, ये उन आमिलीन का सबसे ज़्यादा हसीन सिला है। (3:135-136)

وَ مَا كَانَ قَوْلَهُمْ اِلَّاۤ اَنْ قَالُوْا رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَ اِسْرَافَنَا فِيْۤ اَمْرِنَا وَ ثَبِّتْ اَقْدَامَنَا وَ انْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿۱۴۷﴾ فَاٰتٰىهُمُ اللّٰهُ ثَوَابَ الدُّنْيَا وَ حُسْنَ ثَوَابِ الْاٰخِرَةِ ؕ وَ اللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۱۴۸﴾

और उनकी ज़बान से भी तो इसके सिवा और कुछ न निकला के उन्होंने कहा, ऐ हमारे रब! आप हमारे गुनाहों को और हमारे कामों में अपनी हद से निकल जाने को बख़्श दीजिये, और हम को साबित क़दम रखिये, और हमको काफ़िरों पर ग़ालिब कीजिये। सो उनको अल्लाह ने दुनिया का बदला भी दिया और आख़िरत का भी उम्दा बदला दिया, और अल्लाह एहसान करने वालों को महबूब रखता है। (3:147-148)

فَبِمَا رَحْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ لِنْتَ لَهُمْ ۚ وَ لَوْ كُنْتَ فَظًّا غَلِيْظَ الْقَلْبِ لَا نْفَضُّوْا مِنْ حَوْلِكَ ۪ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَ اسْتَغْفِرْ لَهُمْ وَ شَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ﴿۱۵۹﴾

उसके बाद अल्लाह ही की रहमत से आप उनके साथ नर्म रहे, और अगर आप तुंदख़ू सख़्त तबीयत होते तो ये सब आपके पास से मुनतशिर हो जाते, सो आप उनको माफ़ कर दीजिये, और उनके लिये असतग़फ़ार कर दीजिये, और उनसे ख़ास ख़ास बातों में मशवरह लेते रहा कीजिये, फ़िर जब आप राय पुख़्ता कर लें तो अल्लाह ही पर एतमाद कीजिये, बिला शुबह अल्लाह एतमाद करने वालों से मोहब्बत करता है। (3:159)

الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيٰمًا وَّ قُعُوْدًا وَّ عَلٰى

जो खड़े, बैठे, और लेटे हर हाल में अल्लाह को याद करते

جُنُوْبِهِمْ وَ يَتَفَكَّرُوْنَ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا ۚ سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿۱۹۱﴾

हैं और आसमानों और ज़मीन के बनाने में फ़िक्र करते हैं और कहते हैं के ऐ हमारे रब! तूने ये सब बेकार या बेफ़ायदा नहीं बनाया, तू पाक है, हमें दोज़ख के अज़ाब से बचा। (3:191)

رَبَّنَآ اِنَّنَا سَمِعْنَا مُنَادِيًا يُّنَادِيْ لِلْاِيْمَانِ اَنْ اٰمِنُوْا بِرَبِّكُمْ فَاٰمَنَّا ۚ رَبَّنَا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَ كَفِّرْ عَنَّا سَيِّاٰتِنَا وَ تَوَفَّنَا مَعَ الْاَبْرَارِ ﴿۱۹۳﴾

ऐ हमारे रब! बेशक हमने एक पुकारने वाले को सुना के वो एलान कर रहा है के तुम अपने रब पर ईमान लाओ सो हम ईमान लाये, ऐ हमारे रब! तू हमारे गुनाहों को भी माफ़ फ़रमा दे, और बुराईयों को भी हम से दूर कर दे और हमको मौत नेक लोगों के साथ दीजिये। (3:193)

اِنَّمَا التَّوْبَةُ عَلَى اللّٰهِ لِلَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ السُّوْٓءَ بِجَهَالَةٍ ثُمَّ يَتُوْبُوْنَ مِنْ قَرِيْبٍ فَاُولٰٓئِكَ يَتُوْبُ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿۱۷﴾ وَ لَيْسَتِ التَّوْبَةُ لِلَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ السَّيِّاٰتِ ۚ حَتّٰٓى اِذَا حَضَرَ اَحَدَهُمُ الْمَوْتُ قَالَ اِنِّيْ تُبْتُ الْـٰٔنَ وَ لَا الَّذِيْنَ يَمُوْتُوْنَ وَ هُمْ كُفَّارٌ ؕ اُولٰٓئِكَ اَعْتَدْنَا لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ﴿۱۸﴾

दरअसल तौबा का क़ुबूल करना तो अल्लाह के ज़िम्मे है, उन ही लोगों के लिए जो अपनी हिमाक़त से कोई गुनाह कर बैठते हैं फिर फ़ौरन ही तौबा कर लेते हैं, तो ऐसे तौबा करने वालों पर अल्लाह अपनी रहमत फ़रमाता है, और अल्लाह तो बड़ा जानने वाला है, और बड़ी हिकमतों वाला है। और ऐसे लोगों की तौबा दरअसल तौबा नहीं है जो गुनाह करते रहते हैं यहां तक के जब मौत ही आ गई उनमें किसी के सामने तो कहते हैं मैं अब तौबा करता हूँ, और न तौबा उनकी जिनको कुफ़्र की हालत में मौत आ जाती है उन लोगों के लिए हमने दर्दनाक सज़ा तैयार कर रखी है। (4:17-18)

وَ مَآ اَرْسَلْنَا مِنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا لِيُطَاعَ بِاِذْنِ اللّٰهِ ؕ وَ لَوْ اَنَّهُمْ اِذْ ظَّلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ جَآءُوْكَ فَاسْتَغْفَرُوا اللّٰهَ وَ اسْتَغْفَرَ لَهُمُ الرَّسُوْلُ لَوَجَدُوا اللّٰهَ تَوَّابًا رَّحِيْمًا ﴿۶۴﴾

और हमने कोई रसूल नहीं भेजा मगर महेज़ इसलिए के अल्लाह के फ़रमान के मुताबिक़ उनकी इताअत की जाए और ये लोग जब अपने हक़ में ज़ुल्म कर बैठे थे अगर तुम्हारे पास आते और अल्लाह से माफ़ी मांगते और अल्लाह का रसूल उनके लिए बख़्शिश तलब करते तो वो अल्लाह को भी माफ़ करने वाला और बड़ा मेहरबान पाते। (4:64)

فَاِذَا قَضَيْتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيٰمًا وَّ قُعُوْدًا وَّ عَلٰى جُنُوْبِكُمْ ۚ فَاِذَا اطْمَاْنَنْتُمْ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ ۚ اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ كِتٰبًا مَّوْقُوْتًا ﴿۱۰۳﴾

फ़िर जब तुम नमाज़े ख़ौफ़ अदा कर चुको तो अल्लाह की याद में लग जाओ, खड़े भी और बैठे भी और लेटे भी, और जब तुम मुतमईन हो जाओ तो नमाज़ को क़ायदे के मवाफ़िक़ पढ़ने लगो, बेशक नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है और वक़्त के साथ महदूद है। (4:103)

فَمَنْ تَابَ مِنْۢ بَعْدِ ظُلْمِهٖ وَ اَصْلَحَ فَاِنَّ اللّٰهَ يَتُوْبُ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۳۹﴾

जो गुनाह के बाद तौबा कर ले और अपनी इस्लाह कर ले तो बेशक अल्लाह उसकी तौबा क़बूल करता है, बेशक अल्लाह बख़्शने वाला और रहमत वाला है। (5:39)

وَ اخْتَارَ مُوْسٰى قَوْمَهٗ سَبْعِيْنَ رَجُلًا لِّمِيْقَاتِنَا ۚ فَلَمَّاۤ اَخَذَتْهُمُ الرَّجْفَةُ قَالَ رَبِّ لَوْ شِئْتَ اَهْلَكْتَهُمْ مِّنْ قَبْلُ وَ اِيَّايَ ؕ اَتُهْلِكُنَا بِمَا فَعَلَ السُّفَهَآءُ مِنَّا ۚ اِنْ هِيَ اِلَّا فِتْنَتُكَ ؕ تُضِلُّ بِهَا مَنْ تَشَآءُ وَ تَهْدِيْ مَنْ تَشَآءُ ؕ اَنْتَ وَلِيُّنَا فَاغْفِرْ لَنَا وَ ارْحَمْنَا وَ اَنْتَ خَيْرُ الْغٰفِرِيْنَ ﴿۱۵۵﴾

और मूसा (अ.स.) ने हमारे वक़्त मोईय्यन के लिए अपनी क़ौम के सत्तर आदमी मुंतख़िब किये, सो जब ज़लज़ले ने उनको पकड़ा तो मूसा ने कहा ऐ मेरे रब! अगर तू चाहता तो उनको और मुझको पहले ही से हलाक कर देता, क्या तू उस फ़ेअल की सज़ा में जो हम में से बे अक़्ल लोगों ने किया है, हमें हलाक कर देगा, ये तो तेरी आज़माईश है उससे जिसको तू चाहे गुमराह कर दे और जिसे चाहे हिदायत बख़्शे, तू ही हमारा कारसाज़ है, पस तू हमें बख़्श दे। और हम पर रहम फ़रमा, और तू सबसे बेहतर बख़्शने वाला है।(7:155)

وَ اذْكُرْ رَّبَّكَ فِيْ نَفْسِكَ تَضَرُّعًا وَّ خِيْفَةً وَّ دُوْنَ الْجَهْرِ مِنَ الْقَوْلِ بِالْغُدُوِّ وَ الْاٰصَالِ وَ لَا تَكُنْ مِّنَ الْغٰفِلِيْنَ ﴿۲۰۵﴾

और अपने रब को याद किया करो अपने दिल में आजज़ी से, डरते हुए, ज़ोर की आवाज़ की बजाये कम आवाज़ से सुबह व शाम, और ग़ाफ़िलों में ना रहना। (7:205)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِذَا لَقِيْتُمْ فِئَةً فَاثْبُتُوْا وَ اذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ

मोमिनों! जब तुम को किसी जमात से मुक़ाबला पड़ जाए तो साबित क़दम रहो और अल्लाह को कसरत से

تُفْلِحُوْنَ ﴿٤٥﴾ وَ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ وَ لَا تَنَازَعُوْا فَتَفْشَلُوْا وَ تَذْهَبَ رِيْحُكُمْ وَ اصْبِرُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿٤٦﴾ وَ لَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ بَطَرًا وَّ رِئَآءَ النَّاسِ وَ يَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ ﴿٤٧﴾

याद करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। और अल्लाह और उसके रसूल की इताअत किया करो और आपस में झगड़े ना किया करो, वरना कम हिम्मत हो जाओगे, और तुम्हारी हवा उखड़ जाएगी और क़ुव्वते बर्दाश्त पैदा किया करो, बेशक अल्लाह सब्र वालों के साथ है। और काफ़ीन की तरह ना होना जो अपने घरों से इत्राते हुए, और लोगों को अपनी शान दिखाते हुए निकले, और लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोकते थे, और अल्लाह उनके आमाल को अपने आहाता में लिये हुए है। (8:45-47)

اَلَمْ يَعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ هُوَ يَقْبَلُ التَّوْبَةَ عَنْ عِبَادِهٖ وَ يَاْخُذُ الصَّدَقٰتِ وَ اَنَّ اللّٰهَ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿١٠٤﴾

क्या वो नहीं जानते हैं के अल्लाह ही अपने बन्दों की तौबा क़बूल करता है और वही ख़ैरात क़बूल कर लेता है और बिला शुबह अल्लाह तौबा क़बूल करने वाला और रहम वाला है। (9:104)

وَّ اَنِ اسْتَغْفِرُوْا رَبَّكُمْ ثُمَّ تُوْبُوْٓا اِلَيْهِ يُمَتِّعْكُمْ مَّتَاعًا حَسَنًا اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى وَّ يُؤْتِ كُلَّ ذِيْ فَضْلٍ فَضْلَهٗ ؕ وَ اِنْ تَوَلَّوْا فَاِنِّيْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ يَوْمٍ كَبِيْرٍ ﴿٣﴾ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ ۚ وَ هُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٤﴾

और ये के तुम अपने रब से बख़्शिश मांगा करो, फ़िर रूजू करो उसकी तरफ़, वो तुमको एक मुक़र्ररा मुद्दत तक अच्छा फ़ायदा पहुंचाएगा, और हर ज़्यादा काम करने वाले को ज़्यादा सवाब देगा, और अगर तुमने रूगर्दानी की तो मैं डरता हूँ तुम पर एक बड़े दिन के अज़ाब से। तुम सबको अल्लाह की तरफ़ लौट कर जाना है, और वो हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत रखता है। (11:3-4)

وَ يٰقَوْمِ اسْتَغْفِرُوْا رَبَّكُمْ ثُمَّ تُوْبُوْٓا اِلَيْهِ يُرْسِلِ السَّمَآءَ عَلَيْكُمْ مِّدْرَارًا وَّ يَزِدْكُمْ قُوَّةً اِلٰى قُوَّتِكُمْ وَ لَا تَتَوَلَّوْا مُجْرِمِيْنَ ﴿٥٢﴾

ऐ मेरी क़ौम! तुम अपने रब ही से गुनाह की बख़्शिश मांगा करो, फ़िर उस की तरफ़ मुतावज्जह रहो, वो तुम पर आसमान से मुसलाधर मेंह बरसा देगा, और वो तुमको और ताक़त देकर तुम्हारी ताक़त बढ़ा देगा, और मुजरिम बनकर रूगर्दानी मत करो। (11:52)

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ تَطْمَئِنُّ قُلُوْبُهُمْ بِذِكْرِ اللّٰهِ ؕ اَلَا بِذِكْرِ اللّٰهِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوْبُ ﴿۲۸﴾

जो ईमान ले आए हैं और जिन के दिल अल्लाह की याद से सुकून पाते हैं, सुन लो के अल्लाह की याद से दिलों को सुकून मिलता है। (13:28)

رَبَّنَا اغْفِرْ لِيْ وَ لِوَالِدَيَّ وَ لِلْمُؤْمِنِيْنَ يَوْمَ يَقُوْمُ الْحِسَابُ ﴿۴۱﴾

ऐ हमारे रब! हिसाब के दिन मुझ को और मेरे मां बाप को और कुल मोमिनों को बख़्श दे। (14:41)

وَ لَقَدْ نَعْلَمُ اَنَّكَ يَضِيْقُ صَدْرُكَ بِمَا يَقُوْلُوْنَ ﴿۹۷﴾ فَسَبِّحْ بِحَمْدِ رَبِّكَ وَ كُنْ مِّنَ السّٰجِدِيْنَ ﴿۹۸﴾

और हम जानते हैं के उनकी बातों से आपका दिल तंग होता है। तो आप अपने रब की पाकी और ख़ूबियां बयान करते रहें, और सज्दा करने वालों में से हो जायें। और अपने रब की बन्दगी करते रहो, यहां तक के तुम को मौत आ जाये। (15:97-99)

ثُمَّ اِنَّ رَبَّكَ لِلَّذِيْنَ عَمِلُوا السُّوْٓءَ بِجَهَالَةٍ ثُمَّ تَابُوْا مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ وَ اَصْلَحُوْٓا ۙ اِنَّ رَبَّكَ مِنْۢ بَعْدِهَا لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۱۹﴾

फ़िर आपका रब ऐसे लोगों के लिये जिन्होंने जहालत के सबब कोई बुरा काम किया, फ़िर उसके बाद तौबा की और अपने आपको दुरूस्त कर लिया तो आपका रब उसके बाद बड़ी मग़फ़िरत वाला है, बड़ी रहमत वाला है। (16:119)

وَ قُلِ الْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِيْ لَمْ يَتَّخِذْ وَلَدًا وَّ لَمْ يَكُنْ لَّهٗ شَرِيْكٌ فِي الْمُلْكِ وَ لَمْ يَكُنْ لَّهٗ وَلِيٌّ مِّنَ الذُّلِّ وَ كَبِّرْهُ تَكْبِيْرًا ﴿۱۱۱﴾

और कह दीजिये के तमाम ख़ूबियां अल्लाह ही के लिये हैं जो ना औलाद रखता है और ना कोई उसका सल्तनत में शरीक है और ना कोई उसका मददगार है, कमज़ोरी की वजह से, और उस की बड़ाईयां बयान किया कीजिये। (17:111)

اِذْهَبْ اَنْتَ وَ اَخُوْكَ بِاٰيٰتِيْ وَ لَا تَنِيَا فِيْ ذِكْرِيْ ﴿۴۲﴾

तुम और तुम्हारा भाई दोनों हमारी निशानियां लेकर जाओ, और मेरी याद में सुस्ती ना करना। (20:42)

وَ اِنِّیۡ لَغَفَّارٌ لِّمَنۡ تَابَ وَ اٰمَنَ وَ عَمِلَ صَالِحًا ثُمَّ اهۡتَدٰی ﴿۸۲﴾

और जो तौबा कर ले और ईमान ले आए, और अच्छे काम करे, फ़िर सीधे रस्ते पर चले, तो मैं उसको बख़्श दूंगा। (20:82)

فَاصۡبِرۡ عَلٰی مَا یَقُوۡلُوۡنَ وَ سَبِّحۡ بِحَمۡدِ رَبِّکَ قَبۡلَ طُلُوۡعِ الشَّمۡسِ وَ قَبۡلَ غُرُوۡبِهَا ۚ وَ مِنۡ اٰنَآیِٔ الَّیۡلِ فَسَبِّحۡ وَ اَطۡرَافَ النَّهَارِ لَعَلَّکَ تَرۡضٰی ﴿۱۳۰﴾

पस जो ये बकवास करते हैं उस पर सब्र कीजिये, और अपने रब की हम्द के साथ, सूरज निकलने से पहले और ग़रूब होने से पहले तसबीह कीजिये, रात की साआत में तसबीह किया कीजिये, और दिन के अव्वल और आख़िर में भी ताके आप ख़ुश हों। (20:130)

وَ قُلۡ رَّبِّ اغۡفِرۡ وَ ارۡحَمۡ وَ اَنۡتَ خَیۡرُ الرّٰحِمِیۡنَ ﴿۱۱۸﴾ ع

और आप दुआ करें, के ऐ मेरे रब! माफ़ फ़रमा, और रहम फ़रमा, और आप सबसे बेहतर रहम फ़रमाने वाले हैं। (23:118)

فِیۡ بُیُوۡتٍ اَذِنَ اللّٰهُ اَنۡ تُرۡفَعَ وَ یُذۡکَرَ فِیۡهَا اسۡمُهٗ ۙ یُسَبِّحُ لَهٗ فِیۡهَا بِالۡغُدُوِّ وَ الۡاٰصَالِ ﴿۳۶﴾ۙ رِجَالٌ ۙ لَّا تُلۡهِیۡهِمۡ تِجَارَةٌ وَّ لَا بَیۡعٌ عَنۡ ذِکۡرِ اللّٰهِ وَ اِقَامِ الصَّلٰوةِ وَ اِیۡتَآءِ الزَّکٰوةِ ۪ یَخَافُوۡنَ یَوۡمًا تَتَقَلَّبُ فِیۡهِ الۡقُلُوۡبُ وَ الۡاَبۡصَارُ ﴿۳۷﴾ۙ لِیَجۡزِیَهُمُ اللّٰهُ اَحۡسَنَ مَا عَمِلُوۡا وَ یَزِیۡدَهُمۡ مِّنۡ فَضۡلِهٖ ؕ وَ اللّٰهُ یَرۡزُقُ مَنۡ یَّشَآءُ بِغَیۡرِ حِسَابٍ ﴿۳۸﴾

वो क़नदील उन घरों में है जिनके बारे में ख़ुदा ने इरशाद फ़रमाया है के बुलंद किये जायें, और वो वहां ख़ुदा के नाम का ज़िक्र किया जाए, और सुबह व शाम उसकी तसबीह करते हैं। ऐसे लोग जिनको अल्लाह के ज़िक्र से, और नमाज़ पढ़ने से, और ज़कात देने से ना तो तिजारत ग़ाफ़िल रखती है और ना ही ख़रीदो फ़रोख़्त, वो उस दिन से डरते हैं जिसमें दिल और आंखे ख़ौफ़ और घबराहट से उलट जायेगी। ताके अल्लाह उनको उनके अमल का बहुत अच्छा बदला अता फ़रमा दे, और उनको अपने फ़ज़ल से और भी ज़्यादा देगा, और अल्लाह जिसे चाहता है बेशुमार रिज़्क़ देता है। (24:36-38)

وَ تَوَکَّلۡ عَلَی الۡحَیِّ الَّذِیۡ لَا یَمُوۡتُ وَ سَبِّحۡ بِحَمۡدِهٖ ؕ وَ کَفٰی بِهٖ بِذُنُوۡبِ عِبَادِهٖ خَبِیۡرَا ﴿۵۸﴾ۚ

और उस पर भरोसा कीजिये जो ज़िन्दा है, कभी नहीं मरेगा, और उसी की पाकी और हम्द बयान करें, और वो अपने बन्दों के गुनाह से ख़ूब वाक़िफ़ है। (25:58)

(ऐ नबी) आप इस किताब को पढ़ा कीजिये, जो आप पर वही की गई है, और नमाज़ की पाबंदी कीजिये, यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है, और अल्लाह का ज़िक्र बहुत बड़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29:45)

اُتْلُ مَآ اُوْحِیَ اِلَیْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰی عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لَذِكْرُ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ وَ اللّٰهُ یَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ ﴿۴۵﴾

बेशक तुम्हारे लिये अल्लाह के रसूल की पैरवी में बेहतरीन नमूना अमल मौजूद है, उस शख़्स के लिये जो अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर अक़ीदा रखता है, और कसरत से अल्लाह को याद करता रहता है। (33:21)

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِیْ رَسُوْلِ اللّٰهِ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ لِّمَنْ كَانَ یَرْجُوا اللّٰهَ وَ الْیَوْمَ الْاٰخِرَ وَ ذَكَرَ اللّٰهَ كَثِیْرًا ﴿۲۱﴾

ऐ अहले ईमान! अल्लाह का बहुत ज़्यादा ज़िक्र किया करो, और सुबह और शाम उसकी पाकी बयान करते रहो। (33:41-42)

یٰۤاَیُّهَا الَّذِیْنَ اٰمَنُوا اذْكُرُوا اللّٰهَ ذِكْرًا كَثِیْرًا ﴿۴۱﴾ وَّ سَبِّحُوْهُ بُكْرَةً وَّ اَصِیْلًا ﴿۴۲﴾

तमाम ख़ूबियां सिर्फ़ उस अल्लाह के लिये सज़ावार हैं जो उन सब चीज़ों का मालिक है जो आसमानों और ज़मीन में हैं, और उसी के लिये हम्द है आख़िरत में और वो ही हिकमत में और वो ही हिकमत वाला ख़बरदार है। (34:1)

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَ مَا فِی الْاَرْضِ وَ لَهُ الْحَمْدُ فِی الْاٰخِرَةِ ؕ وَ هُوَ الْحَكِیْمُ الْخَبِیْرُ ﴿۱﴾

आप का रब जो बड़ी इज़्ज़त वाला है पाक है उससे जो ये बताते हैं। और सलाम हो रसूलों पर। और हर क़िस्म की तारीफ़ अल्लाह ही के लिये सज़ावार है, जो तमाम जहानों का रब है। (37:180-182)

سُبْحٰنَ رَبِّكَ رَبِّ الْعِزَّةِ عَمَّا یَصِفُوْنَ ﴿۱۸۰﴾ وَ سَلٰمٌ عَلَی الْمُرْسَلِیْنَ ﴿۱۸۱﴾ وَ الْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ ﴿۱۸۲﴾

ऐ नबी! आप कह दीजिये, ऐ मेरे बन्दों! जो अपने ऊपर ज़ुल्म कर चुके हैं, अल्लाह की रहमत से मायूस ना होना,

قُلْ یٰعِبَادِیَ الَّذِیْنَ اَسْرَفُوْا عَلٰۤی اَنْفُسِهِمْ لَا تَقْنَطُوْا مِنْ رَّحْمَةِ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ یَغْفِرُ

الذُّنُوْبَ جَمِيْعًا ؕ اِنَّهٗ هُوَ الْغَفُوْرُ الرَّحِيْمُ ﴿٥٣﴾ وَ اَنِيْبُوْٓا اِلٰى رَبِّكُمْ وَ اَسْلِمُوْا لَهٗ مِنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَكُمُ الْعَذَابُ ثُمَّ لَا تُنْصَرُوْنَ ﴿٥٤﴾ وَ اتَّبِعُوْٓا اَحْسَنَ مَآ اُنْزِلَ اِلَيْكُمْ مِّنْ رَّبِّكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَكُمُ الْعَذَابُ بَغْتَةً وَّ اَنْتُمْ لَا تَشْعُرُوْنَ ﴿٥٥﴾ اَنْ تَقُوْلَ نَفْسٌ يّٰحَسْرَتٰى عَلٰى مَا فَرَّطْتُّ فِيْ جَنْۢبِ اللّٰهِ وَ اِنْ كُنْتُ لَمِنَ السّٰخِرِيْنَ ﴿٥٦﴾ اَوْ تَقُوْلَ لَوْ اَنَّ اللّٰهَ هَدٰىنِيْ لَكُنْتُ مِنَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿٥٧﴾ اَوْ تَقُوْلَ حِيْنَ تَرَى الْعَذَابَ لَوْ اَنَّ لِيْ كَرَّةً فَاَكُوْنَ مِنَ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿٥٨﴾ بَلٰى قَدْ جَآءَتْكَ اٰيٰتِيْ فَكَذَّبْتَ بِهَا وَ اسْتَكْبَرْتَ وَ كُنْتَ مِنَ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٥٩﴾

अल्लाह तो सब गुनाहों को माफ़ कर देगा, बिला शुबह वो बड़ा बख़्शने वाला बड़ा रहम करने वाला है। और अपने रब की तरफ़ रूजू करो, और उसकी फ़रमांबर्दारी करो, क़ब्ल इसके के तुम पर अज़ाब आये, फ़िर तुम्हारी कोई मदद ना की जायेगी। इस हसीन तरीन किताब की पैरवी करो, जो तुम पर तुम्हारे रब की तरफ़ से उतरी है, क़ब्ल इसके के तुम पर अज़ाब नागहों आ जाये, और तुम को ख़बर भी ना हो। के कोई समझने लगे के उस कोताही पर अफ़सोस जो मैंने अल्लाह के हक़ में की है, और मैं तो सिर्फ़ हंसता ही रहा। या ये कहने लगे, अगर मुझे अल्लाह हिदायत करता तो मैं भी परहेज़गारों में होता। या जब अज़ाब देख ले तो कहने लगे, के अगर मुझे फ़िर एक बार दुनिया में जाना हो तो मैं भी नेकों में हो जाऊँ। हां बेशक मेरी आयात तो तेरे पास आ चुकी थीं, फ़िर भी तुमने उनको झुटलाया, और तकब्बुर किया, और काफ़िरों में शामिल रहा। (39:53-59)

فَاصْبِرْ اِنَّ وَعْدَ اللّٰهِ حَقٌّ وَّ اسْتَغْفِرْ لِذَنْۢبِكَ وَ سَبِّحْ بِحَمْدِ رَبِّكَ بِالْعَشِيِّ وَ الْاِبْكَارِ ﴿٥٥﴾

तो आप सब्र करते रहिये, बिला शुबह अल्लाह का वादा सच्चा है, और अपने गुनाहों की माफ़ी मांगिये, और सुबह व शाम अपने परवरदिगार की तारीफ़ के साथ तसबीह करते रहिये। (40:55)

هُوَ الْحَيُّ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ فَادْعُوْهُ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ؕ اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٦٥﴾

वही ज़िन्दा है, उसके सिवा कोई माबूद नहीं, तो उसके लिये इबादत को ख़ालिस करके उसी को पुकारो, सारी तारीफ़ अल्लाह ही को सज़ावार है, जो तमाम जहान का पालने वाला है। (40:65)

وَ هُوَ الَّذِيْ يَقْبَلُ التَّوْبَةَ عَنْ عِبَادِهٖ وَ يَعْفُوْا عَنِ السَّيِّاٰتِ وَ يَعْلَمُ مَا تَفْعَلُوْنَ ﴿٢٥﴾

और वही अपने बन्दों की तौबा क़ुबूल करता है, और वो गुनाहों को माफ़ करता है, और वो ख़ूब जानता है जो तुम करते हो। (42:25)

وَ الَّذِیْ خَلَقَ الْاَزْوَاجَ كُلَّهَا وَ جَعَلَ لَكُمْ
مِّنَ الْفُلْكِ وَ الْاَنْعَامِ مَا تَرْكَبُوْنَ ۙ﴿۱۲﴾
لِتَسْتَوٗا عَلٰى ظُهُوْرِهٖ ثُمَّ تَذْكُرُوْا نِعْمَةَ
رَبِّكُمْ اِذَا اسْتَوَيْتُمْ عَلَيْهِ وَ تَقُوْلُوْا
سُبْحٰنَ الَّذِیْ سَخَّرَ لَنَا هٰذَا وَ مَا كُنَّا لَهٗ
مُقْرِنِيْنَ ۙ﴿۱۳﴾ وَ اِنَّاۤ اِلٰى رَبِّنَا لَمُنْقَلِبُوْنَ ﴿۱۴﴾

और जिसने हर चीज़ के जोड़े पैदा किये और तुम्हारे लिये कश्तियां और चौपाये पैदा किये जिन पर तुम सवार होते हो। ताके तुम उसकी पीठ पर जम कर बैठो, फ़िर जब तुम बैठ चुके तो अपने रब की नेमत को याद करो और कहो के वो ज़ात पाक है जिसने इन चीज़ों को हमारे लिये मुसख़्ख़िर कर दिया, और हम ऐसे नहीं थे के उनको अपने बस में कर लेते। और हम सबको अपने रब की तरफ़ लौट कर जाना है। (43:12-14)

فَاعْلَمْ اَنَّهٗ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَ اسْتَغْفِرْ
لِذَنْۢبِكَ وَ لِلْمُؤْمِنِيْنَ وَ الْمُؤْمِنٰتِ ؕ وَ
اللّٰهُ يَعْلَمُ مُتَقَلَّبَكُمْ وَ مَثْوٰىكُمْ ﴿۱۹﴾

पस जान लीजिये के अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और अपने गुनाह की माफ़ी मांगिये और मोमिन मर्दों और मोमिन औरतों के लिये भी, और अल्लाह तुम्हारा चलना फ़िरना, और ठहरना ख़ूब जानता है। (47:19)

وَ اصْبِرْ لِحُكْمِ رَبِّكَ فَاِنَّكَ بِاَعْيُنِنَا وَ
سَبِّحْ بِحَمْدِ رَبِّكَ حِيْنَ تَقُوْمُ ۙ﴿۴۸﴾ وَ مِنَ
الَّيْلِ فَسَبِّحْهُ وَ اِدْبَارَ النُّجُوْمِ ﴿۴۹﴾

और तुम अपने परवरदिगार के हुक्म के इन्तिज़ार में सब्र किये रहो, तुम तो हमारी आंखों के सामने हो, जब उठा करो तो अपने रब की हम्द के साथ तसबीह किया करो। और रात के थोड़े हिस्से में भी और सितारों के ग़ुरूब होने के बाद भी अल्लाह की पाकी बयान करते रहो। (52:48-49)

اَلَمْ يَاْنِ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَنْ تَخْشَعَ
قُلُوْبُهُمْ لِذِكْرِ اللّٰهِ وَ مَا نَزَلَ مِنَ الْحَقِّ ۙ وَ
لَا يَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلُ
فَطَالَ عَلَيْهِمُ الْاَمَدُ فَقَسَتْ قُلُوْبُهُمْ ؕ وَ
كَثِيْرٌ مِّنْهُمْ فٰسِقُوْنَ ﴿۱۶﴾

क्या मोमिनीन के लिये इस बात का वक़्त नहीं आया के अल्लाह की नसीहत और जो दीने हक़ नाज़िल हुआ है उनके दिल उसके आगे झुक जायें, और वो उन लोगों की तरह ना हो जाये, जिनको उनसे पहले किताबें दी गई थीं, फ़िर उन पर ज़माना तवील गुज़र गया तो उनके दिल सख़्त हो गए, और उनमें अक्सर नाफ़रमान हैं। (57:16)

اِسْتَحْوَذَ عَلَيْهِمُ الشَّيْطٰنُ فَاَنْسٰهُمْ ذِكْرَ اللّٰهِ ؕ اُولٰٓئِكَ حِزْبُ الشَّيْطٰنِ ؕ اَلَآ اِنَّ حِزْبَ الشَّيْطٰنِ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿۱۹﴾

शैतान ने उन पर क़ाबू पा लिया है, तो अल्लाह की याद को उन से भुला दिया है। ये जमात शैतान का लश्कर है, ख़बरदार शैतान का लश्कर नुक़सान उठाने वाला है। (58:19)

وَالَّذِيْنَ جَآءُوْ مِنْۢ بَعْدِهِمْ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا وَ لِاِخْوَانِنَا الَّذِيْنَ سَبَقُوْنَا بِالْاِيْمَانِ وَ لَا تَجْعَلْ فِيْ قُلُوْبِنَا غِلًّا لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا رَبَّنَآ اِنَّكَ رَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۰﴾

और उनके लिये भी जो इन मुहाजिरीन के बादआए, और दुआ करते हैं के ऐ हमारे परवरदिगार हमको माफ़ फ़रमा, और हमारे भाईयों को जो हमसे पहले ईमान लाये हैं और मोमिनीन की तरफ़ से हमारे दिलों में कीना ना पैदा होने दे ऐ हमारे परवरदिगार! तू तो बड़ा शफ़्क़त करने वाला रहम वाला है। (59:10)

هُوَ اللّٰهُ الَّذِيْ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ عٰلِمُ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ ۚ هُوَ الرَّحْمٰنُ الرَّحِيْمُ ﴿۲۲﴾ هُوَ اللّٰهُ الَّذِيْ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلْمَلِكُ الْقُدُّوْسُ السَّلٰمُ الْمُؤْمِنُ الْمُهَيْمِنُ الْعَزِيْزُ الْجَبَّارُ الْمُتَكَبِّرُ ؕ سُبْحٰنَ اللّٰهِ عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ﴿۲۳﴾ هُوَ اللّٰهُ الْخَالِقُ الْبَارِئُ الْمُصَوِّرُ لَهُ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى ؕ يُسَبِّحُ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ ۚ وَ هُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿۲۴﴾

वही ख़ुदा है जिसके सिवा कोई माबूद नहीं, वो पोशीदा और ज़ाहिर का जानने वाला है, वो बड़ा मेहरबान और निहायत रहम वाला है। वही ख़ुदा है जिसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं, वो हक़ीक़ी बादशाह है, पाक है, सलामती देता है, अमन देता है, निगहबान है, वही ज़बरदस्त है, दुरूस्त करने वाला है, बड़ाई वाला है, अल्लाह पाक है लोगों के शिर्क से। वो अल्लाह है, पैदा करता है, ईजाद करता है, सूरतें बनाता है, उसके अच्छे अच्छे नाम हैं (सब) उसकी पाकी बयान करते हैं जो भी आसमानों और ज़मीन में हैं, और वही ज़बरदस्त है (और) हिकमत वाला है। (59:22-24)

رَبَّنَا لَا تَجْعَلْنَا فِتْنَةً لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَ اغْفِرْ لَنَا رَبَّنَا ۚ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿۵﴾

ऐ हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ये हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ऐ हमारे रब! तू हमें माफ़ फ़रमा, बिला शुबह तू बड़ा ज़बरदस्त हिकमत वाला है। (60:5)

يُسَبِّحُ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَ مَا فِي الْاَرْضِ ۚ لَهُ الْمُلْكُ وَ لَهُ الْحَمْدُ ۫ وَ هُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ①

सब चीज़ें अल्लाह की पाकी बयान करती हैं जो कुछ आसमानों में हैं और ज़मीन में हैं, उसी के लिये सच्ची बादशाहत है और उसी के लिये (लामहदूद) तारीफ़ है, और वो हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (64:1)

فَقُلْتُ اسْتَغْفِرُوْا رَبَّكُمْ ؕ اِنَّهٗ كَانَ غَفَّارًا ⑩ يُّرْسِلِ السَّمَآءَ عَلَيْكُمْ مِّدْرَارًا ⑪ وَّ يُمْدِدْكُمْ بِاَمْوَالٍ وَّ بَنِيْنَ وَ يَجْعَلْ لَّكُمْ جَنّٰتٍ وَّ يَجْعَلْ لَّكُمْ اَنْهٰرًا ⑫

और कहा के अपने रब से माफ़ी मांगो के वो बड़ा माफ़ करने वाला है। वो तुम पर कसरत से बारिश बरसायेगा। और माल और बेटों से तुम्हारी मदद करेगा, और बाग़ात अता करेगा (उनमें) तुम्हारे लिये नहरें बहा देगा। (71:10-12)

وَ رَبَّكَ فَكَبِّرْ ۟ ③

और अपने रब की बड़ाई बयान करो। (74:3)

سَبِّحِ اسْمَ رَبِّكَ الْاَعْلَى ۙ① الَّذِيْ خَلَقَ فَسَوّٰى ۙ② وَ الَّذِيْ قَدَّرَ فَهَدٰى ۪③

ऐ नबी! अपने रब के नाम की पाकी बयान करते रहो, जो बहुत आलीशान है। जिसने (हर चीज़ को) बनाया फ़िर दुरूस्त किया। और जिसने तजवीज़ किया फ़िर राह बता दी। (87:1-3)

اِذَا جَآءَ نَصْرُ اللّٰهِ وَ الْفَتْحُ ۙ① وَ رَاَيْتَ النَّاسَ يَدْخُلُوْنَ فِيْ دِيْنِ اللّٰهِ اَفْوَاجًا ۙ② فَسَبِّحْ بِحَمْدِ رَبِّكَ وَ اسْتَغْفِرْهُ ؕ اِنَّهٗ كَانَ تَوَّابًا ۧ③

जब अल्लाह ने मदद की और फ़तह नसीब हुई। और तुमने देखा के लोग जूक़ दर जूक़ इस्लाम में दाख़िल हो रहे हैं। तो अपने रब की हम्दो सना के साथ तसबीह करते रहो और उससे मग़फ़िरत मांगों, बेशक वो माफ़ करने वाला है। (110:1-3)

इंसान को यह बात हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि वह केवल अल्लाह की एक मख़लूक़ (रचना) है, और इंसान के लिए यह सबसे बहतर बात है कि वह स्वंय को अल्लाह की रज़ामन्दी और रहनुमाई (प्रसन्नता व मार्गदर्शन) के आगे समर्पित कर दे और कभी भी अहंकार और घमण्ड में न पडे। यह एक ऐसी कल्पनात्मक और भावनात्मक स्थिति है जो हमेशा मन में बनी रहना चाहिए, और हर जगह व हर समय इंसान के व्यवहार व बर्ताव में दिखना चाहिए। इस

अध्यात्मिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक चेतना को अपने अन्दर विक्सित करने और बनाए रखने के लिए इंसान को ज़बान से अल्लाह की बन्दगी की भावना को व्यक्ति करते रहने और उसकी वन्दना व प्रशंसा करते रहने तथा उससे बख़्शिश मांगते रहने की ज़रूरत होती है।

नमाज़, दुआ, अल्लाह की याद और क़ुरआन की तिलावत (उच्चारण) करना इसका माध्यम हैं। नमाज की सभी क्रियाओं में यह दुआएं और ज़िक्र करने का मौक़ा बन्दे को मिलता है। अल्लाह के अलावा हर एक की खुदाई से इंकार (तहलील), अल्लाह की पाकी बयान करना (तस्बीह), उसकी बड़ाई व्यक्त करना (तकबीर) और उसकी प्रशंसा करना (हम्द) के बोल नमाज़ में पढ़े जाते हैं। इसके अलावा हर नमाज़ के बाद अलग से भी बन्दा ऐसे कलमे (बोल) पढ़ता रहता है जिनकी शिक्षा पैग़म्बर साहब ने दी है। अल्लाह के एक होने और उसके समस्त गुणों पर विश्वास और उन्हें मन मस्तिष्क में रखने के लिए अल्लाह के पाक नामों (असमा -ए-हुसना) का 'विर्द' (जाप) करते रहना भी एक अहम काम है। पैग़म्बर साहब की कुछ हदीसों में कुछ ख़ास समय या हालतों के लिए कुछ ख़ास कलमे और दुआएं भी सिखाई गयी हैं। जैसे नमाज़ के बाद कुछ ख़ास कलमे और दुआएं, हज के दौरान कुछ ख़ास कलमे और दुआएं। आपस में मुलाक़ात और बातचीत के बाद विदा होते समय के लिए भी दुआ सिखाई गयी है:"सुब्हानका अल्लाहुम्मा व बि हम्दिका अशहदु अल्ला इलाहा इल्ला अन्तःअस्तग़फ़िरुकःव अतूबु इलैकः" (अबुदाऊद, अलहाकिम)।

चूंकि मुकम्मल और परिपूर्ण हस्ती केवल अल्लाह की है, इंसान मुकम्मल नहीं है, और समय समय पर इंसान से भूलचूक और ग़लतियां होती रहती हैं इसलिए इसे बार बार अल्लाह से मआफ़ी और बख़्शिश मांगते रहना चाहिए। यदि कोई गम्भीर ग़लती (बड़ा गुनाह) हो जाए या कुछ समय तक इंसान लगातार ग़फ़लत और बेपरवाही में सीधे रस्ते से दूर रहे तो सही बात की तरफ़ वापस आना और अल्लाह से तौबा करना ज़रूरी है, लेकिन तौबा का यह काम जितनी जल्दी सम्भव हो कर लेना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि मौत का समय आ पहुंचे और तौबा का दरवाज़ा बन्द हो जाए। यदि दूसरे इंसानों के अधिकार की अवहेलना हुई हो तो तौबा के साथ साथ उस ग़लत बात की भरपाई करना चाहिए और जो हक़ छीना था उसको वापस करना ज़रूरी है। और अगर मान सम्मान को ठेस पहुंचाई हो तो उस ग़लती को मान कर उसके लिए मआफ़ी मांगी जाए।

क़ुरआन ने तौबा के सारे दरवाज़े खोले हैं और विश्वास दिलाया है कि अल्लाह की रहमत और कृपा की कोई हद नहीं है। और अल्लाह कोई भी गुनाह मआफ़ कर देता है और बुरे काम के बाद नेक काम करने से उस बुराई का गुनाह मिट जाता है। सच्ची तौबा का बदला भी अल्लाह के यहां असीमित है और इंसान की कल्पना से परे है:"जिसने तौबा की और ईमान लाया और अच्छे काम किए तो ऐसे लोगों के गुनाहों को अल्लाह नेकियों से बदल देगा और

अल्लाह तो बख़्शने वाला महरबान है।'' (25:70)। यहां तक कि किसी दोषी की गिरतारी से पहले अगर उसकी तौबा का और सुधर जाने का ठोस सुबूत मिल जाए तो उस पर से क़ानूनी सज़ा भी हटाई जा सकती है। (देखें 5:33-34)

इस्लाम के 'पैनल लॉ' का आम सिद्धांत यह है कि जहां तक हो सके जुर्माना और सज़ा के बजाए तौबा करने और आचरण सुधारने पर ज़ोर दिया जाए।

क़ुरआन की तिलावत

اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَ تَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ وَ اَنْتُمْ تَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ﴿۴۴﴾

क्या तुम दूसरों को तो नेकी का हुक्म करते रहते हो, और अपने आप को भूल जाते हो, जबके तुम किताबें इलाही पढ़ते रहते हो, क्या (तुम अपनी अक़्ल से) सोचते नहीं। (2:44)

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ ؕ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ؕ وَ مَنْ يَّكْفُرْ بِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿۱۲۱﴾

वो जिनको हमने किताब दी हमारी किताब ऐसा पढ़ते हैं जैसा के पढ़ने का हक़ है। यही लोग उस पर ईमान रखते हैं। और जो उसको नहीं मानते यही लोग ख़सारे में रहेंगे और नुक़सान उठायेंगे। (2:121)

اَفَلَا يَتَدَبَّرُوْنَ الْقُرْاٰنَ ؕ وَ لَوْ كَانَ مِنْ عِنْدِ غَيْرِ اللّٰهِ لَوَجَدُوْا فِيْهِ اخْتِلَافًا كَثِيْرًا ﴿۸۲﴾

क्या वो फ़िर क़ुरआन में ग़ौरो फ़िक्र नहीं करते, अगर ये अल्लाह के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो इसमें वो बकसरत तफ़ावुत पाते। (4:82)

وَ اِذَا قُرِئَ الْقُرْاٰنُ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ وَ اَنْصِتُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ﴿۲۰۴﴾

और जब क़ुरआन पढ़ा जाया करे तो कान लगा कर सुना करो और ख़ामोश रहा करो, ताके तुम पर रहमतें की जायें। (7:204)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ وَ لَا تَوَلَّوْا عَنْهُ وَ اَنْتُمْ تَسْمَعُوْنَ ﴿۲۰﴾ۚ وَ لَا

मोमिनों! अल्लाह का कहा मानो, और उसके रसूल का कहा मानो, और उसका कहा मानने से रूगर्दानी ना करो, और तुम सुन लेते ही हो। और तुम उनकी तरह ना

होना जो कहते तो हैं के हमने सुना हालांके सुनते सुनाते कुछ नहीं। (8:20-21)

تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ قَالُوْا سَمِعْنَا وَ هُمْ لَا يَسْمَعُوْنَ ﴿٢١﴾

और आप किसी हाल में हों या उन अहवाल में से आप किसी वक़्त कहीं से क़ुरआन पढ़ते हों, और जो भी तुम काम करते हो जब उसे में मसरूफ़ होते हो तो हमको उसकी ख़बर होती है, और तुम्हारे रब से ज़र्रा बराबर भी कोई चीज़ पोशीदा नहीं है ज़मीन में और ना आसमान में, और ना कोई चीज़ उससे छोटी और ना बड़ी, मगर वो किताबे रौशन में लिखी है। (10:61)

وَ مَا تَكُوْنُ فِيْ شَاْنٍ وَّ مَا تَتْلُوْا مِنْهُ مِنْ قُرْاٰنٍ وَّ لَا تَعْمَلُوْنَ مِنْ عَمَلٍ اِلَّا كُنَّا عَلَيْكُمْ شُهُوْدًا اِذْ تُفِيْضُوْنَ فِيْهِ ؕ وَ مَا يَعْزُبُ عَنْ رَّبِّكَ مِنْ مِّثْقَالِ ذَرَّةٍ فِي الْاَرْضِ وَ لَا فِي السَّمَآءِ وَ لَاۤ اَصْغَرَ مِنْ ذٰلِكَ وَ لَاۤ اَكْبَرَ اِلَّا فِيْ كِتٰبٍ مُّبِيْنٍ ﴿٦١﴾

और हमने आपको सात आयात अता कीं जो बार बार पढ़ी जाती हैं। (सूरेह फ़ातेहा) और अज़मत वाला क़ुरआन इनायत किया। (15:87)

وَ لَقَدْ اٰتَيْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَ الْقُرْاٰنَ الْعَظِيْمَ ﴿٨٧﴾

तो जब क़ुरआन पढ़ना चाहो तो अल्लाह की पनाह मांग लिया करो मर्दूद शैतान से। उसका कोई ज़ोर नहीं चलता उन लोगों पर जो ईमान रखते हैं और अपने रब पर भरोसा रखते हैं। उसका ज़ोर तो बस उन्हीं लोगों पर चलता है जो उसको अपना दोस्त बनाते हैं और अल्लाह के साथ शिर्क करते हैं। (16:98-100)

فَاِذَا قَرَاْتَ الْقُرْاٰنَ فَاسْتَعِذْ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ ﴿٩٨﴾ اِنَّهٗ لَيْسَ لَهٗ سُلْطٰنٌ عَلَى الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ عَلٰى رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُوْنَ ﴿٩٩﴾ اِنَّمَا سُلْطٰنُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يَتَوَلَّوْنَهٗ وَ الَّذِيْنَ هُمْ بِهٖ مُشْرِكُوْنَ ﴿١٠٠﴾

और जब तुम क़ुरआन पढ़ते हो तो हम तुम में और उन लोगों में जो आख़िरत पर ईमान नहीं रखते हैं, हिजाब हायल कर देते हैं। और हमने उनके दिलों पर एक पर्दा डाल रखा है के इसको ना समझें, और उनके कानों में डाट दे दिये हैं, और जब तुम क़ुरआन में सिर्फ़ अपने रब का ज़िक्र करते हो तो वो लोग नफ़रत करते हुए पीठ फ़ेर कर चल देते हैं। (17:45-46)

وَ اِذَا قَرَاْتَ الْقُرْاٰنَ جَعَلْنَا بَيْنَكَ وَ بَيْنَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ حِجَابًا مَّسْتُوْرًا ۙ﴿٤٥﴾ وَّ جَعَلْنَا عَلٰى قُلُوْبِهِمْ اَكِنَّةً اَنْ يَّفْقَهُوْهُ وَ فِيْۤ اٰذَانِهِمْ وَقْرًا ؕ وَ اِذَا ذَكَرْتَ رَبَّكَ فِي الْقُرْاٰنِ وَحْدَهٗ وَلَّوْا عَلٰۤى اَدْبَارِهِمْ نُفُوْرًا ﴿٤٦﴾

اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِدُلُوْكِ الشَّمْسِ اِلٰى غَسَقِ الَّيْلِ وَ قُرْاٰنَ الْفَجْرِ ؕ اِنَّ قُرْاٰنَ الْفَجْرِ كَانَ مَشْهُوْدًا ﴿۷۸﴾

(ऐ नबी) आप सूरज के ढलने से रात के अंधेरे तक नमाज़ें पढ़ा कीजिये क्योंके क़ुरआन का पढ़ना सुबह के वक़्त हुज़ूरे मलायका का वक़्त है। (17:78)

قُلْ لَّئِنِ اجْتَمَعَتِ الْاِنْسُ وَ الْجِنُّ عَلٰۤى اَنْ يَّاْتُوْا بِمِثْلِ هٰذَا الْقُرْاٰنِ لَا يَاْتُوْنَ بِمِثْلِهٖ وَ لَوْ كَانَ بَعْضُهُمْ لِبَعْضٍ ظَهِيْرًا ﴿۸۸﴾

आप कह दीजिये अगर तमाम इन्सान और जिन्नात इस बात के लिये जमा हो जायें के ऐसा क़ुरआन बना लावें तो भी ऐसा ना ला सकेंगे, और अगरचे वो सब एक दूसरे के मददगार भी बन जायें। (17:88)

وَ اتْلُ مَاۤ اُوْحِيَ اِلَيْكَ مِنْ كِتَابِ رَبِّكَ ۚ لَا مُبَدِّلَ لِكَلِمٰتِهٖ ۚ وَ لَنْ تَجِدَ مِنْ دُوْنِهٖ مُلْتَحَدًا ﴿۲۷﴾

और आप पढ़ दिया करें (लोगों के सामने) जो भी आपको अपने रब की किताब में से वही हुआ करे, इसकी बातों को कोई बदल नहीं सकता, और आप अल्लाह के सिवा कोई और पनाह गाह ना पायेंगे। (18:27)

وَ لَقَدْ صَرَّفْنَا فِيْ هٰذَا الْقُرْاٰنِ لِلنَّاسِ مِنْ كُلِّ مَثَلٍ ؕ وَ كَانَ الْاِنْسَانُ اَكْثَرَ شَيْءٍ جَدَلًا ﴿۵۴﴾

और हमने इस क़ुरआन में लोगों की हिदायत के लिये बहुत सी मिसालें तरह तरह से बयान की हैं, और ये इन्सान सब से बढ़ कर झगड़ालू है। (18:54)

اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ مِنْ ذُرِّيَّةِ اٰدَمَ ۗ وَ مِمَّنْ حَمَلْنَا مَعَ نُوْحٍ ۗ وَّ مِنْ ذُرِّيَّةِ اِبْرٰهِيْمَ وَ اِسْرَآءِيْلَ ۗ وَ مِمَّنْ هَدَيْنَا وَ اجْتَبَيْنَا ؕ اِذَا تُتْلٰى عَلَيْهِمْ اٰيٰتُ الرَّحْمٰنِ خَرُّوْا سُجَّدًا وَّ بُكِيًّا ﴿۵۸﴾

ये वो लोग हैं मिनजुमला अम्बिया में से जिनको अल्लाह ने औलादें आदम में से अपनी ख़ास इनायत से नवाज़ा, और उन लोगों की नस्ल से जिनको हमने नूह (अ.स.) के हमराह कश्ती में सवार किया, और इब्राहीम (अ.स.) और याक़ूब (अ.स.) की औलाद में से और उन लोगों में से जिनको हमने हिदायत दी और बरगज़ीदा बनाया, जब उनके सामने रहमान की आयात पढ़ कर सुनाई जाती थीं तो वो सज्दा में गिर पड़ते थे, और रोया करते थे। (19:58)

وَ كَذٰلِكَ اَنْزَلْنٰهُ قُرْاٰنًا عَرَبِيًّا وَّ صَرَّفْنَا فِيْهِ مِنَ الْوَعِيْدِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ اَوْ يُحْدِثُ لَهُمْ ذِكْرًا ﴿۱۱۳﴾

और इसी तरह हमने क़ुरआन को अरबी ज़बान में उतारा, और इसमें हर क़िस्म के डरावे बयान कर दिये, ताके लोग परहेज़गार बनें, या खुदा उनके लिये नसीहत पैदा कर दे। (20:113)

اِنَّمَاۤ اُمِرْتُ اَنْ اَعْبُدَ رَبَّ هٰذِهِ الْبَلْدَةِ الَّذِيْ حَرَّمَهَا وَ لَهٗ كُلُّ شَيْءٍ ۫ وَّ اُمِرْتُ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ ﴿۹۱﴾ وَ اَنْ اَتْلُوَا الْقُرْاٰنَ ۚ فَمَنِ اهْتَدٰى فَاِنَّمَا يَهْتَدِيْ لِنَفْسِهٖ ۚ وَ مَنْ ضَلَّ فَقُلْ اِنَّمَاۤ اَنَا مِنَ الْمُنْذِرِيْنَ ﴿۹۲﴾

(आप कह दें के) मुझे तो यही हुक्म है के हम शहर (मक्का) के मालिक की इबादत किया करूं जिसने इसको क़ाबिले एहतराम बनाया है और तमाम चीज़ें उसी की हैं, और मुझे यही हुक्म है के मैं फ़रमांबर्दार रहूँ। और ये के क़ुरआन पढ़ता रहूँ तो जो सीधी राह इख़्तियार करेगा वो अपने ही फ़ायदे के लिये करेगा, और गुमराह रहेगा तो कह दीजिये के मैं तो सिर्फ़ डराने वाला हूँ। (27:91-92)

اُتْلُ مَاۤ اُوْحِيَ اِلَيْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَ اَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ اِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ ؕ وَ لَذِكْرُ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ وَ اللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ ﴿۴۵﴾

(ऐ नबी) आप इस किताब को पढ़ा कीजिये, जो आप पर वही की गई है, और नमाज़ की पाबंदी कीजिये, यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है, और अल्लाह का ज़िक्र बहुत बड़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29:45)

وَ قَالُوْا لَوْ لَاۤ اُنْزِلَ عَلَيْهِ اٰيٰتٌ مِّنْ رَّبِّهٖ ؕ قُلْ اِنَّمَا الْاٰيٰتُ عِنْدَ اللّٰهِ ؕ وَ اِنَّمَاۤ اَنَا نَذِيْرٌ مُّبِيْنٌ ﴿۵۰﴾ اَوَ لَمْ يَكْفِهِمْ اَنَّاۤ اَنْزَلْنَا عَلَيْكَ الْكِتٰبَ يُتْلٰى عَلَيْهِمْ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَرَحْمَةً وَّ ذِكْرٰى لِقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ﴿۵۱﴾

और काफ़िर कहा करते हैं के उस पर उसके रब की तरफ़ से निशानियां क्यों नाज़िल नहीं हुईं, आप फ़रमा दीजिये के निशानियां तो अल्लाह ही के पास हैं और मैं तो सिर्फ़ खुल्लम खुल्ला डराने वाला हूँ। क्या उनके लिये ये काफ़ी नहीं है के हमने आप पर किताब नाज़िल की है, जो उनको सुनाई जाती है कुछ शक नहीं के मोमिनीन के लिये इसमें रहमत और नसीहत है। (29:50-51)

وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِيْ لَهٗ ؕ اِنْ هُوَ اِلَّا ذِكْرٌ وَّقُرْاٰنٌ مُّبِيْنٌ ﴿۶۹﴾

और हमने रसूल को शेअर कहना नहीं सिखाया, और ना ये उनकी शान के मवाफ़िक़ है, ये तो महज़ नसीहत है और साफ़ साफ़ क़ुरआन है। (36:69)

وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَا تَسْمَعُوْا لِهٰذَا الْقُرْاٰنِ وَالْغَوْا فِيْهِ لَعَلَّكُمْ تَغْلِبُوْنَ ﴿۲۶﴾

और उन काफ़िरों ने कहा के तुम इस क़ुआन को सुना ही ना करो, और इसके पढ़ने के दौरान शोरो ग़ुल मचा दिया करो, शायद तुम ही ग़ालिब रहो। (41:26)

اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِالذِّكْرِ لَمَّا جَآءَهُمْ ۚ وَاِنَّهٗ لَكِتٰبٌ عَزِيْزٌ ﴿۴۱﴾ لَّا يَاْتِيْهِ الْبَاطِلُ مِنْۢ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهٖ ؕ تَنْزِيْلٌ مِّنْ حَكِيْمٍ حَمِيْدٍ ﴿۴۲﴾

जिन लोगों ने इस क़ुरआन को ना माना जब वो उनके पास आया, और ये बड़ी ज़बरदस्त किताब है। जिस में बातिल ना आगे की तरफ़ आ सकता है और ना पीछे की तरफ़ से ये हकीम सतूदा सिफ़ात की तरफ़ से नाज़िल किया गया है। (41:41-42)

وَلَوْ جَعَلْنٰهُ قُرْاٰنًا اَعْجَمِيًّا لَّقَالُوْا لَوْلَا فُصِّلَتْ اٰيٰتُهٗ ؕ ءَاَعْجَمِيٌّ وَّعَرَبِيٌّ ؕ قُلْ هُوَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا هُدًى وَّشِفَآءٌ ؕ وَالَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ فِيْٓ اٰذَانِهِمْ وَقْرٌ وَّهُوَ عَلَيْهِمْ عَمًى ؕ اُولٰٓئِكَ يُنَادَوْنَ مِنْ مَّكَانٍۢ بَعِيْدٍ ﴿۴۴﴾

और अगर हम इस क़ुरआन को अरबी के अलावा किसी दूसरी ज़बान में उतारते तो ये कहते के इसकी आयात साफ़ साफ़ क्यों नहीं हैं, ये क्या वजह है के किताब तो ग़ैर अरबी है, और रसूल अरबी है, आप फ़रमा दीजिये के ये क़ुरआन ईमान वालों के लिये रास्ता दिखाने वाला, और शिफ़ा देने वाला है, और जो लोग ईमान नहीं लाते उनके कानों में डाट है, और उनके हक़ में ये क़ुरआन नाबीनाई है ये लोग बहुत दूर जगह से पुकारते जाते हैं। (41:44)

اَفَلَا يَتَدَبَّرُوْنَ الْقُرْاٰنَ اَمْ عَلٰى قُلُوْبٍ اَقْفَالُهَا ﴿۲۴﴾

क्या ये लोग क़ुरआन में ग़ौर नहीं करते या (उनके) दिलों में ताले पड़े हैं। (47:24)

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ ﴿۱۷﴾

और हमने क़ुरआन को नसीहत हासिल करने के लिये आसान कर दिया है, तो कोई है नसीहत हासिल करने वाला। (54:17)

إِنَّ رَبَّكَ يَعْلَمُ أَنَّكَ تَقُومُ أَدْنَىٰ مِن ثُلُثَيِ
اللَّيْلِ وَ نِصْفَهُ وَ ثُلُثَهُ وَ طَآئِفَةٌ مِّنَ
الَّذِينَ مَعَكَ ۚ وَاللَّهُ يُقَدِّرُ اللَّيْلَ وَ النَّهَارَ ۚ
عَلِمَ أَن لَّن تُحْصُوهُ فَتَابَ عَلَيْكُمْ فَاقْرَءُوا
مَا تَيَسَّرَ مِنَ الْقُرْآنِ ۚ عَلِمَ أَن سَيَكُونُ
مِنكُم مَّرْضَىٰ ۙ وَ آخَرُونَ يَضْرِبُونَ فِي
الْأَرْضِ يَبْتَغُونَ مِن فَضْلِ اللَّهِ ۙ وَ آخَرُونَ
يُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ۖ فَاقْرَءُوا مَا تَيَسَّرَ
مِنْهُ ۙ وَ أَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَ آتُوا الزَّكَاةَ وَ
أَقْرِضُوا اللَّهَ قَرْضًا حَسَنًا ۚ وَ مَا تُقَدِّمُوا
لِأَنفُسِكُم مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوهُ عِندَ اللَّهِ هُوَ
خَيْرًا وَ أَعْظَمَ أَجْرًا ۚ وَ اسْتَغْفِرُوا اللَّهَ ۚ إِنَّ
اللَّهَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ﴿٢٠﴾

बेशक तुम्हारा रब ख़ूब जानता है के तुम और तुम्हारे साथ के लोग (कभी तो) दो तिहाई रात के क़रीब और (कभी) आधी रात, और (कभी) एक तिहाई रात क़याम करते हैं, और अल्लाह तो रात और दिन का अंदाज़ा रखता है, उसने मालूम कर लिया के तुम उसको निबाह ना सकोगे, तो उसने तुम पर मेहरबानी की, पस जितना आसानी से हो सके उतना क़ुरआन पढ़ लिया करो, उसने जान लिया के बाज़ तुम में बीमार हैं, और बाज़ मआश की तलाश में मुल्क में सफ़र करते हैं और बाज़ अल्लाह की राह में लड़ते हैं तो जितना आसानी से हो सके उतना पढ़ लिया करो और नमाज़ की पाबंदी रखो, और ज़कात अदा करते रहो, और अल्लाह को क़र्ज़े हसना देते रहो, और जो नेक अमल तुम अपने लिये आगे भेज दोगे तो उसके सिले में अल्लाह के हां बेहतर और बुज़ुर्ग तर सिला पाओगे, और अल्लाह से बख़्शिश मांगते रहो, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला रहम वाला है। (73:20)

إِنَّ عَلَيْنَا جَمْعَهُ وَ قُرْآنَهُ ﴿١٧﴾ فَإِذَا قَرَأْنَاهُ
فَاتَّبِعْ قُرْآنَهُ ﴿١٨﴾ ثُمَّ إِنَّ عَلَيْنَا بَيَانَهُ ﴿١٩﴾

इसका जमा करना और पढ़ाना मेरे ज़िम्मे है। जब हम पढ़ा करें तो तुम इसको सुना करो और फ़िर उसी तरह पढ़ा करो। फ़िर इस (के मआनी) का बयान करना (भी) हमारे ज़िम्मे है। (75:17-19)

فَمَا لَهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ﴿٢٠﴾ وَ إِذَا قُرِئَ
عَلَيْهِمُ الْقُرْآنُ لَا يَسْجُدُونَ ﴿٢١﴾

तो उन लोगों को क्या हो गया है के ईमान नहीं लाते। और जब उनके सामने क़ुरआन पढ़ा जाता है तो सज्दा नहीं करते। (84:20-21)

اقْرَأْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِي خَلَقَ ﴿١﴾ خَلَقَ
الْإِنسَانَ مِنْ عَلَقٍ ﴿٢﴾ اقْرَأْ وَ رَبُّكَ

(ऐ मोहम्मद (स.अ.स.) अपने रब का नाम लेकर पढ़ो जिसने आलम को पैदा किया। जिसने इन्सान को ख़ून की फुटकी से बनाया। पढ़ो और तुम्हारा रब बड़ा करी

الْأَكْرَمُ ۝٣ الَّذِي عَلَّمَ بِالْقَلَمِ ۝٤ عَلَّمَ الْإِنسَانَ مَا لَمْ يَعْلَمْ ۝٥

है। जिसने क़लम (के ज़रिये) से लिखना सिखाया। इन्सान को वो बातें सिखाईं जो वो नहीं जानता था।
(96:1-5)

क़ुरआन अपनी विशेष संरचना, शैली और विशेष धुन के साथ अल्लाह की हिदायत (मार्गदर्शन) है जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर उतरी जिन्हें अल्लाह ने इस कलाम को बन्दों तक पहुंचाने की ज़िम्मेदारी दी थी। क़ुर्आन क्रमवार उतरा और जैसे जैसे क़ुरआन उतरता गया अल्लाह के पैग़म्बर उसे बन्दों को सुनाते और समझाते रहे। यह कोई पद्य रचना नहीं है, लेकिन यह कोई सादा सी गद्य पुस्तक भी नहीं है। इसके शब्दों व उच्चारण में एक गीत जैसी धुन है जो पढ़ने वाले को भी ख़ुश करती है और सुनने वाले को भी मगन कर देती हे और इसी विशेषता की वजह से इसका पढ़ना, इसका सुनना और इसका याद करना बहुत सुखदायक और सरल होता है। क़ुरआन का पढ़ना और सुनना मुसलमानों के लिए एक इबादत का काम है।

दिन भर की पांच समय की नमाज़ों में क़ुरआन की तिलावत करना ज़रुरी है, लेकिन यह सिखाया गया है कि क़ुरआन को पढ़ना या सुनना जहां तक आसान हो वहीं तक इसे पढ़ना या सुनना चाहिए। मतलब यह कि जब तक मन लगे, मज़ा आए, ध्यान लगा रहे और सुकून व संतुष्टि मिलती रहे तब तक पढ़े या सुने और जब तबियत उचाट होने लगे तो रुक जाए। क़ुरआन पढ़ने वाले के लिए ज़रूरी है कि शुरू करते समय शैतान से बचने के लिए अल्लाह की शरण ले क्योंकि शैतान अपना काम करने से कभी नहीं चूकता और जो मिशन उसने अपने ऊपर लिया है उसे पूरा करने में हर समय लगा रहता है। क़ुरआन पढ़ने वाला अपने मुस्तक़िल दुशमन की दुशमनी को दिमाग़ में रखता है और उसके कचूकों व उक्साहट से अल्लाह की पनाह मांगता है ताकि कुरआन से हिदायत लेते हुए वह ग़लतियों और ख़ताओं से बचा रहे। जो व्यक्ति इबादत की नियत से क़ुरआन की तिलावत करता है उसे एकान्त में एकसूई के साथ कुरआन की तिलावत करना चाहिए और सुनने वाला जब क़ुरआन की तिलावत सुने तो उसकी तरफ़ पूरी तरह कान व ध्यान लगाए और पूरे सम्मान व आदर के साथ उसे सुने। क़ुरआन पढ़ने और सुनने वाले दोनों को क़ुरआन के मतलब और पैग़ाम पर ध्यान देना चाहिए, केवल पढ़ने के ढंग और पढ़ने की कला को ही सब कुछ नहीं समझना चाहिए। क़ुरआन पढ़ने और सुनने वाले के लिए कुछ ख़ास आयतों पर सजदा करना लाज़िम हो जाता है। हालांकि जो कोई कुरआन को पूरे ध्यान से पढ़ता या सुनता है और उसके पैग़ाम को समझता चला जाता है वह अपने आंसुओं को रोक ही नहीं पाता।

क़ुरआन का यह चमत्कार अपने आप में हीं हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के

पैग़ाम की सच्चाई का सुबूत है कि यह ऐसी किताब है जो हर जगह और हर ज़माने में इंसान के मन मस्तिष्क को सम्बोधित करती है। यह अपने आप में ही एक चमत्कार है और इस चमत्कार के सामने पैग़म्बर साहब को किसी और चमत्कार की ज़रूरत नहीं थी, जो अप्राकृतिक और अलौकिक ढंग से सामने आए और इंसान को क्षणिक रूप से अचम्भित कर दे और केवल उन्ही लोगों को दिखाई दे जो उस समय मौजूद हों। क़ुरआन का पढ़ना और सुनना दोनों इबादत के काम हैं और सीख व सुधार का माध्यम हैं। क़ुरआन में अक़ीदा (आस्था), इबादत, नैतिक मूल्यों और नियमों को एक जगह जमा कर दिया गया है कि यह सारी शिक्षाएं एक दूसरे के साथ मिली जुली रहते हुए क़ुरआन में एक साथ मौजूद हैं और उनमें एक कल्पनात्मक व ध्वनात्मक सामंजस्य है। क़ुरआन में बार बार बयान होने वाले किस्सों से इंसान को रूहानी और सामाजिक इतिहास की जानकारी होती है। आदम व हव्वा का जिज्ञासा में आकर वर्जित पेड़ को छू लेना और फिर उसके नतीजे में जन्नत से निकल कर ज़मीन के सीमित जीवन में आना, फिर उनके बीच शरीरिक सम्बंध और संतान की पैदाइश का सिलसिला। घमण्ड़ी शैतान का आदम की संतानों को भटकाना, हज़रत आदम के दो बेटों के बीच अपनी नज़र (चढ़ावे) के कुबूल होने के लिए झगड़ा और इंसानी इतिहास की सबसे पहली हत्या, हज़रत नूह से लेकर हज़रत इब्राहीम, इस्माईल, इस्हाक, याकूब और याकूब की औलाद में अल्लाह के पैग़म्बरों का सिलसिला और दूसरी तरफ़ हज़रत हूद, हज़रत स्वॉलेह और हज़रत शुऐब का क्रमवार 'आद' व 'समूद' और 'मदयन' समुदायों में पैग़म्बर होना, ये सब प्राचीन काल में इंसानी इतिहास के मील का पत्थर हैं जो इंसान के अध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का हाल बयान करते हैं। बाद के युग में हज़रत मूसा से लेकर हज़रत ईसा तक और फिर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की पैग़म्बरी के दौर आते हैं। आज की दुनिया में यहूदियत, ईसाइयत और इस्लाम के संदर्भ में हज़रत मूसा व ईसा और हज़रत मुहम्मद सल्ल० हमें आख़री युग के और वर्तमान से बिल्कुल लगे हुए ज़माने के पैग़म्बर होने का अहसास दिलाते हैं।

इन तीनों इब्राहीमी धर्मों का आधार समान होने के बावजूद उनके बीच अन्तर और उनके अलग अलग अक़ीदे व तौर तरीके उन्हें एक दूसरे से अलग अलग करते हैं। क़ुरआन का बयान है:"तो हम ने यहूदियों के बुरे करतूतों की वजह से (बहुत सी) पवित्र चीज़ें जो उनके लिए हलाल थीं उन पर हराम कर दीं और इस वजह से भी कि वो अक्सर अल्लाह के रास्ते से लोगों को रोकते थे" (4:160), "और (मैं ईसा) उस तौरात को सच्चा बताता हूं जो मुझ से पहले (अवतरित हुई) थी और (मैं) इसलिए भी (आया हूं) कि कुछ चीज़ें जो तुम पर हराम थीं, उनको तुम्हारे लिए हलाल कर दूं और मैं तो तुम्हारे पालनहार की तरफ़ से निशानी लेकर आया हूं" (3:50), "वह (हज़रत मुहम्मद सल्ल०) उन्हें नेक काम का हुक्म देते हैं और बुरे काम से रोकते हैं और पाक चीजों को उनके लिए हलाल करते हैं और नापाक चीजों को उन पर हराम ठहराते

हें और उन पर से बोझ और तौक़ (कण्ठ) जो उन (के सर) पर (और गले में) थे उतारते है।'' (7:157)

इसके अतरिक्त, क़ुरआन का पढ़ने वाला यह देखता है कि हज़रत नूह, हज़रत स्वॉलेह, हज़रत लूत और हज़रत शुऐब अपने परिवार या क़बीले में अलग थलग पड़ गए और जब क़ौम ने उनकी दावत को ठुकरा दिया और उन्हें बस्ती से निकाल देने की धमकियां दीं तो उन्होंने अपनी कौम को इस दुनिया के जीवन में तुरन्त अज़ाब से खबरदार किया और अल्लाह से उन्हें सजा देने की गुहार लगाई:''उन्होंने कहा कि नूह अगर तुम बाज न आओगे तो संगसार (पत्थर मार मार कर हिलाक) कर दिए जाओगे। नूह ने कहा कि ऐ अल्लाह मेरी कौम ने तो मुझे झुटला दिया इसलिए तूम मेरे और इनके बीच एक खुला फैसला कर दे और मुझ तथा जो मेरे साथ हैं उनको बचा ले। बस हमने उनको और जो उनके साथ कशती में सवार थे उनको बचा लिया, फिर उसके बाद बाकी लोगों को डुबो दिया।'' (26:11-120)। ''उनसे पहले नूह की क़ौम ने भी झुटलाया था तो उन्होंने हमारे बन्दे को झुटलाया और कहा कि दीवाना है और उन्हें डांटा भी तो उन्होंने अपने पालनहार से दुआ की कि (अल्लाह) मैं (इनके मुक़ाबले) कमज़ोर हूं, बस आप (इनसे) बदला लीजिए तो फिर हमने ज़ोर की बारिश से आसमान के दहाने खोल दिए, और ज़मीन में झरने जारी कर दिए तो पानी एक काम के लिए जो कि तय हो चुका जमा हो गया। और हमने नूह को एक कशती पर जो पठलों और कीलों से तैयार की गयी थी सवार कर लिया (54:9-13), ''और नूह की तरफ वह्यि (आसमानी संदेश) भेजी गयी कि तुम्हारी क़ौम में जो लोग ईमान ला चुके उनको छोड़ कर अब और कोई ईमान नहीं लाएगा तो ये जो काम कर रहे हैं उनकी वजह से ग़म न करो, और एक कशती हमारे हुक्म से हमारे सामने बनाओ और जो लोग ज़ालिम हैं उनके बारे में हम से कुछ न कहना क्योंकि वो निश्चत रूप से डुबो दिये जाएंगे।'' (11:36-37)

''और जब हमारा हुक्म (अजाब) आ गया तो हमने हूद को और जो लोग उनके साथ ईमान लाए थे उनको अपनी महरबानी से बचा लिया और उन्हें कड़ी यातना से बचा लिया'' (11:58), ''जब हमारा हुक्म आ गया तो हमने स्वालेह को और जो लोग उनके साथ ईमान लाए थे उनको अपनी महरबानी से बचा लिया और उस दिन कि जिल्लत से (बचा लिया), बेशक तुम्हारा रब ताकत वाला और जबरदस्त है'' (11:66)। ''तो जब हमारा हुक्म आया हमने उस (बस्ती) को (उलट कर) नीचे ऊपर कर दिया और उन पर तले ऊपर पत्थर के कंकड गिराए'' (11:82), ''और जब हमारा हुक्म आ पहुंचा तो हमने शुऐब को और जो लोग उनके साथ ईमान लाए थे उनको अपनी रहमत से बचा लिया और जो जालिम थे उनको चिंघाड ने आ दबोचा तो वो अपने घरों में उलटे पडे रह गए'' (11:94), ''तो हमने सब को उनके गुनाहों की वजह से पकडा उनमें कुछ तो ऐसे थे जिन पर हमने पत्थरों की बारिश की और कुछ ऐसे थे

जिनको चिंघाड ने आ पकडा और कुछ ऐसे थे जिनको हमने जमीन में धंसा दिया और कुछ ऐसे थे जिनको डुबो दिया और अल्लाह ऐसा न था कि उन पर जुल्म करता लेकिन वही अपने आपर पर ज़ुल्म करने वाले थे''(29:40)।

इन कुकर्मी कौमों को जिस तरह तुरन्त रूप से अल्लाह की तरफ़ से सज़ा दी गयी उसके मुक़ाबले अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद सल्ल० से क़ौम को अजाब दिए जाने के सम्बंध में जो कुछ कहा वह इससे अलग है:''लेकिन अगर हम तुम को (मृत्यू देकर) उठा लें तो इन लोगों से हम बदला ले कर रहेंगे, या (तुम्हारे जीवन में ही) तुम्हें वह (अजाब) दिखा दें जिनका हमने इनसे वायदा किया है, निश्चित रूप से हम इन पर नियंत्रण रखते हैं। बस तुम्हारी तरफ़ जो वह्यि (संदेश) भेजी गयी है उसको मजबूती से पकड़े रहो, बेशक तुम सीधे रास्ते पर हो और यह (क़ुरआन) तुम्हारे लिए और तुम्हारी कौम के लिए नसीहत (सीख) है, और (लोगो) तुमसे जल्दी ही पूछगछ होगी'' (43:41-44)। क़ुरआन इस बात पर ज़ोर देता है कि मक्का के लोगों के ज़ुल्म व सितम और इंकार की वजह से क़ुरआन का पैग़ाम उतरनस रूक नही जाएगा और न इस पैग़ाम के पूरा होने से पहले पैग़म्बर की मृत्यू होगी कि क़ुरआन का सिलसिला रुक जाए, न क़ुरआन निश्चित रूप से यह वायदा करता है कि झुटलाने वालों पर तुरन्त अज़ाब आएगा। क़ुरआन ने उन लोगों के लिए दूसरे विकल्प खुले रखे हैं और पैग़म्बर व मोमिनों को यह बताता है कि यह एक खुला पैग़ाम है और आने वाली पीढ़ियों को भी इस पैग़ाम को समझने और मानने का ज़िम्मेदार बनाया गया है। यह किसी बन्द और एक अलग थलग समाज के लिए नहीं है, बल्कि यह सभी युगों और सभी जगहों के लोगों के लिए खुला हुआ है, और उस पर सबसे पहले ईमान लाने वाले लोग इस पैग़ाम की शुरूआत में ही इसे मानने का श्रेय रखते हैं।

इसी तरह यह पैग़ाम और इस पर ईमान लाने वाले लोग मूल रूप से प्राकृतिक नियमों से बंधे हैं और बुराई व ज़ुल्म के मुक़ाबले नेकी और इंसाफ पर चलने के लिए अपनी कोशिशों पर भरोसा करते हैं। ''और तुम को क्या हुआ कि अल्लाह के रास्ते में उन बेबस मर्दों, औरतों और बच्चों के लिए नहीं लड़ते जो दुआएं करते हैं कि ऐ अल्लाह, हमें इस शहर से जिसके रहने वाले ज़ालिम हैं निकाल कर कहीं और ले जा और अपनी तरफ़ से किसी को हमारा समर्थक बना दे और अपनी ही तरफ़ से किसी को हमारा मददगार बना दे'' (4:75) (''जो लोग अपनी जानों पर ज़ुल्म करते हैं जब फरिशते उनकी जान निकालते हैं तो उनसे पूछते हैं कि तुम किस हाल में थे, वो कहते हैं कि हम देश में लाचार और कमज़ोर थे। फ़रिशते कहते हैं कि क्या अल्लाह की ज़मीन विशाल नहीं थी कि तुम वहां पलायन कर जाते''! (4:97) (और काफ़िरों (इंकारियों) का पीछा करने में सुस्ती न करना, अगर तुम बे आराम होते हो तो जिस तरह तुम बे आराम होते हो उसी तरह वो भी बे आराम होते हैं और तुम अल्लाह से ऐसी ऐसी उम्मीदें रखते हो जो वो नहीं रख सकते (4:104) (''अगर तुम्हें (हार) की चोट लगी है तो उन लोगों

को भी ऐसी चोट लग चुकी हे। यह तो दिनों का उलट फेर है जिन्हें हम लोगों के बीच अदलते बदलते रहते हैं। तुम पर यह वक्त इसलिए लाया गया कि अल्लाह देखना चाहता था कि तुम में सच्चे ईमान वाले कौन हैं और उन लोगों को छांट लेना चाहता था जो वास्तव में (सच्चाई के) गवाह हैं क्योंकि अल्लाह ज़ालिमों को पसन्द नहीं करता। और यह भी मक़सद था कि अल्लाह ईमान वालों को शुद्ध (मोमिन) बना दे और काफ़िरों को विलुप्त कर दे। क्या तुम यह समझते हो कि (बे परखे) जन्नत में जाओगे हालांकि अभी अल्लाह ने तुम में से जिहाद करने वालों और जमे रहने वालों को तो अच्छी तरह पता किया ही नहीं'' (3:140-142)।

इंसान के मन में एक अल्लाह पर और उसके न्याय व आखिरत में मिलने वाले बदले व सज़ा पर ईमान को गहरा करते हुए क़ुरआन इंसान और इस दुनिया के जीवन के बीच सम्बंधा को उजागर करता है और दुनिया में अल्लाह के जो स्थाई निमय हैं जिनसे हर एक इंसान बंधा हुआ है चाहे उसकी आस्था और धर्म कुछ भी हो (11:15; 17:18-20), उनके हवाले देता है, और इस हवाले से हर तरह की ग़लत फ़हमी और विरोधभास को दूर करता है:''अगर अल्लाह चाहता तो इन (सत्य को झुटलाने वालों और मोमिनों को सताने वालों) से (ख़ुद) निपट लेता लेकिन अल्लाह ने चाहा कि तुम्हारी परख एक (को) दूसरे से (लड़वाकर) करे'' (47:4)।

हक़ व सच्चाई के लिए इंसान की लगातार और सच्ची कोशिशों में और अल्लाह की तरफ़ से उसके मार्गदर्शन में क़ुरआन एक सच्चा दोस्त और वास्तविक माध्यम है। क़ुरआन को पढ़ने वालों और इसे सुनने वालों के लिए इसके पढ़ने व सुनने में सवाब और शिक्षा व सीख दोनों निहित हैं।

अल्लाह के लिए नज़र मानना (प्रतिज्ञा करना)

وَ مَاۤ اَنۡفَقۡتُمۡ مِّنۡ نَّفَقَةٍ اَوۡ نَذَرۡتُمۡ مِّنۡ نَّذۡرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ يَعۡلَمُهٗ ؕ وَ مَا لِلظّٰلِمِيۡنَ مِنۡ اَنۡصَارٍ ۝

और जो तुम अल्लाह की राह में ख़र्च करो या कोई मन्नत मानो तो अल्लाह उसको ख़ूब जानता है। और ज़ालिमों का कोई मदद करने वाला न हो (2:270)

يُوۡفُوۡنَ بِالنَّذۡرِ وَ يَخَافُوۡنَ يَوۡمًا كَانَ شَرُّهٗ مُسۡتَطِيۡرًا ۝

ये लोग नज़रें पूरी करते हैं और उस दिन से ख़ौफ़ खाते हैं जिसकी सख़्ती फ़ैल रही होगी। (76:7)

ईमान वाले लोग अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए ख़ुद अपनी तरफ़ से नेकी का कोई काम करने का इरादा (प्रतिज्ञा) भी कर सकते हैं जिसे ''नज़र करना'' या ''नज़र मानना''

कहते है, और यह नियत केवल अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भी हो सकती है और अपनी किसी ख़ास ज़रूरत के लिए अल्लाह से मदद मांगने के लिए भी हो सकती है। किसी फ़ायदे को हासिल करने के लिए या किसी बुराई, बीमारी या खतरे से बचने के लिए नज़र पहले से मानी जाती है। नज़र या मिन्नत मानने का यह सिलसिला इस्लाम के पहले से चला आ रहा है:"(वह समय याद करो) जब इमरान की पत्नि ने कहा कि ऐ रब जो (बच्चा) मेरे पेट में है मैं उसको तेरी नज़र करती हूं, उसे दुनिया के कामों से आज़ाद रखूंगी, आप (उसे) मेरी तरफ़ से कुबूल करें, आप तो सुनने वाले (और) जानने वाले हैं" (3:35), "और (ऐ मरियम!) अगर तुम किसी आदमी को देखो तो कहना कि मैं ने अल्लाह के लिए रोज़े की मिन्नत मानी हे तो आज में किसी आदमी से हरगिज़ बात न करूंगी"(19:26)। अरब के मुशरिक लोग (बहुदेववादी) भी इस्लाम के आने से पहले नज़रें माना करते थे:"और (ये लोग) अल्लाह की पैदा की हुई चीजों यानी खेती और मवेशियों में अल्लाह का एक हिस्सा निर्धारित करते हैं और अपने (ग़लत) विचार से कहते हैं कि यह (हिस्सा) तो अल्लाह का और यह हमारे शरीकों (बुतों) का"(6:136)।

इस्लाम इस बात को पसन्द करता है कि मोमिन बन्दा बिना किसी शर्त के कोई अच्छा अमल करे यानि किसी अच्छे काम के इरादे को पूरा करने के लिए कोई शर्त न रखे (बुखारी और मुस्लिम के द्वारा नक़ल की गयी हदीस के हवाले से), इसलिए नज़र की आयतों (76:7; 2:270) की तफ़सीर (व्याख्या) व्याख्याकार यह करते हैं कि यह इस्लाम के मार्गदर्शन में चलने का (हिदायत क अपनाने का) एक वायदा व प्रतिज्ञा है। लेकिन पैग़म्बर साहब की एक और हदीस के शब्द यह है:"जो कोई अल्लाह से किसी नेक अमल की नज़र माने तो उसे पूरा करे, लेकिन अगर गुनाह के किसी अमल की क़सम खाए तो उसे पूरा न करे" (बुखारी, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिजी, नसई, इब्ने माजा)। कुछ दूसरी हदीसों में (जो इब्ने माजा, तिरमिज़ी और तिबरी ने नक़ल की हैं), नज़र को नफ़िल इबादत या सदक़े के रूप में स्वीकार किया गया है, चुनांचि जो कोई किसी नेक अमल का इरादा करे और किसी वजह से उसे पूरा न कर सके तो उसे उसका कफ़्फ़ारा (भरपाई) इस तरह करना चाहिए जिस तरह वायदता तोड़ने पर कफ़्फ़ारा देना जरूरी है (देखें आयत 5:98)।

अध्याय 6

नैतिक मर्यादाएं और संस्कार

परिचयः अख़लाक़ (नैतिक आचरण) अल्लाह के पैग़ाम का जौहर (मूल तत्व) है।

अल्लाह ने अपना दीन और अपनी हिदायत इंसानों के फ़ायदे के लिए भेजी है। जो इंसान अपने मालिक और पालनहार के आगे झुकते हैं अल्लाह उनका मार्गदर्शन करता है कि वो अपनी क्षमताओं और शक्तियों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से काम में लाएं और एक दूसरे के साथ अच्छे ढंग से बर्ताव करें। अल्लाह किसी नस्ल, समुदाय या लिंग आदि से कोई बैर नहीं रखता न किसी के साथ पक्षपात करता है, इसलिए उसकी हिदायत पूरी तरह न्याय पर आधारित है। अपने आपको केवल एक अल्लाह के आगे झुकाने और उसकी बन्दगी करने से इंसान को स्वार्थीपन और लालच से मुक्ति मिलती है और बड़ा होने या छोटा होने की भावना से इंसान बचता है जो कि अलग अलग तरह की परिस्थितियों में इंसान के अन्दर पनपती हैं। इसी तरह एक अल्लाह की इबादत करने वाला दूसरे इंसानों से अच्छा सम्बंध और रिश्ता रखता है और दूसरों से अच्छा बर्ताव करके अल्लाह की प्रसन्ता प्राप्त करने की कामना रखता है, और इस दुनिया में अपने कर्मों का फल आख़िरत के जीवन में पाने की उम्मीद रखता है।

पहले इंसानी जोड़े की पैदाइश के समय ही अल्लाह ने यह फ़रमा दिया था कि वह अपनी हिदायत (मार्गदर्शन) इंसानों को भेजते रहेंगे ताकि वो डर, लालच और कठिनाइयों से बचे रहें (2:38-39, 21:23-24)। हज़रत आदम के दो बेटों के चरित्र से हम यह देख सकते हैं कि अल्लाह की हिदायत इंसान को किस तरह सकारात्मक व्यवहार की और अपने साथ व दूसरे इंसानों के साथ बहतर मामला करने की सीख देती है और ख़ुद पापी व दोषी इंसान को उसकी ग़लती का अहसास दिलाती है और ग़लती पर पछतावे और पीड़ा को उसके अन्दर पैदा करती है (5:27-31)। अरब में प्राचीन काल में आने वाले एक पैग़म्बर ने अपनी क़ौम को नाप तौल में कमी और भृष्टाचार से बचने की शिक्षा दी थी (17:85; 11:84-88)। क़ुरआन का पढ़ने वाला ख़ुद को इन मर्यादाओं से अलग नहीं पाता (16:151-153; 7:33; 16:90-91; 17:23-38; 25:63-67 वग़ैरह)। हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने ख़ुद अपने आने का मक़सद यह बताया कि "मुकम्मल नैतिक आचरण का नमूना बन कर दिखाने को भेजा गया हूँ।"

(बुख़ारीः अध्याय बाबुल-अदब; हाकिमः मुस्तदरक; बेहिक़ीः शोअबुल ईमान)

क़ुरआन में नैतिक मर्यादाओं को इंसान के स्वभाव से जोड़ा गया है जो कि अल्लाह ने बनाया है (30:30; 76:3; 90:10; 91:7-10)। चूंकि इंसान अच्छाई और बुराई को ख़ुद अपनी अक़्ल से समझ सकता है इसलिए क़ुरआन में अच्छी बातों को "अलमअरूफ़" (जानी पहचानी

बात) कहा गया है, और बुराई को ''अलमुनकर'' (नकारने वाली बात) कहा गया है (7:157; 3:104,110; 9:71,112; 22:41)। ये दोनों शब्द न केवल मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पैग़ाम में इस्तेमाल हुए हैं बल्कि दूसरे पैग़म्बरों पर उतरने वाले अल्लाह के कलाम में भी तथा दूसरे पैगम्बरों की शिक्षाओं में भी इस्तेमाल हुए हैं (3:114; 5:78-79)। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने अपने पैग़म्बर बनने से पहले अरबों में प्रचलित शराफ़त व शालीनता और न्याय प्रिय बातों की प्रशंसा की थी और उनका समर्थन किया था। पैग़म्बर साहब 'हातिम ताई' की दानशीलता की प्रशंसा करते थे, इसांनों की हिफ़ाज़त और उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए अरब के गणमान्य लोगों के बीच होने वाले समझौते ''हिलफ़ुल फ़ुज़ूल'' को भी आप ख़ुशी से याद करते थे और आपने फ़रमाया था कि आज भी कोई मुझे इस जैसे समझौते की तरफ़ बुलाए तो मैं उसमें शामिल होउंगा (इब्ने हंबल)। अल्लाह के रब और पालनहार होने पर ईमान, अल्लाह के इंसाफ पर ईमान और आख़िरत के जीवन में कर्मों की सज़ा या इनाम पर ईमान से इंसानी नैतिकता की हिफ़ाज़त होती है (2:177, 204-209; 3:133-136; 4:36; 6:151-153; 7:33,85,157; 11:84-88; 16:90-97,105; 17:23-38; 23:1-11 वगैरह)। पैग़म्बर साहब की एक और हदीस में साफ़ तौर से कहा गया है कि कोई मोमिन जब ज़िना (व्यभिचार या बलात्कार), चोरी, शराब का सेवन जैसे बड़े गुनाह करता है तो उस समय वह ईमान और अल्लाह के डर की भावना में नहीं होता (इब्ने माजा)। इबादत के काम मोमिन के अन्दर नेकी, नैतिकता और शराफ़त को परवान चढ़ाते हैं और ये चीज़ इबादत करने वाले के व्यवहार में दिखनी चाहिए (2:177; 9:54; 29:45; 107:1-7)। क़ानून और राज्य शक्ति का काम भी लोगों के नैतिक आचरण की हिफ़ाज़त करना है (22:41)। अच्छी बातों व कामों का हुक्म करना और बुराइयों से रोकना व्यक्ति की, परिवार की, सामाजिक संगठनों की और पूरे समाज की एक ज़िम्मेदारी है। हर व्यक्ति से यह तक़ाज़ा और अपेक्षा है कि वह खुद भी अच्छी बातें व काम करे और बुराइयों से बचे और दूसरों को भी इसकी सीख दे, शर्त यह है कि वह ठीक से समझता हो कि मुनकर (बुराई) क्या है और मअरूफ (नेक बात या काम) क्या है। अगर अभिव्यक्ति की आज़ादी न हो तो तो मोमिन को अपने मन में ही यह बात साफ़ तौर से रखना चाहिए कि क्या अमल सुन्नत के मुताबिक़ है और क्या नहीं (मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिजी, नसई और इब्ने माजा)। क़ुरआन में हज़रत लुक़मान की अपने बेटे को यह नसीहत (सीख) नक़ल की गयी है जिससे यह मालूम होता है कि यह परिवार और परिवार के बडों की ज़िम्मेदारी है कि वो अपने बच्चों में नैतिकता को विक्सित करें (31:17)। इस मक़सद के लिए सामाजिक संगठन भी बनना चाहिएं (3:104), और सामूहिक रूप से पूरे समाज पर समाज को चरित्रवान बनाए रखने की ज़िम्मेदारी है (3:110; 4:114)।

नैतिक मर्यादाएं और आचरण एक अनिवार्य चीज़ हैं और गवाही मानने में, अधिकारियों व

कर्मियों को नियुक्त करने में और पैग़म्बर साहब की हदीसों को बयान करने में भी इसका पूरा पूरा लिहाज़ रखना चाहिए। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में मअरूफ का हुक्म देने और बुराई से रोकने का कर्तव्य निभाने के लिए एक सरकारी संस्था ''हसबा'' थी जो गलियों व बाज़ारों, दुकानों, पार्कों वग़ैरह में निरीक्षण करने, न्याय व जनता की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए, अनुशासन को बनाए रखने के लिए, स्वास्थ की रक्षा के लिए और शराफ़त व नैतिकता की निगरानी के लिए थी। पैग़म्बर साहब की हदीसें और उनकी मुबारक जीवनी नैतिकता के उच्चतम आदर्श देती हैं, और क़ुरआन के अनुसार खुद पैग़म्बर साहब उन गुणों और विशेषताओं का सजीव नमूना हैं जिन्हें अपने अन्दर पैदा करने के लिए अल्लाह के दीन में लोगों को सीख दी गयी है (2:123,238; 3:31,131-134,159; 6:52,90; 9:128; 11:88; 18:28; 33:21; 60:4-6; 48:4; 80:1-12; 93:6-11)। व्यक्तियों, परिवारों और विभिन्न सामाजिक वर्गों में नैतिकता को परवान चढाने और उसकी रक्षा के लिए समाज में नैतिकता के नमूने, नैतिक परम्पराएं और नैतिक चेतना होना ज़रूरी है (2:140; 3:110; 7:164;11:116-117; 25:74)। व्यक्ति और ख़ास तौर से समाज के मुख्य लोग, परिवार और वर्ग भी समाज पर उसी तरह अपना प्रभाव डालते हैं जिस तरह समाज अपने व्यक्तियों पर प्रभाव डालता है (5:78-79,105; 8:25,92; 11:117; 67:71)। विभिन्न सामाजिक वर्ग और विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे से मेल-जोल के द्वारा एक दूसरे की कमियों की पूर्ति करते हैं, और एक दूसरे में अल्लाह के दीन के नैतिक तत्व को विक्सित करते हैं, उसकी हिफ़ाज़त करते हैं और उसका संचार व विस्तार करते हैं।

नैतिक मर्यादाएं

परिवार में, पड़ोस में, समाज में और पूरी इंसानी दुनिया में

اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَ تَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ وَ اَنْتُمْ تَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝۴۴

क्या तुम दूसरों को तो नेकी का हुक्म करते रहते हो, और अपने आप को भूल जाते हो, जबके तुम किताबें इलाही पढते रहते हो, क्या (तुम अपनी अक़्ल से) सोचते नहीं। (2:44)

किसी भी नैतिक शिक्षा के लिए यह एक बुनियादी बात है कि जो व्यक्ति दूसरों को नैतिक मर्यादाओं की सीख दे वह स्वंय भी उन पर अमल करे क्योंकि ''यह अल्लाह के नज़दीक बहुत ही बुरी बात है कि तुम वह बात कहो जो करो नहीं''(61:3)। ईमान वालों को अपने अमल से यह ज़ाहिर करना चाहिए कि वो लोगों को किस चीज़ की तरफ़ बुलाते हैं। व्यवहार की भाषा

को हर कोई समझ सकता है चाहे उसकी शिक्षा, अक़्ल और समझ का स्तर जो कुछ भी हो, यही भाषा ज़्यादा प्रभावित करने वाली भी होती है। किसी भी नैतिक सीख या सीख देने वाले का कोई विश्वास उस समय तक कायम नहीं हो सकता जब तक वह शिक्षा और मर्यादाएं ख़ुद उसके अपने व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार में नज़र न आएं।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَ تَقُوْلُوْنَ مَا لَا تَفْعَلُوْنَ ۝ كَبُرَ مَقْتًا عِنْدَ اللّٰهِ اَنْ تَقُوْلُوْا مَا لَا تَفْعَلُوْنَ ۝

ऐ मोमिनों! तुम ऐसी बात क्यों कहते हो जो तुम करते नहीं हो। अल्लाह को वो बात सख़्त नापसंद है के ऐसी बात कहा जो करते नहीं हो। (61:2-3)

सच्चे ईमान और अख़लाक का आधार ही यह है कि जिस बात का प्रचार किया जाएं उसको व्यवहार में बर्ता भी जाए। यह नैतिक तत्व और सिद्धांत मोमिन के दिल व दिमाग़ में अल्लाह की बन्दगी की भावना के साथ गहराई के साथ जमा हुआ होता है कि "अल्लाह आंखों की चोरी को जानता है और जो (बातें) सीनों में निहित हैं (उनको भी)" (19:40)। यह मार्गदर्शन अल्लाह की शिक्षा से मिलता है जो ईमान को केवल एक मौखिक या औपचारिक बोल बना लिए जाने (2:44,174) और ख़ुद को या दूसरों को धोखा देने से चेताती है (2:204-207), और हर एक को यह याद दिलाती है कि अल्लाह सच्चाई से बाख़बर है और उसे धोखा नहीं दिया जा सकता।

यह बिल्कुल जरूरी बात है कि जो कोई कुछ मर्यादाओं का प्रचार शब्दों से करे उनको अपने दैनिक जीवन में बरते भी। पैग़म्बरों को उन मर्यादाओं को बरतने के लिए ही भेजा गया था जिनका प्रचार उन्होंने लोगों से मामला करने में किया, और उन मर्यादाओं का व्यवहारिक नमूना बनने के लिए उन्हें भेजा गया जिसकी तरफ़ उन्होंने लोगों को बुलाया, और इस तरह उन्होंने वह रोशनी दिखाई जिसमें अल्लाह का पैग़ाम समझा गया (5:15-16)। पैगम्बर साहब के इस चरित्र को उनकी पत्नि अम्मा आइशा (अल्लाह उनसे राज़ी हो) ने इन शब्दों में बयान किया कि "कानःख़ुलुक़ुहूल क़ुरआन" (उनका अख़लाक़ क़ुरआन जैसा था)।

وَ اِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۫ وَ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ ذِي الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّ اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَ اَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ۝

याद करो इसराईल की औलाद से हमने पक्का वादा लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना, माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के साथ, यतीमों, और मिस्कीनों के साथ नेक सुलूक करना, लोगों से भला बात कहना, नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब उस वादे से फिर गये और अब तक फिरे हुए हो। (2:83)

अल्लाह के सभी पैगम्बरों के द्वारा आने वाले दीन में नैतिक शिक्षाएं लगभग एक जैसी ही हैं। ''अल्लाह के अलावा कोई इलाह (पूज्य प्रभु) नहीं है'' का मतलब यह है कि इंसान के दिल में अल्लाह का डर हो और सभी इंसानी गतिविधियों में अल्लाह की हिदायत का अनुसरण किया जाए। यह चीज़ मातापिता, रिश्तेदारों और मदद चाहने वाले सभी लोगों को साथ अच्छे आचरण में दिखाई दी जानी चाहिए। सभी लोगों से नर्मी से बात करना चाहे वो क़रीबी हों या दूर के लोग हों बराबर से ज़रूरी है और इसी तरह महरबानी का बर्ताव करना भी ज़रूरी है। नमाज़ और ज़कात के द्वारा अल्लाह से मुस्तक़िल सम्बंध बनाए रखने से अल्लाह का तक़वा दिल में परवान चढता है जिससे व्यक्ति और समाज में आम नैतिक मर्यादाएं और हमदर्दी को बढ़ावा देने में ज़बरदस्त मदद मिलती है। लेकिन अल्लाह के दीन में सिखाई गयी ये नैतिक मर्यादाएं और गुण बहुत से लोगों में नहीं होते फिर भी वो घमण्ड करते हैं कि लम्बे समय से अल्लाह की बन्दगी में लगे हुए हैं, या कुछ औपचारिक ढंग अपनाए रहते हैं।

وَ لَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَیْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَ الْجُوْعِ وَ
نَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَ الْاَنْفُسِ وَ الثَّمَرٰتِ ؕ
وَ بَشِّرِ الصّٰبِرِیْنَ ۙ﴿۱۵۵﴾ الَّذِیْنَ اِذَاۤ
اَصَابَتْهُمْ مُّصِیْبَةٌ ۙ قَالُوْۤا اِنَّا لِلّٰهِ وَ اِنَّاۤ
اِلَیْهِ رٰجِعُوْنَ ؕ﴿۱۵۶﴾ اُولٰٓئِكَ عَلَیْهِمْ صَلَوٰتٌ
مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ رَحْمَةٌ ۟ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ
الْمُهْتَدُوْنَ ﴿۱۵۷﴾

और हम तुम को आज़मायेंगे कभी ख़ौफ़ से, कभी भूक से, कभी माल में नुक़सान से, कभी जान के नुक़सान से, और कभी फलों में नुक़सान से (वग़ैरा) ऐ नबी (स.अ.स.)! तुम बशारत सुना दो साबरीन को। के जब उन पर कोई मुसीबत आती है तो कहते हैं के हम सब तो अल्लाह ही की मिल्कियत हैं, और हम उसी की तरफ़ लौट जाने वाले हैं। और साबरीन ही तो हैं जिनके ऊपर उनके रब की तरफ़ से ख़ास ख़ास रहमतें होंगी और आम रहमतें भी और यही तो अपने अल्लाह के रास्ते पर चलने वाले हैं। (2:155-157)

जीवन में कठिनाइयों, समस्याओं, लालच और दबाव से लोगों की जांच की जाती है। जो चीज़ इंसान को हर हाल में संतुलन और स्थिरता पर बनाए रखती है वह है इस बात को याद रखना कि ''हम अल्लाह ही के हैं और उसी की तरफ लोट कर जाने वाले हैं'' (2:156)। अल्लाह और आख़िरत पर ईमान निराशा या मन की उदासी के नतीजे में व्यर्थ होने वाली इंसान की ऊर्जा को सुरक्षित रखता है। अल्लाह के इबादत करने वाले बन्दे यह जो इंसानी संतुलन महसूस करते हैं वह इस दुनिया में ईमान की एक ख़ास बरकत और नेअमत है जो उन इबादगुजारों को अल्लाह की मदद, हिदायत और रहमत से मिलती है। और इस ईमान का बदला आख़िरत में तो कल्पना से कहीं अधिक है:''कहो कि ऐ मेरे बन्दो जो ईमान लाए हो अपने पालनहार से डरो। जिन्होंने इस दुनिया में नेकी की उनके लिए भलाई है और अल्लाह

की ज़मीन विशाल है जो सब्र करने वाले हैं उनको बेहिसाब सवाब मिलेगा'' (39:10)।

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ
الْمَشْرِقِ وَ الْمَغْرِبِ وَ لٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ
بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ الْمَلٰٓئِكَةِ وَ الْكِتٰبِ وَ
النَّبِيّٖنَ ۚ وَ اٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِي
الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنَ وَ ابْنَ
السَّبِيْلِ ۙ وَ السَّآئِلِيْنَ وَ فِي الرِّقَابِ ۚ وَ
اَقَامَ الصَّلٰوةَ وَ اٰتَى الزَّكٰوةَ ۚ وَ الْمُوْفُوْنَ
بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ وَ الصّٰبِرِيْنَ فِي
الْبَاْسَآءِ وَ الضَّرَّآءِ وَ حِيْنَ الْبَاْسِ ؕ اُولٰٓئِكَ
الَّذِيْنَ صَدَقُوْا ؕ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ۝

नेकी ये नहीं है के तम सिर्फ़ अपना मुँह मशरिक़ व मग़रिब को कर लो, लेकिन नेकी दरअसल यही है के जो अल्लाह पर पूरा पूरा यक़ीन लायें यौमे आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, किताबों पर, रसूलों पर ईमान लायें, और माल जो उनको बड़ा अज़ीज़ है अपने रिश्तेदारों को, यतीमों को, मोहताजों को, मुसाफ़िरों को, मांगने वालों को और गुलामों को आज़ाद कराने में सर्फ़ करें, नमाज़ बराबर पढ़ते रहें और ज़कात देते रहें, जब अहेद करें तो इसको पूरा भी किया करें, और सख़्ती और तकलीफ़, और लड़ाई में सब्र किया करें, और साबित क़दम रहा करें। यही हैं जो सच्चे हैं, और यही वो हैं जो अल्लाह से डरने वाले हैं। (2:177)

यह आयत इस बात की साफ घोषणा है कि अल्लाह और उसके दीन की नज़र में सच्ची नेकी और सदाचारिता का मतलब क्या है, और सतही ढंग की औपचारिक दीनदारी के जाल में फंसने से यह ख़बरदार करती है। नमाज़ में किसी ख़ास दिशा में चेहरा कर लेना मोमिन के लिए इस बात की याद दिहानी है कि अपने पूरे व्यक्तित्व को, अपनी ऊर्जाओं, विचारों और कर्मों की दिशा पूरी तरह अल्लाह और उसकी हिदायत के तरफ़ कर लो। नमाज़ में दिशा का पश्चिम या पूरब में होना स्वयं अपने आप में काफ़ी नहीं है। क्योंकि सभी दिशाएं तो अल्लाह की ही हैं (2:115,142)। सच्ची नेकी यह है कि अल्लाह और आख़िरत के दिन पर सच्चे दिल से ईमान लाया जाए और उसके पैग़ाम को दिल से माना जाए। ऐसा सच्चा ईमान हर समय और जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने प्रभाव और निहितार्थ रखता है। ईमान का इज़हार कर्मों और व्यवहार से होना चाहिए और इसमें सबसे महत्पूर्ण बात यह है कि स्वार्थीपन, लालचीपन की उक्साहट से लड़ा जाए, इसके बजाए अपने माल और संसाधनों को दूसरे ज़रूरतमंदों पर खर्च किया जाए, चाहे ज़रूरतमंद मांगे या उसकी ज़रूरत खुद ही नज़र आ रही हो या किसी दूसरे माध्यम से जानकारी में आए।

यह बात महत्वपूर्ण है कि जरूरतमंदों में ''इब्नुस्सबील'' (यात्री) भी शामिल हैं। यह शब्द उन सभी लोगों के लिए है जो अपने ईमान या आर्थिक या राजनीतिक कारणों से अपने घर

से दूर हों। क़ुरआन इस पर ज़ोर देता है कि अल्लाह की ज़मीन विशाल है और किसी जगह ज़ुल्म सहन करने और अपनी इंसानी प्रतिष्ठा को क़ुर्बान करने के बजाए इंसान दूसरी जगह जा सकता है (4:97,100(29:56)। अपना घर और देस छोड़ने पर मजबूर कर दिए जाने वाले किसी व्यक्ति की मदद व समर्थन की शिक्षा क़ुरआन की कई आयतों में दी गयी है (2:117,215(4:36(8:41(17:26(30:38)।

लोगों को ग़ुलामी से आज़ाद कराने के लिए ख़र्च करना भी कम महत्पूर्ण नहीं है। इसका मतलब यह है कि इंसानी आज़ादी की हिफ़ाज़त करना इस्लाम के ख़ास मक़सदों में से एक मकसद है जिसके लिए वो सभी व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकारी कोशिशों को काम में लाता है ताकि ग़ुलामी की अप्रिय स्थिति को बदल दिया जाए जो इस्लाम के सामने थी लेकिन इस्लाम ने शुरू नहीं की थी और न इस्लाम ने इसका प्रोत्साहन किया। ज़कात के रूप में सरकारी ख़ज़ाने में आने वाली रक़म लोगों को ग़ुलामी से आज़ाद कराने के लिए भी खर्च होती थी (9:60)। मदद चाहने वाले ज़रूरतमंद लोगों पर खर्च करने के साथ साथ नैतिकता व बर्ताव की दूसरी मर्यादाएं भी हैं जो सच्चे ईमान को दर्शाती हैं, जैसे किसी कठिनाई या दिक़्क़त या डर की स्थिति में सब्र करना (धीरज रखना)। नमाज़ और ज़कात की अदायगी अल्लाह से और समाज में दूसरे इंसानों से सम्बंधे का एक मुस्तक़िल माध्यम है जो तक़वा, नैतिकता और एकजुटता व सदभावना को बढ़ाता है। जो लोग इन सच्चे गुणों से धनी होते हैं वो वास्तव में नेक, सदाचारी और पवित्र लोग होते हैं, जबकि वो लोग जो केवल औपचारिक रूप से इबादतें करें और इन इबादतों का मक़सद पूरा न करें वो सच्चे इबादतगुजार और नेक नहीं हैं (4:77(22:37(2:45(107:1-7)।

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْاَهِلَّةِ ؕ قُلْ هِيَ مَوَاقِيْتُ لِلنَّاسِ وَالْحَجِّ ؕ وَلَيْسَ الْبِرُّ بِاَنْ تَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ ظُهُوْرِهَا وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنِ اتَّقٰى ۚ وَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ اَبْوَابِهَا ۪ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۱۸۹﴾

ऐ नबी (स.अ.व.)! चाँद के बारे में ये तुम से दरयाफ़्त करते हो के ये घटता बढ़ता क्यों है, तुम कह दो के लोगों के कामों के औक़ात और हज वग़ैरा की तारीख़ें मालूम करने का एक ज़रिया है, और नेकी ये नहीं के तुम एहराम की हालत में घरों में पीछे से आओ बल्के नेकी तो ये है कि कोई शख़्स हराम से बचे, और घरों में उनके दरवाज़ों से आया करो, और तुम अल्लाह से डरते रहा करो ताके फ़लाह पाओ। (2:189)

नया चांद दिखाई देने को कोई रहस्यमय या अलैकिक बात समझने के बजाए एक प्राकृतिक स्थिति के रूप में देखना चाहिए। इसे साल के एक नए महीने की शुरूआत के प्रतीक

के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। इस्लाम के शुरू से अरब में जहां आम तौर से खेती बाड़ी नहीं होती, चांद को महीनों की गिनती का आधार बनाया गया और अब तक वहां चन्द्रमासी कैलेण्डर ही चला आ रहा है। इसी तरह हज की वार्षिक इबादत इस्लामी युग शुरू के पहले से ही चांद के महीनों से होती थी, और वह चार विशेष सम्मान वाले महीने जिनमें लड़ाई करना मना था इसी चन्द्रमासी कैलेण्डर से ही तय होते थे (9:36)। अब इस्लाम में रोज़ों का महीना और साल के दो त्यौहार व हज चांद के ख़ास महीनों में ही आयोजित होते हैं।

सृष्टि और उसमें सक्रिय नियमों से सम्बंधित किसी मामले को एक प्राकृतिक नज़ारे के रूप में देखना या उससे फ़ायदा उठाना, जैसे हम चांद की रोशनी से फ़ायदा उठाते हैं और समय का अनुमान लगाते हैं, इस प्राकृतिक नज़ारे से हमारे सीधे सम्बंध को व्यक्त करता है। किसी प्राकृतिक दर्शन या मंज़र को किसी रहस्मय और अप्राकृतिक क्रिया के रूप में देखा जाए तो यह चीज़ों को जानने और समझने के मामले में एक ग़लत दृष्टिकोण है जिस तरह यह एक ग़लत तरीका है कि घर में दरवाज़े से प्रवेश करने के बजाए किसी और तरीक़े से कूद फांद कर दाख़िल हुआ जाए। इसके अलावा धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए केवल उनके ढंग और प्रकार पर ही ध्यान देने का मतलब यह है कि इबादत के वास्तविक उद्देश्य और उसके अध यात्मिक व नैतिक फायदों की अनदेखी हो रही है। इस तरह क़ुरआन इंसानी ज़हन को वहम और आडम्बरों से आज़ाद करता है। जब अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० के बेटे इब्राहीम की मृत्यू के बाद संयोग से सूरज ग्रहण लगा तो कुछ लोगों ने उसे बृह्माण्ड के दुखी होने और पैग़म्बर साहब के दुख में शरीक होने का एक प्रतीक समझा। तब अल्लाह के पैग़म्बर साहब ने साफ़ साफ़ फरमाया कि सितारे और ग्रह अपने निर्धारित नियमों से बंधे हुए हैं, और किसी इंसान की मौत पर सूरज को ग्रहण नहीं लगता। (बुख़ारी, मुस्लिम, नसई और इब्ने माजा)

فَإِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ؕ فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا وَ مَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ۝ وَ مِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّ فِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّ قِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَ اللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝

दुनिया और आख़िरत की बातों में (ग़ौर किया करो) और वो तुम से यतीमों की निसबत भी दरयाफ़्त करते हैं, कह दो के उनको दुरुस्त करना बहुत अच्छा काम है, अगर उनसे मिल जुल कर राहे तो वो तुम्हारे भाई हैं और अल्लाह तो ये बात ख़ूब जानता है के ख़राबी करने वाला कौन है और दुरुस्त करने वाला कौन है, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम को तकलीफ़ में डाल देता, बिला शुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त ग़ालिब और बड़ी हिकमत वाला है। (2:220)

क़बायली समाज में किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्टभूमि को हमेशा ध्यान में रखा जाता है, क्योंकि व्यक्ति को एक सामूहिक अस्तित्व का अंग समझा जाता है और उसके पैतृक सिलसिले से जोड़ कर देखा जाता है। इसके अलावा संतान अपने मातापिता के सबसे क़रीबी होती है और अपने व्यवहार व बर्ताव में अपने मातापिता का नमूना समझी जाती है। क़ुरआन अल्लाह पर ईमान रखने वालों को ताकीद करता है कि अल्लाह से उनका सम्बंध दूसरे किसी सम्बंध से ज़्यादा होना चाहिए और इस बात को ज़हन में पूरी तरह स्पष्ट रखना चाहिए। इसके अलावा, क़ुरआन उपरोक्त आयतों में दो तरह की मर्यादाओं का ज़िक्र करता है:एक यह है कि केवल इस दुनिया के जीवन के फ़ायदों की ही इच्छा रखना और उसके चलते अपने परिवार व क़बीले की आन पर जमे रहना, और दूसरी यह कि इस दुनिया में भी भलाई मिले और आख़िरत के जीवन में भी भलाई मिले। अल्लाह पर ईमान रखने वाले लोग इस दूसरे व्यवहार वाले होते हैं, जबकि पहले वाला व्यवहार इंसान को अहंकार, स्वार्थ और केवल भौतिक लाभों पर नज़र रखने तक सीमित कर देता है। अल्लाह पर ईमान रखने वालों से यह तक़ाज़ा नहीं है कि वो इस दुनिया की भलाई व बहतरी को अनदेखा करें, बल्कि उनसे अपेक्षा यह की जाती है कि आखिरत के जीवन को भूल न जाएं और वहां के फ़ायदों की अनदेखी न करें ''और जो (माल) तुम्हें अल्लाह ने अता किया है उससे आख़िरत (की भलाई) चाहो और दुनिया से अपना हिस्सा भी न भुलाओ और जैसी अल्लाह ने तुमसे भलाई की है (वैसी) तुम भी (लोगों से) भलाई करो''(28:77)। एक सही इस्लामी रवैया यह है कि इस दुनिया के जीवन और आख़िरत के जीवन के फ़ायदों के बीच एक संतुलित रवैया रखा जाए, और यही रवैया यह तय करता है कि इस्लामी जीवन की मर्यादाएं क्या हैं।

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّعْجِبُكَ قَوْلُهٗ فِي الْحَيٰوةِ
الدُّنْيَا وَيُشْهِدُ اللّٰهَ عَلٰى مَا فِيْ قَلْبِهٖ ۙ وَهُوَ
اَلَدُّ الْخِصَامِ ۝ وَاِذَا تَوَلّٰى سَعٰى فِي
الْاَرْضِ لِيُفْسِدَ فِيْهَا وَيُهْلِكَ الْحَرْثَ وَ
النَّسْلَ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ۝ وَاِذَا
قِيْلَ لَهُ اتَّقِ اللّٰهَ اَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ بِالْاِثْمِ
فَحَسْبُهٗ جَهَنَّمُ ؕ وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝ وَمِنَ
النَّاسِ مَنْ يَّشْرِيْ نَفْسَهُ ابْتِغَآءَ
مَرْضَاتِ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝

और बाज़े आदमी ऐसे हैं के पसंद आती है तुम को उनकी बात दुनिया की ज़िन्दगी के कामों में और वो अपने दिल की बात पर अल्लाह को गवाह बनाता है, हालाँके वो ही सबसे बड़ा झगड़ालू है। और जब यही झगड़ालू पीठ फेर कर चला जाता है तो दौड़ता फिरता है ज़मीन में ताके उस में फ़ितना बरपा करे खेती को बर्बाद करे और इन्सानों और हैवानों की नस्ल को हलाक कर दे, और अल्लाह तो फ़ितना अंगेज़ी को पसंद नहीं फ़रमाता। और जब उससे कहा जाता है के अल्लाह ही से डरो तो उसका गुरूर उसको गुनाह में गिरफ्तार कर देता है तो उसको दोज़ख का अज़ाब काफ़ी है, और ये

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ادْخُلُوْا فِي السِّلْمِ كَآفَّةً ۠ وَّلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ؕ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝ فَاِنْ زَلَلْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَتْكُمُ الْبَيِّنٰتُ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝

बहुत ही बुरा ठिकाना है। और कोई ऐसा भी है के अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने के लिए अपनी जान भी कुर्बान कर देता है, और अल्लाह तो है ही अपने बन्दों पर बड़ा ही मेहरबान ऐ मोमिनो! तुम इस्लाम में पूरे-पूरे दाख़िल हो जाओ, और शैतान की पैरवी न करो, वो तो तुम्हारा खुला दुश्मन है। फिर अगर रौशन अहकाम तुम्हारे पास पहुँच जाने के बाद तुम मुतज़लज़िल हो जाओ तो जान लो के अल्लाह तो है ही बड़ा ज़बरदस्त और हिकमत वाला। (2:204-209)

किसी कही जाने वाली बात को व्यक्ति के व्यवहार से साबित होना चाहिए। हालांकि ऐसा हो सकता है कि आप किसी के मुंह से बहुत प्रभावित करने वाली और दिल को छूने वाली बात सुने, और उसकी नियत भी ठीक हो जिस की सही जानकारी तो अल्लाह को ही हो सकती है, लेकिन उसके कर्म उसके सुन्दर बोल के विपरीत हों और हर जगह वह भृष्टाचार और बर्बादी से ग्रस्त हो। जब कभी भी कोई ऐसे कपटी और नैतिकता व मर्यादा के झूटे दावेदार को उसके कथनी और करनी के विरोधाभास की तरफ़ ध्यान दिलाया जाता है तो वह और अधिक अकड़ने लगता है और दुर्व्यवहार पर उतारू हो जाता है, लेकिन ऐसा व्यक्ति अन्त में आख़िरत के जीवन में जहन्नम में डाल दिया जाएगा। इस तरह के चरित्र और व्यवहार की निन्दा इन आयतों में की गयी है (और देखें 2:44(61:2-3), क्योंकि इस विरोधाभास और दोग़लेपन से बातें और शब्द बे मतलब हो जाते हैं और लोगों का भरोसा खत्म हो जाता है, ख़ास तौर से नैतिकता और मर्यादा के मामले में। लेकिन दूसरी तरफ़ ऐसे भी लोग होते हैं जो स्वयं को पूरी तरह अल्लाह के आगे समर्पित कर देते हैं और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने में लगे रहते हें और उसका कोई बखान भी नहीं करते। इंसान का वास्तविक लक्ष्य मुकम्मल शान्ति और संतोष है जो स्वयं को पूरी तरह अल्लाह के आगे समर्पित किए बिना प्राप्त नहीं हो सकता, इसांन की सोच में, भावनाओं में और क्रियाओं में पूरा पूरा सुकून। ऐसा व्यक्ति अलग अलग तरह के लोगों से विरोधाभासी व्यक्तित्व और विपरीत व्यवहार के साथ नहीं मिलता और अलग अलग परिस्थितियों में कथनी और करनी के टकराव का शिकार नहीं होता।

مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنْۢبَتَتْ سَبْعَ سَنَابِلَ فِيْ كُلِّ سُنْۢبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ؕ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ

जो अपना माल अल्लाह की राह में खर्च करते हैं। उनके माल की मिसाल उस दाने की सी है जिससे सात बालें उगीं और हर बाल के अन्दर सौ सौ दाने हों, और अल्लाह जिसे चाहता है.ज्यादा कर देता है। और अल्लाह

لِمَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ اللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿۲۶۱﴾
اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّ لَآ اَذًى ۙ
لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَ لَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَ لَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۲۶۲﴾ قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ
وَّ مَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى
ؕ وَاللّٰهُ غَنِيٌّ حَلِيْمٌ ﴿۲۶۳﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
لَا تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَ الْاَذٰى ۙ
كَالَّذِيْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَ لَا
يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ
صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ
فَتَرَكَهٗ صَلْدًا ؕ لَا يَقْدِرُوْنَ عَلٰى شَيْءٍ
مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَ اللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ
الْكٰفِرِيْنَ ﴿۲۶۴﴾ وَ مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ
اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَ تَثْبِيْتًا
مِّنْ اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍۭ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا
وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ
يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ
بَصِيْرٌ ﴿۲۶۵﴾ اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ
جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّ اَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ
وَ اَصَابَهُ الْكِبَرُ وَ لَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَآءُ ۪
فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ؕ
كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ

बड़ी वुसअत वाला और जानने वाला है। जो लोग अपना माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं फिर ख़र्च करने के बाद ना तो एहसान जतलाते हैं और ना तकलीफ़ पहुंचाते हैं उनका सिला तो उनके रब के हां है ही, और क़यामत के दिन उनको ना तो कोई खौफ़ होगा और ना वो ग़मगीन होंगे। मुनासिब बात कह देना और दरगुज़र कर देना ऐसी ख़ैरात से बेहतर है जिसके बाद आज़ार पहुंचाया जाए और अल्लाह ग़नी है हिलम वाला है। ऐ मोमिनों! अपने सदक़ातो ख़ैरात को एहसान जता कर और ईज़ा देकर बर्बाद ना करो जिस तरह वो जो लोगों को दिखावे के लिए ही अपना माल ख़र्च करता है। और अल्लाह पर और रोज़े आख़िरत पर यक़ीन नहीं रखता। उस माल की मिसाल उस चट्टान की मानिंद है जिस पर थोड़ी सी मिटटी पड़ी हो और उस पर ज़ोर का मेंह बरस कर उसे साफ़ कर डाले। इसी तरह रियाकार अपने आमाल का ज़रा सा हिस्सा भी हासिल नहीं करेंगे। और अल्लाह नाशुक्रों को हिदायत ही नहीं दिया करता। और जो अल्लाह की रज़ा और खुशनूदी के लिए और ख़ुलूसे दिल से अपना माल ख़र्च करते हैं, उनकी मिसाल एक बाग़ की मानिंद है जो ऊँची जगह पर वाक़े हो जब उस पर मेंह पड़े तो दुगना फल लाये। और अगर मेंह ना भी पड़े तो ख़ैर फूवार ही सही। और अल्लाह तुम्हारे कामों को तो ख़ूब देख रहा है ही। क्या तुम में कोई ये पसंद करता है कि उसका खजूरों और अंगूरों का बाग़ हो जिसमें नहरें बह रही हों और उस में उसके लिए हर क़िस्म के मेवे मौजूद हों और उसे बुढापा आ पड़े और उसके नन्हे नन्हे बच्चे हों तो नागहां उस बाग़ पर आग का भरा हुआ बगूला चले और वो जल कर राख का ढेर हो जाए। इस तरह अल्लाह तुम से अपनी आयात खोल खोल कर बयान करता है ताकि तुम सोचो और समझो। मोमिनों! जो पाकीज़ा और उम्दा माल कमाते हो और जो चीज़ें

تَتَفَكَّرُوْنَ ﴿٢٦٧﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا
مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَ مِمَّآ اَخْرَجْنَا
لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۖ وَ لَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ
مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَ لَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّآ اَنْ
تُغْمِضُوْا فِيْهِ ؕ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ
حَمِيْدٌ ﴿٢٦٨﴾ اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَ
يَاْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَآءِ ۚ وَ اللّٰهُ يَعِدُكُمْ
مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَ فَضْلًا ؕ وَ اللّٰهُ وَاسِعٌ
عَلِيْمٌ ﴿٢٦٩﴾ يُّؤْتِي الْحِكْمَةَ مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَ مَنْ
يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِيَ خَيْرًا كَثِيْرًا ؕ وَ مَا
يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ﴿٢٧٠﴾ وَ مَآ اَنْفَقْتُمْ
مِّنْ نَّفَقَةٍ اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ
اللّٰهَ يَعْلَمُهٗ ؕ وَ مَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ﴿٢٧١﴾
اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۚ وَ اِنْ
تُخْفُوْهَا وَ تُؤْتُوْهَا الْفُقَرَآءَ فَهُوَ خَيْرٌ
لَّكُمْ ؕ وَ يُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ
بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ﴿٢٧٢﴾ لَيْسَ عَلَيْكَ
هُدٰىهُمْ وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ
مَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلِاَنْفُسِكُمْ ؕ وَ مَا
تُنْفِقُوْنَ اِلَّا ابْتِغَآءَ وَجْهِ اللّٰهِ ؕ وَ مَا
تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ يُّوَفَّ اِلَيْكُمْ وَ اَنْتُمْ لَا
تُظْلَمُوْنَ ﴿٢٧٣﴾ لِلْفُقَرَآءِ الَّذِيْنَ اُحْصِرُوْا فِيْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ ضَرْبًا فِي
الْاَرْضِ ۫ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ اَغْنِيَآءَ

हम तुम्हारे लिए ज़मीन से निकालते हैं उनमें से खर्च करो। और बुरी और नापाक चीज़ें देने का क़स्द ना करना के अगर वो चीज़े तुम को दी जायें तो बजुज़ इसके के लेते वक़्त आंखें बन्द कर लो उनको कभी न लो, और जान लो के अल्लाह परवाह नहीं करता। और वो तो है ही हर क़िस्म की तारीफ़ और सना का हक़दार और सज़ावार। (देखो!) शैतान (का कहा ना मानना वो) तुम को तंगदस्ती का खौफ़ दिलाता है और बे हयाई के काम करने को कहता है। और अल्लाह तुम से अपनी बख़्शिश और रहमत का वादा करता है, और अल्लाह ही बड़ी वुसअत वाला और ख़ूब जानने वाला है। वो जिसको चाहता है हिकमतों से नवाज़ता है, और जिस को हिकमत अता हुई बिला शुबह बड़ी नेमत मिली उसको। और नसीहत तो वही क़ुबूल करते हैं जो अक़्ल वाले हैं। और जो तुम अल्लाह की राह में ख़र्च करो या कोई मन्नत मानो तो अल्लाह उसको ख़ूब जानता है। और ज़ालिमों का कोई मदद करने वाला न हो। अगर तुम ख़ैरात ज़ाहिर करके दो तो वो भी खूब है। और अगर पोशीदा करके दो हाजतमंद को तो ये तुम्हारे लिए ज्यादा बेहरत है और इस तरह देना तुम्हारे गुनाहों को भी दूर कर देगा। और अल्लाह तो तुम्हारे सारे कामों से ख़ूब बाख़बर हैं। (ऐ नबी (स.अ.स.)!) उनकी हिदायत के लिए आप ज़िम्मेदार नहीं बल्के अल्लाह जिसको चाहता है हिदायत देता है (और मोमिनों!) तुम जो माल ख़र्च करोगे तो उसका फ़ायदा तुम्ही को होगा। और तुम जो ख़र्च करोगे अल्लाह ही की रज़ा हासिल करने के लिए करोगे और जो माल तुम ख़र्च करोगे। वो तुम को पूरा पूरा दे दिया जाएगा और तुम्हारा कोई नुक़सान न होगा। और जो तुम ख़र्च करोगे तो ये हक़ उन हाजतमंदों का है जो अल्लाह की राह में रूके हुए है। और मुल्क में किसी तरफ़ जाने की सकत नहीं रखते (और मांगने से आर है)

مِنَ التَّعَفُّفِ ۚ تَعْرِفُهُمْ بِسِيمٰهُمْ ۚ لَا يَسْـَٔلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ۗ وَ مَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ۝ اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَ النَّهَارِ سِرًّا وَّ عَلَانِيَةً فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَ لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَ لَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝

नावाक़िफ़ लोग उनको ना मांगने के सबब ग़नी ख़्याल करते हैं। और तुम उनको क़्याफ़े से साफ़ पहचान लो के हाजतमंद हैं, लोगों से लिपट कर नहीं मांगते। और तुम जो माल (उन पर) ख़र्च करोगे। बिलाशुबह अल्लाह तआला उसको ख़ूब जानता है। जो अपना माल रात और दिन और पोशीदा और ज़ाहिर अल्लाह की राह में ख़र्च करते रहते हैं। उनका सिला उनके रब के पास है, और उनको क़यामत के दिन न तो कोई ख़ौफ़ ही होगा और ना कोई ग़म। (2:261-274)

क़ुरआन ने जो नैतिक शिक्षाएं दी हैं उनमें एक बहुत महत्वपूर्ण और ज़रूरी बात यह है कि इंसान के पास जो कुछ है उसमें से वह दूसरों पर ख़र्च करे (2:3), अपने माल में से ग़रीबों को दे, अपने ज्ञान से दूसरे ज़रूरतमंद लोगों को फ़ायदा पहुंचाए, अपनी ऊर्जा और शक्ति से दूसरे कमज़ोर लोगों की मदद करे वग़ैरह वग़ैरह। क़ुरआन में "इनफ़ाक़" (दूसरों पर खर्च करने) का निर्देश लगभग 50 बार आया है और ईमान वालों को ख़बरदार किया गया है कि माल जमा करके न रखें और उसे ग़लत जगह खर्च न करें। किसी एक व्यक्ति का ऐश का जीवन न केवल उसके अपने लिए नुक़सान का कारण बनता है बल्कि पूरे समाज के लिए नुक़सानदायक होता है (9:195; 9:34-35; 11:116-117; 17:16)। अतःउपरोक्त आयतें बताती हैं कि अल्लाह के लिए दूसरों पर खर्च करने से दोनों जगतों में बहतरीन बदला मिलता है, चाहे यह खर्च (व्यक्तिगत हो या सामूहिक रूप से पूरे समाज के लिए हो)। किसी भी सदक़े (पुणदान) का बदला सात सौ गुणा तक मिल सकता है या उससे भी अधिक (2:262), जितने लोग उससे फ़ायदा उठाएंगे इस दुनिया में उसके लिहाज़ से भी और ख़ुद सदका करने वाले को भौतिक तथा नैतिक रूप में भी। और आख़िरत के जीवन में इसका बदला कल्पना से भी परे है (क्योंकि) "कोई जानदार नहीं जानता कि उसके लिए कैसी आंखों की ठण्डक छुपा कर रखी गयी है यह उन कामों का बदला है जो वो करते थे"(32:17)।

इस आम बयान के बाद इन आयतों में इनफ़ाक़ के नैतिक पहलुओं का ज़िक्र किया गया है। सबसे पहले यह कि दूसरों की मदद किसी दिखावे और जतावे के बग़ैर होना चाहिए जिससे ज़रूरतमंद की भावनाओं को ठेस न पहुंचे, और ऐसे इनफ़ाक़ की मिसाल इस बात से दी गयी है कि जैसे कोई चट्टान पर पेड़ उगाने की कोशिश करे (2:262-265)। दूसरी यह कि सामाजिक ज़रूरतों के लिए खर्च करने को नाजायज़ आमदनी के लिए आड़ न बनाया जाए, न बेकार और घटिया चीज़े सदक़े में दी जाएं (2:267) (और देखें 3:92; 16:62)। आदमी को शैतान के इन

उक्सावों से बचना चाहिए कि दूसरों पर खर्च करने से वह ग़रीब हो जाएगा (2:268), क्योंकि व्यक्तिगत और सामाजिक हित एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, और समाज को मज़बूत करने से खुद व्यक्ति को मज़बूती मिलती है और आख़िरकार यह उसके अपने हित में ही होता है क्योंकि इससे पैदावार और उसके इस्तेमाल में वृद्धि होती है। तीसरी बात यह कि कम-नज़री और अदूरदर्शिता व्यक्ति और समाज दोनों को नुक़सान पहुंचाती है जबकि सोच और दृष्टि को व्यापक बनाने का मतलब है ज़हन का बडा होना और हिकमत मिलना "और जिसको हिकमत (समझदारी) मिली बेशक उसको बड़ी नेअमत मिली" (2:269)। चौथी बात यह कि सामाजिक ज़रूरतों पर चुपके से खर्च करना आदमी के अपने अख़लाक़ (नैतिकत आचरण) के लिए बहतर है कि इससे निःस्वार्थ भावना विक्सित होती है, लेकिन खुल कर ख़र्च करना भी ठीक है, और दूसरों को प्रेरणा देने के लिए कभी कभी यह ज़रूरी भी होता है (2:271,274 और देखें 3:133-134(57:21(83:26)। पांचवी बात यह कि सामाजिक ज़रूरतों के लिए किया जाने वाला ख़र्च सभी ज़रुरतमंदों तक पहुंचे, चाहे उनका ध र्म और अक़ीदा कुछ भी हो, क्योंकि समाज के प्रति व्यक्ति की ज़िम्मेदारी सामूहिक है और उसको किसी ख़ास धर्म, नस्ल या लिंग वाले किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं रखा जा सकता। सामाजिक अधिकार किसी पर अहसान जताने के लिए नहीं देना चाहिएं न कोई दबाव बनाने के लिए दूसरों को उन अधिकारों से वंचित करना चाहिए। इस सिलसिले में इस्लाम में किसी भेदभाव की इजाज़त नहीं है क्योंकि लोगों को हिदायत के रास्ते पर चलाना किसी इंसान के बस की बात नहीं है (2:272)। छटी बात यह है कि पैसे की ज़रूरत किसी को कुछ समय के लिए भी हो सकती है कि रोज़गार के लिए कोई अपने घर से निकला हो, अल्लाह की राह में निकला हो या दुशमनों के ज़ुल्म से बचने के लिए निकला हो (2:273)। इनफ़ाक़ यानि दूसरे ज़रूरतमंदों पर खर्च करना इस्लाम में बुनियादी महत्व रखता है और इससे व्यक्ति व समाज दोनों में बहुत से अच्छे गुण विक्सित होते हैं।

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۠
وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ
اَعْدَآءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ
بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا ۚ وَكُنْتُمْ عَلٰى شَفَا حُفْرَةٍ
مِّنَ النَّارِ فَاَنْقَذَكُمْ مِّنْهَا ؕ كَذٰلِكَ
يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝

तुम मिल जुल कर अल्लाह की रस्सी को मज़बूत पकड़े रहना, और फ़िर्क़ाबंदी ना करना और तुम पर जो अल्लाह का ईनाम है उसे याद करना जब तुम दुश्मन थे तो तुम्हारे दिलों में मोहब्बत डाल दी तो तुम अल्लाह की मेहरबानी से भाई भाई हो गए, और तुम दोज़ख के गढ़े के किनारे पर ही थे तो अल्लाह ने उससे तुम्हारी जान बचाई, इस तरह अल्लाह अपने अहकाम बयान करता है, ताकि तुम सीधे रास्ते पर रहो। और तुम में एक जमात होनी ज़रूरी है जो ख़ैर की तरफ़ बुलाया करे और नेक

وَ لْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ يَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝ وَ لَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ تَفَرَّقُوْا وَ اخْتَلَفُوْا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ ؕ وَ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝ يَّوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّ تَسْوَدُّ وُجُوْهٌ ۚ فَاَمَّا الَّذِيْنَ اسْوَدَّتْ وُجُوْهُهُمْ ۫ اَكَفَرْتُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ فَذُوْقُوا الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ۝ وَ اَمَّا الَّذِيْنَ ابْيَضَّتْ وُجُوْهُهُمْ فَفِيْ رَحْمَةِ اللّٰهِ ؕ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ؕ وَ مَا اللّٰهُ يُرِيْدُ ظُلْمًا لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝ وَ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَ مَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَ اِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝ كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ تَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ؕ وَ لَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ؕ مِنْهُمُ الْمُؤْمِنُوْنَ وَ اَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۝

काम करने को कहा करे और बुरे कामों से रोका करे, और यही लोग पूरे कामयाब हैं। और तुम उनकी तरह मत हो जाना जिन्होंने फ़िर्क़ाबंदी कर ली और अपने पास खुले अहकाम आने के बाद भी बाहम इख़्तिलाफ़ किया और उन ही के लिए बहुत बड़ा अज़ाब होगा। उस रोज़ के बाज़ चेहरे सियाह होंगे, सो जिनके चेहरे सियाह होंगे उनसे सवाल होगा क्या तुम काफ़िर हो गए? जबकि तुम ईमान ला चुके थे, तो सज़ा का मज़ा चखो, इसलिए के तुम काफ़िर हो गए। और जिनके चेहरे सफ़ेद हो गए होंगे, वो अल्लाह की रहमत में होंगे, वो उसमें हमेशा हमेशा रहेंगे। ये अल्लाह की आयात हैं जो सही सही पढ़ कर हम तुम को सुनाते हैं, और अल्लाह दुनिया जहान की मख़लूक़ात पर कोई ज़ुल्म नहीं चाहता। और अल्लाह ही की मिल्क है जो कुल कुछ भी आसमानों और ज़मीन में है और तमाम उमूर अल्लाह ही की तरफ़ रूजू किये जायेंगे। तुम बेहतरीन जमात हो जो अवामुन्नास की ख़िदमत के लिए निकली है, तुम नेकी के लिए कहते हो और बदी से रोकते हो, और अल्लाह पर ईमान लाए हो, और अगर अहले किताब ईमान ले आते तो उनके लिए बेहतर होता, उनमें से बाज़ तो मुसलमान हैं, और अक्सर उनमें काफ़िर हैं। (3:103-110)

सभी ईमान वाले मर्दों व औरतों के बीच आपस में एकता और भाईचारा मुस्लिम समाज का अनिवार्य गुण है और यह ईमान का अभिन्न अंग है, इसीलिए ईमान वालों से कहा गया कि सब मिल कर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो (3:103), "और मोमिन मर्द व मोमिन औरतें एक दूसरे के दोस्त बनें" (19:7)। लेकिन एकता और भाईचारे का मतलब यह नहीं है कि उनके बीच मतभेद नहीं होगा कि यह एक स्वभाविक बात है, हां मगर मतभेदों को

क़ुरआन व सुन्नत की शिक्षाओं की रोशनी में ख़ास अदब और ख़ास तरीक़ों से बरतना होगा। मअरूफ (भली बातों) का निर्देश और मुनकर (बुरी बातों) से रोकना व्यक्ति और समाज दोनों की ज़िम्मेदारी है जिसका सम्बंध ईमान से है और इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता (देखें 5:78-79), और यह काम मर्दों व औरतों दोनों का अंजाम देना है (9:71)। इस मक़सद के लिए जमा होने और जुड़ने का हक़, चाहे यह अस्थाई हो या स्थाई हो हर व्यक्ति को हासिल होना चाहिए जो जुड़ना चाहता हो "एक ऐसी जमाअत (से) जो लोगों को नेकी की तरफ बुलाए, भली बातों व कामों का हुकम दे और बुराई से रोके" (3:104)

जो समाज और क़ौम अक़ीदे और भाईचारे के आधार पर एकजुट हो, जिसके व्यक्ति और वर्ग अच्छाइयों को बनाए रखने, बहतरीन आचरण को बढ़ावा देने और बुराइयों से रोकने के लिए सक्रिय हों वह एक बहतरीन उम्मत है जो इंसानियत की (भलाई और कल्याण) के लिए निकाली गयी है। यह पद मुसलमानों को अल्लाह ने केवल उनके ईमान की वजह से या मोमिनों की जमाअत से जुड़े होने की वजह से नहीं दे दिया है, बल्कि यह स्थान और श्रेष्ठता अपने व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण में ईमान की नैतिक मर्यादाओं को बरतने की जटिल कोशिशों से और समाज में वैचारिक व व्यवहारिक एकता को बनाए रखने की कोशिशों की बदौलत स्वभाविक रूप से मिलता है। मुसलमान जन्मजात रूप से अल्लाह की चहीती क़ौम नहीं हैं, न उन्हें केवल ख़ाली ईमान के दावे पर मुक्ति मिल जाएगी बल्कि जब वो एकजुटता और भाईचारे पर बने रहेंगे और व्यक्तिगत व सामाजिक मामलों में नैतिकता पर खड़े होंगे तभी प्रशंसा के पात्र बनेंगे।

पिछले पैगम्बरों पर ईमान लाने वाले लोगों या अहले किताब को यह निर्देश दिया गया था कि ईमान की नैतिक मर्यादाओं को अपनाएं क्योंकि यही वास्तविक ईमान है और ईमान का असली जौहर (मूल तत्व) है और यह नहीं कहा गया कि केवल मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दीन पर ईमान लाओ अगर एहले किताब भी ईमान ले आते तो उनके लिए बहुत अच्छा होता (3:110)।

मुहम्मद साहब सल्ल० के दीन पर ईमान होने या न होने को अपने व्यवहार में दीन को अपनाकर ही साबित किया जा सकता है। कोई व्यक्ति अगर यह समझता है कि यह दीन अल्लाह की तरफ़ से है और मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम सच कहते हैं तो उसे दीन पर और पैग़ाम पर ईमान लाना होगा, लेकिन अगर कोई यह नहीं समझता तो जबकि ऐसा समझने के लिए उस पर कोई मनोवैज्ञानिक या भौतिक लालच या व्यक्तियों अथवा समाज की तरफ़ से कोई दबाव न हो तो यह बिल्कुल स्वभाविक बात है कि वह व्यक्ति मुहम्मद साहब के दीन पर ईमान न लाए, जबकि यह बहुत ही अनैतिक बात है कि दिल व दिमाग में तो ईमान हो लेकिन व्यवहार और बर्ताव उसके विपरीत हो।

एहले किताब से जो तक़ाज़ा किया गया है वह यह कि ईमान की नैतिक मर्यादाओं को अपनाएं, और जो अहले किताब मुहम्मद साहब सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के ज़माने में अरब में मौजूद थे उनके बारे में कहा गया कि उनमें ईमान वाले भी हैं लेकिन अधिकतर लोग फ़ासिक़ (ईमान छोड़ बैठने वाले) हैं। ये लोग मुहम्मद साहब के दीन से पहले भी ऐसे ही थे, जैसा कि मौजूदा बाइबिल में है, और मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दीन पर उन का ईमान न लाना क़ुरआन के बयान पर ही आधारित नहीं है। यह वह बात है जिससे अल्लाह पर ईमान की नैतिक मर्यादाओ से उनके जुड़े होने का अंदाज़ा होता है, केवल मुहम्मद साहब के द्वारा दिए गए अक़ीदे पर ईमान लाने का ही मामला है।

आयत 3:110 के इस अर्थ की पुष्टि बाद की आयतों (3:113-115) से होती है:"ये भी सब एक जैसे नहीं हैं, इन अहले किताब में कुछ लोग (अल्लाह के हुक्म) पर बने हुए हैं जो रात के समय अल्लाह की आयतें पढ़ते हैं और (उसके आगे) सजदे करते हैं, (और) अल्लाह पर व आख़िरत के दिन पर ईमान रखते और अच्छे काम करने को कहते और बुरी बातों से मना करते हैं और नेक कामों में आगे बढ़ते हैं और यही लोग नेक हैं। और ये जिस तरह की नेकी करेंगे उसकी अनदेखी नहीं की जाएगी और अल्लाह परहेज़गारों को खूब जानता है।"

यह बात भी ज़हन में रखना चाहिए कि एहले किताब के बारे में क़ुरआन के ये बयान उन अहले किताब के बारे में थे जो उस समय अरब में रहते थे और अरब उनको जानते थे, ना कि वो सारे अहले किताब जो पूरी दुनिया में फैले हुए थे या फैले हुए हैं। यह कहा जा सकता है कि क़ुरआन ने अहले किताब के रास्ते से हटने और अपने दीन से विमुख होने पर उनकी जो निन्दा की है वह आज के ज़माने में बहुत से स्थानों पर रहने वाले मुसलमानों पर भी फिट होती है।

وَسَارِعُوْٓا اِلٰى مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَجَنَّةٍ
عَرْضُهَا السَّمٰوٰتُ وَالْاَرْضُ ۙ اُعِدَّتْ
لِلْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۳۳﴾ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِي السَّرَّآءِ وَ
الضَّرَّآءِ وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ
عَنِ النَّاسِ ؕ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۱۳۴﴾ وَ
الَّذِيْنَ اِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً اَوْ ظَلَمُوْٓا
اَنْفُسَهُمْ ذَكَرُوا اللّٰهَ فَاسْتَغْفَرُوْا
لِذُنُوْبِهِمْ ۗ وَمَنْ يَّغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا

और रब की मग़फ़िरत की तरफ़ दौड़ कर आया करो, और नीज़ जन्नत की तरफ़ जिस की वुसअत आसमानो ज़मीन की वुसअत के बराबर है, और ये जन्नत सिर्फ़ परहेज़गारों के लिए तैयार की गई है। परहेज़गार वो हैं जो फ़राग़त में तंगी में ख़र्च करते हैं, और ग़ुस्से के ज़ब्त करने वाले हैं, लोगों से दरगुज़र करने वाले हैं और अल्लाह तो नेक सुलूक करने वालों को महबूब रखता है। ये मोहसिनीन वो हैं जो जब कोई ऐसा काम कर गुज़रते हैं जिसमें ज्यादती हो जाए या अपनी ज़ात पर ज़ुल्म कर लेते हैं तो वो अल्लाह को याद करते हैं, और अपने

اللّٰهُ ۖ وَ لَمۡ يُصِرُّوۡا عَلٰى مَا فَعَلُوۡا وَ هُمۡ يَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۳۵﴾ اُولٰٓئِكَ جَزَآؤُهُمۡ مَّغۡفِرَةٌ مِّنۡ رَّبِّهِمۡ وَ جَنّٰتٌ تَجۡرِىۡ مِنۡ تَحۡتِهَا الۡاَنۡهٰرُ خٰلِدِيۡنَ فِيۡهَا ؕ وَ نِعۡمَ اَجۡرُ الۡعٰمِلِيۡنَ ﴿۱۳۶﴾

गुनाहों की माफ़ी मांगते हैं, और अल्लाह के सिवा और है भी कौन? जो गुनाहों को बख़्शता हो, और वो अपने फ़ैलों पर इसरार नहीं किया करते और वो ख़ूब जानते हैं। उन लोगों की जज़ा उनके रब की तरफ़ से बख़्शिश है और बाग़ात जिनके नीचे नहरें चलती हैं, ये हमेशा उन ही में रहेंगे, ये उन आमिलीन का सबसे ज़्यादा हसीन सिला है। (3:133-136)

इन आयतों में इस्लामी नैतिकता के कुछ अनिवार्य सिद्धांत बताए गए हैं। पहली बात यह है कि अच्छे कामों के लिए एक दूसरे से मुक़ाबला और प्रतिस्पर्धा करना अच्छी बात है, मुक़ाबला इंसानी स्वभाव में शामिल है और इसको सही दिशा देने के लिए उसकी सीमाएं निध ारित की गयी हैं और यह बताया गया है कि किस चीज़ में मुक़ाबला जायज़ है। दूसरी बात यह है कि अल्लाह का डर रखने वाला इंसान भी बहरहाल इंसान ही है, और अल्लाह पर ईमान लाने से वह फ़रिशता नहीं बन जाता। अल्लाह का तक़वा रखने वाला इंसान भी कोई ग़लत काम कर सकता है या स्वयं अपने व्यवहार में ग़लत हो सकता है, लेकिन जैसे ही उससे ग़लती हो तो वह तुरन्त अल्लाह की तरफ पलटता है और तौबा करता है और अल्लाह से अपनी ग़लती की मआफ़ी मांगता है और ग़लती को सुधार लेता है "और वो कि जब कोई खुला गुनाह या अपने प्रति कोई और बुराई कर बैठते हैं तो अल्लाह को याद करते हैं और अपने गुनाहों की बख़्शिश मांगते हैं और अल्लाह के अलावा गुनाह बख़्श भी कौन सकता है। और जान बूझ कर अपने (गलत) कामों पर अडे नहीं रहते" (3:135)। ग़लती या गुनाह से ज़्यादा बुरी बात यह है कि आदमी नैतिक रूप से उदासीन और बेशर्म हो और जान बूझ कर लगातार ग़लत बात या गुनाह पर डटा रहे। अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल० की एक हदीस में बताया गया है कि सभी इंसान ख़ताकार हैं लेकिन सब से अच्छे ख़ताकार वो हैं जो तौबा कर लें और ग़लती से बाज़ आ जाएं, और अल्लाह के अलावा कौन मआफ़ कर सकता है (39:53-54)। अल्लाह का तक़वा (ईशभय) या नेकी (सद्कर्म) यह नहीं है कि केवल कुछ बातों को माना जाए या कुछ रीतियों को बरता जाए, बल्कि हर तरह की स्थितियों में अल्लाह की हिदायत (सीख) को अपनाना अल्लाह का तक़वा है। अल्लाह से डरने वाले इंसान को अपने भौतिक साधनों, ज्ञान और ऊर्जा को अपनी क्षमता के अनुसार उन लोगों पर खर्च करना चाहिए जो उसके ज़रूरतमंद हैं, और जब किसी की ग़लत बात पर उन्हें ग़ुस्सा आए तो वो गुस्से को रोक लें और दोषियों को मआफ़ कर दें। ये गुण और नैतिक व्यवहार अल्लाह पर ईमान और तक़वा के असली जौहर (मूल तत्व) को दर्शाते हैं (और देखें 2:177), और जो लोग इन गुणों वाले होते हैं उनके लिए

अल्लाह की तरफ़ से अच्छा बदला और नेअमतें तैयार रखी गयी हैं।

إِن تَجْتَنِبُوا كَبَآئِرَ مَا تُنْهَوْنَ عَنْهُ نُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّـَٔاتِكُمْ وَ نُدْخِلْكُمْ مُّدْخَلًا كَرِيمًا ﴿٣١﴾

अगर तुम बड़े बड़े गुनाहों से परहेज़ करोगे जिनसे तुम को मना किया गया है तो हम तुम्हारे छोटे छोटे गुनाह माफ़ कर देंगे, और तुमको इज़्ज़त का मुक़ाम अता करेंगे। (4:31)

इस्लाम एक वास्तविक आदर्शवाद या एक आदर्श वास्तविकता की शिक्षा देता है। इस्लाम ने जो कुछ सिखाया है उसे एक अनिवार्य निर्देश (ईमान लाने वालों के लिए) या केवल एक प्रस्ताव (सभी इंसानों के लिए) के रूप में लिया जा सकता है, और जिस चीज़ से इस्लाम ने रोका है उसे वर्जित या अप्रिय माना जा सकता है। इसके अलावा ग़लत काम बड़े या छोटे दोनों तरह के होते हैं और अल्लाह का फ़रमान है कि जो छोटे गुनाहों (''सग़ीरह'') के अलावा बड़े बड़े गुनाहों (''कबीरह'') और बेशर्मी की बातों से बचते हैं तो बेशक तुम्हारा पालनहार बहुत बख़्शिश वाला है (53:32)। कुछ बड़े बड़े गुनाहों में भी कुछ गुनाह जैसे हत्या या बलात्कार (अथवा व्यभिचार) दूसरे बड़े गुनाहों से ज़्यादा गम्भीर होते हें। कुछ क्लासिक मुफ़स्सिरों ने यह नतीजा निकाला है कि इस्लाम ने जिन कामों का निर्देश दिया है या जिन्हें मना किया है उन्हें तीन श्रेणियों में रखा जा सकता हैःअनिवार्य, ज़रूरी और ऐच्छिक (देखें शातिबी की अलमवाफ़िक़ात)। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि छोटी छोटी ग़लतियों और गुनाह करने को जायज़ मान लिया जाए। अल्लाह का सच्चा तक़वा (डर व प्रेम) रखने वाला इंसान कभी किसी ग़लत काम को अपने लिए ठीक नहीं समझता, इसके विपरीत वह अपने को सुधारने की चिंता में लगा रहता है (75:2)। फक़ीहों (इस्लामी शरीअत के विशेषज्ञों) और नैतिकता की सीख देने वालों ने हमेशा इस बात पर भी ध्यान दिलाया है कि छोटे छोटे गुनाहों में लिप्त रहने से आदमी का विश्वास जाता रहता है और ऐसे आदमी की गवाही स्वीकार नहीं की जा सकती। इसके अलावा यह कि छोटे छोटे गुनाह करते रहने को आदत बना लेना आदमी को गम्भीर गुनाहों की तरफ़ ले जाता है।

ऐसा सच्चा और व्यवहारिक दृष्टिकोण जो हर चीज़ को या तो सफ़ेद या काले की तरह नहीं देखता, इंसानियत के विकास में बहुत महत्वपूर्ण है। यह दुनिया के इस जीवन में सही रास्ता खोलता है और आख़िरत में लोगों की बड़ी संख्या के लिए अल्लाह की तरफ़ से बख़्शिश और बदले का रास्ता खोलता है जिनसे समय समय पर ग़लतियां होती रही होंगी और परख व जांच वाली स्थितियों में कमज़ोर पड़े होंगे, कि सारे इंसानों का मामला यही है। हर काम में पूरी तरह से सही रवैया अपनाने वाले लोगों की जो बन्दगी के हर तक़ाज़े पर पूरा उतरने की कोशिश

करते हैं उनका उत्साह वर्धन और प्रशंसा की गयी है और आख़िरत में उनके लिए ऊंचे दर्जे के इनाम हैं, लेकिन उन्हें यह सिखाया गया है कि वो दूसरों को व्यवहारिकता की नज़र से देखें, जिनकी संख्या स्वभाविक रूप से अधिक है। इसके अलावा, आदर्श बात के सम्बंध में ऐसा वास्तविक व व्यवहारिक दृष्टिकोण हमेशा एक क्रमवार प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है, बजाए इसके कि आदर्श की सर्वोच्च चोटी को छू लेने पर ज़ोर दिया जाए, और जो लोग इसमें नाकाम हों वो मायूस हो कर रह जाएं। हालांकि जो कोई सोच समझ कर और अपने इरादे से गुनाह (बुरे काम) करेगा वह अल्लाह की तरफ़ से सख़्त पकड़ और सज़ा का हक़दार है लेकिन अल्लाह की रहमत उसकी हिदायत और उसकी बख़्शिश का दायरा बहुत व्यापक और असीमित है (6:147; 7:156)।

وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا
وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ بِذِى الْقُرْبٰى
وَالْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ الْجَارِ ذِى الْقُرْبٰى
وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَ الصَّاحِبِ بِالْجَنْۢبِ
وَابْنِ السَّبِيْلِ ۙ وَمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُوْرَا ۙ﴿۳۶﴾
اِلَّذِيْنَ يَبْخَلُوْنَ وَ يَاْمُرُوْنَ النَّاسَ
بِالْبُخْلِ وَ يَكْتُمُوْنَ مَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ
فَضْلِهٖ ؕ وَ اَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا
مُّهِيْنًا ۚ﴿۳۷﴾ وَالَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ رِئَآءَ
النَّاسِ وَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَ لَا بِالْيَوْمِ
الْاٰخِرِ ؕ وَ مَنْ يَّكُنِ الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا
فَسَآءَ قَرِيْنًا ﴿۳۸﴾ وَ مَا ذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا
بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ
اللّٰهُ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ﴿۳۹﴾ اِنَّ اللّٰهَ لَا
يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ ۚ وَ اِنْ تَكُ حَسَنَةً

और तुम अल्लाह ही की इबादत किया करो, और उसके साथ किसी दूसरे को शरीक ना किया करो, और अपने मां बाप के साथ, अपने क़रीबी रिश्तेदारों के साथ, यतीमों के साथ, ग़रीबों के साथ, पास वाले पड़ोस के साथ, दूर वाले पड़ोस के साथ, साहेबे मजलिस के साथ, और मुसाफ़िर के साथ, और अपने गुलामों और लौंडियों के साथ अच्छा सलूक किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो उनको महबूब नहीं रखता जो अपने आप को बड़ा समझते हैं और शेखी बघारते हैं। जो गुख़्ल करते हैं और दूसरों को भी बुख़्ल की तालीम देते हैं, और अल्लाह ने उनको अपने फ़ज़्ल से जो अता किया है उसे भी छुपा छुपा के रखते हैं, और ऐसे ही नाशुक्रों के लिए हमने ज़िल्लत की सज़ा तैयार कर रखी है। और जो लोग अपना माल लोगों के दिखाने के लिए खर्च करते हैं, और ना अल्लाह पर ईमान लाते हैं और ना ही आख़िरत के दिन पर (तो ये शैतान के साथी हैं) और जिनका साथी शैतान है तो बुरा साथी है। और उनका क्या बिगड़ जाता अगर वो अल्लाह पर ईमान ले आते और यौमे आख़िरत पर, और उसमें से कुछ खर्च भी कर लेते जो अल्लाह ने उनको अता किया है, और अल्लाह उनको ख़ूब जानता है। बिलाशुबह अल्लाह तो किसी पर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं करता और अगर एक नेकी की है तो

يُّضٰعِفْهَا وَ يُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝

अल्लाह उसको दुगना कर देगा, और अपने हां से अज्रे अज़ीम अता करेगा। (4:36-40)

अल्लाह के दीन में अल्लाह पर ईमान और अल्लाह की इबादत को अमल-ए-स्वॉलेह (अच्छे काम व लोगों के साथ अच्छे बर्ताव) से जोड़ा गया है। हर आदमी दूसरे लोगों से जुड़ा होता है। दूसरों से इस सम्बंध का सिलसिला मातापिता से शुरू होता है और फिर वो लोग जो घर व परिवार में उससे क़रीब होते या मुहल्ले और क्षेत्र में उसके निकट सम्बंधी होते हैं, जैसे पड़ोसी जो रिश्तेदार भी हो सकते हैं और ग़ैर-रिश्तेदार भी। इसके अलावा, उपरोक्त आयतों में से पहली आयत एक तरफ़ रिश्तेदारों व क़रीबी लोगों से अच्छा सम्बंध रखने के पर ज़ोर देती है और जो किसी की पत्नि हो सकती है या पति हो सकता है या कोई क़रीबी मित्र भी, साथ में काम करने वाला साथी भी, या सेवक (मुक्त कर दिया गया ग़ुलाम) भी इनमें शामिल हैं। इस्लाम ग़ुलामी (दासता) को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार नहीं करता, लेकिन उसने अपने आरम्भिक काल में कुछ ऐसी ख़ास शर्तों और नियमों के साथ ग़ुलाम रखने की इजाज़त दी जो ग़ुलामों की रिहाई और ग़ुलामी के ख़ात्मे का माध्यम थीं। इसके लिए इस्लाम ने समानता का व्यवहार करने, न्याय करने और आपसी सहयोग की शर्त लगाई, लड़ाई में क़ैद हो कर आने वालों को ही ग़ुलाम के रूप में रखने की इजाज़त दी जबकि बंधुआ व्यापार और अपहरण करके बंधुआ बनाने को वर्जित किया, ऐच्छिक रूप से भी और अनिवार्य रूप से भी बंधुआओं को छोड़ने के आधार दिए और ग़ुलामों के साथ उसी तरह का बर्ताव करने की शिक्षा दी जिस तरह का बर्ताव मालिक स्वयं अपने लिए चाहता है। इन सारी पाबन्दियों ने ग़ुलामी को बेमतलब बना कर रख दिया। अगर इन तमाम इस्लामी आदेशों को पूरा किया जाता तो ग़ुलामी का ख़ात्मा ही हो गया होता।

अच्छे बर्ताव का हुक्म केवल अपने क़रीबी रिश्तेदार या दोस्त के लिए ही नही है बल्कि पूरे समाज में हर उस व्यक्ति के साथ अच्छा बर्ताव अनिवार्य है जिससे किसी व्यक्ति का कोई मामला हो, और जो समाज में मदद और बर्ताव का ज़रूरतमंद हो जैसे अनाथ और ग़रीब लोग वग़ैरह। यह महत्वपूर्ण बात है कि इस्लाम ने मुसाफ़िरों को भी जो अपने घर और वतन से दूर हों और किसी दिक़्क़त में हों उन लोगों की सूची में शामिल किया है जो मदद और सवाब के लिए किये जाने वाले खर्चों के हक़दार होते हैं। चूंकि इस्लाम वैश्विकता और पूरे विश्व में चलत फिरत की सीख देता है (4:97,100(29:56), इसलिए ये उन लोगों की मदद पर ज़ोर देता है जो इस तरह घर से दूर यात्रा के दौरान किसी दिक़्क़त में हों।

चूंकि ज़रूरतमंदों पर ख़र्च करना इस्लाम की एक नैतिक शिक्षा है इसलिए दो तरह के अनैतिक व्यवहार की क़ुरआन में निन्दा की गयी है:एक कंजूसी और दूसरा दिखावा। हालांकि अपनी दानशीलता का दिखावा करने के लिए ज़रूरतमंद पर ख़र्च करने से ज़रूरतमंद को

तकलीफ़ नहीं पहुंचती लेकिन यह अपने आप में नैतिक रूप से ग़लत और और नैतिक आचरण के लिए नुक़सानदायक है, चाहे यह व्यक्तिगत नैतिकता का मामला हो या समाज की सामूहिक नैतिकता का। अल्लाह नियतों से पूरी तरह बाख़बर होता है और अपने न्याय के तराज़ू में रत्ती बराबर वज़न को भी नज़रअंदाज़ नहीं करता। उसकी हिदायत का उद्देश्य अच्छे कामों के द्वारा नैतिकता और नेकी को बढ़ावा देना है, और नैतिक भावना व नेकी की चाह के द्वारा अच्छे काम पर उभारना है, बजाए इसके कि लोग एक दूसरे से जलें और ईर्ष्या रखें और उनमें आपस में फूट पड़े।

وَ لْيَخْشَ الَّذِيْنَ لَوْ تَرَكُوْا مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً ضِعٰفًا خَافُوْا عَلَيْهِمْ ۪ فَلْيَتَّقُوا اللّٰهَ وَ لْيَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ؕ وَ سَيَصْلَوْنَ سَعِيْرًا ۝

क्या आपने उन लोगों को नहीं देखा जो अपने आप को बड़ा पारसा, पाकबाज़ बताते हैं, बल्कि अल्लाह ही पाक बनाता है जिसे चाहता है, और उन पर तागे के बराबर भी ज़ुल्म ना होगा। आप देखिये तो अल्लाह पर कैसी कैसी झूटी बातें लगाते हैं, और यही बात सरीह मुजरिम होने के लिए काफ़ी है। (4:49-50)

अल्लाह किसी व्यक्ति या किसी वर्ग को बिना शर्त मुक्ति का परवाना नहीं देता कि "(मुक्ति) न तो तुम्हारी आकांक्षाओं पर है और न अहले किताब की आकांक्षाओं पर। जो व्यक्ति बुरे अमल करेगा उसे उसी (तरह) का बदला दिया जाएगा और वह अल्लाह के अलावा किसी को न समर्थक देखेगा औ न सहायक पाएगा (4:123)"। अपने महान होने या अल्लाह का चहीता होने का दावा या निश्चित रूप से मुक्ति पाने का दावा करने की कोई अनुमति अल्लाह ने किसी को नहीं दी, "यहूद और ईसाई कहते हैं कि हम अल्लाह के बेटे और उसके प्यारे हैं, कहो कि फिर वह तुम्हें क्यों तुम्हारे बुरे कामों के चलते सजा देता है? (नहीं) बल्कि तुम उसके पैदा किए हुए जीवों में इंसान हो, वह जिसे चाहे बख़्शे और जिसे चाहे अज़ाब दे और आसमान और ज़मीन और जो कुछ इन दोनों में हैं सब पर अल्लाह ही की हुकूमत है और (सब को) उसी तरफ़ लोट कर जाना है"(5:18)। मुसलमान भी कभी यह दावा नहीं कर सकते कि वो बिना शर्त और हमेशा के लिए पवित्र हो चुके हैं, हर तरह से मुकम्मल (परिपूर्ण) हैं और अल्लाह के चहीते हैं। वो केवल इस आधार पर "बहतरीन उम्मत हैं जो इंसानों के लिए निकाली गयी है" कि "नेकी का हुक्म देतें हैं और बुराई से रोकते हैं" (3:110)। लेकिन यह बात कि किसी मोमिन को अपने मुक़द्दस (पवित्र) होने या अल्लाह के क़रीबी होने का घमण्ड नहीं करना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वो एक ख़ास हैसियत रखने के लिए ज़रूरी योग्यताओं को ज़ाहिर

नहीं कर सकते। इस संदर्भ में हज़रत यूसुफ ने एक अच्छी मिसाल छोड़ी है। उन्होंने मिस्र के महाराजा से कहा था: "मुझे इस देश के ख़जाने (राजकोष) पर नियुक्त कीजिए क्योंकि मैं हिफ़ाज़त भी कर सकता हूं और इस काम को जानता भी हू।" (12:55)

إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَنْ تُؤَدُّوا الْأَمَانَاتِ إِلَىٰ أَهْلِهَا وَإِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ أَنْ تَحْكُمُوا بِالْعَدْلِ ۚ إِنَّ اللَّهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ سَمِيعًا بَصِيرًا ﴿٥٨﴾

बेशक अल्लाह तुम को हुक्म देता है के हक़दारों को उनका हक़ अदा कर दिया करो, और जब तुम फ़ैसला करो लोगों के दरमियान तो इन्साफ़ से फ़ैसला किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम को बहुत ही अच्छी बात की नसीहत करता है, बेशक अल्लाह तो ख़ूब सुनने वाला और ख़ूब देखने वाला है। (4:58)

यहां ईमानदारी को उसके हर रूप में बरतने के साफ़ आदेश दिए गए हैं। अल्लाह का आदेश है कि जिस किसी को भी कोई अमानत (सुरक्षित रखने के लिए दी गयी चीज़) सोंपी जाए, चाहे वह कोई भेद की बात हो, या कोई माल हो या कोई भी क़ीमती चीज़ हो या कोई पद और ज़िम्मेदारी हो, उसे पूरी तरह सुरक्षित रखा जाए और जब उसे उसके वास्तविक हक़दार को लोटाने का समय आए तो उसे सोंप देना चाहिए। ग़ौरतलब बात यह है कि इस आयत के दूसरे हिस्से में उस व्यक्ति को आदेश दिया गया है जो लोगों पर शासक बनया गया हो, या कोई भी ज़िम्मेवारी दी गयी हो। न्याय एक नैतिक मर्यादा है और एक नियम व सिद्धांत भी है। सभी इंसानी सम्बंधों में और इंसानों के बीच हर तरह के मामलों में न्याय से काम लेना ज़रूरी है। परिवार में भी, पत्नियों के बीच भी, मातापिता और बच्चों के सम्बंधों में भी, कुंबा और बड़े परिवार के बीच, और परिवार व समुदाय के बीच भी, न्याय का बर्ताव ज़रूरी है। सार्वजनिक स्तर पर न्याय राजनीतिक मामलों में हो सकता है, न्यायिक मामलों में हो सकता है, सामाजिक व आर्थिक मामलों में हो सकता है, न्यायिक हो सकता है और अन्तर्राराष्ट्रीय हो सकता है। बाद वाली आयत (4:59) ख़ास तौर से शासक और जनता के बीच के सम्बंधों के बारे में है, और इस संदर्भ में इस किताब के अगल अध्याय में चर्चा की गयी है। पुराने फ़कीहों (शरीअत के विधि शास्त्रियों) ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि न्याय को उसकी व्यापक अवधारणा के साथ अमल में लाना और इंसानों को फ़ायदा पहुंचाना इस्लामी शरीअत के मुख्य उद्देश्यों में से हैं।

مَنْ يَشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً يَكُنْ لَهُ نَصِيبٌ مِنْهَا ۖ وَمَنْ يَشْفَعْ شَفَاعَةً

जो अच्छी बात की सिफ़ारिश करेगा उसको भी सवाब में हिस्सा मिलेगा और जो बुरी बात की सिफ़ारिश करेगा उसको उसके अज़ाब में से मिलेगा और अल्लाह तो हर

चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (4:85)

سَيِّئَةً يَّكُنْ لَّهٗ كِفْلٌ مِّنْهَا ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ مُّقِيْتًا ۝۸۵

क़ुरआन मोमिनों को यह सिखाता है कि वो हर मामले में जहां तक हो सके सकारात्मक और नैतिक दृष्टिकोण अपनाएं। किसी घटना का साक्षी बनने वाले पर यह ज़िम्मेदारी आ जाती है कि वह गवाही दे और सच बात बोले (2:282-283; 4:112,114,135; 5:8,160-168; 22:30; 25:72; 85:2)। मुसलमानों को अच्छी बातों का आदेश देने और बुरी बातों से रोकने वाली उम्मत बनया गया है। इसलिए ईमान वालों से कहा गया है कि वो इस्लाम की नैतिक मर्यादाओं की सीमा में स्वयं को अच्छे कामों के लिए प्रस्तुत करें और न्याय व अच्छाई के समर्थन में खड़े हों। जैसे परिवार में या समुदाय में मेल-मिलाप कराने की प्रेरणा दी गयी है और इस काम पर अच्छे बदले का वायदा किया गया है (2:182,224; 4:128; 8:1; 49:9-10)। लेकिन बहुत से लोग ऐसे हैं जो इंसानी सम्बंधों को बिगाड़ने का काम करते हैं और उनकी बात या उनके काम से झगड़े खड़े होते हैं।

और आप उन की तरफ़ से कोई जवाब देही ना किया करें जो अपनी ही ज़ात से ख़्यानत करते हैं, बिला शुबह अल्लाह उसको क़तई पसंद नहीं फ़रमाता जो बड़ा ख़्यानत करने वाला बड़ा गुनाह करने वाला हो। जो लोग आदमियों से डर कर अपने गुनाह छुपाते हैं लेकिन अल्लाह से नहीं शर्माते हालांके वो उस वक़्त उनके पास होता है, जब वो मर्ज़ी-ए-इलाही के ख़िलाफ़ गुफ़्तगू के मुताल्लिक़ तदबीरें करते हैं, और अल्लाह उनके सारे आमाल अपने आहाते में पूरे तौर पर लिये हुए है। हाँ तुम ऐसे हो के तुमने दुनियावी ज़िन्दगी में तो उनकी तरफ़ से जवाबदेही की बातें कर लीं सो अल्लाह के सामने क़यामत के दिन उनकी तरफ़ से कौन जवाबदेही करेगा या वो कौन होगा जो उनके काम बनाए। और जो कोई बुराई करे या अपने ऊपर ज़ुल्म करे फिर वो अल्लाह से माफ़ी चाहे तो वो अल्लाह को बड़ी मग़फ़िरत वाला और बड़ी रहमत वाला पाएगा। और जो कोई गुनाह का काम करता है तो वो बस उसकी ही ज़ात पर उसका असर पहुंचता है,

وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِيْنَ يَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَهُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ خَوَّانًا اَثِيْمًا ۝۱۰۷ يَّسْتَخْفُوْنَ مِنَ النَّاسِ وَلَا يَسْتَخْفُوْنَ مِنَ اللّٰهِ وَهُوَ مَعَهُمْ اِذْ يُبَيِّتُوْنَ مَا لَا يَرْضٰى مِنَ الْقَوْلِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطًا ۝۱۰۸ هٰٓاَنْتُمْ هٰٓؤُلَاۗءِ جٰدَلْتُمْ عَنْهُمْ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۣ فَمَنْ يُّجَادِلُ اللّٰهَ عَنْهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ اَمْ مَّنْ يَّكُوْنُ عَلَيْهِمْ وَكِيْلًا ۝۱۰۹ وَمَنْ يَّعْمَلْ سُوْۗءًا اَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهٗ ثُمَّ يَسْتَغْفِرِ اللّٰهَ يَجِدِ اللّٰهَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝۱۱۰ وَمَنْ يَّكْسِبْ اِثْمًا فَاِنَّمَا يَكْسِبُهٗ عَلٰي نَفْسِهٖ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝۱۱۱ وَمَنْ

يَّكْسِبْ خَطِيْٓئَةً اَوْ اِثْمًا ثُمَّ يَرْمِ بِهٖ بَرِيْٓـًٔا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَّ اِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿۱۱۲﴾ وَ لَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ وَ رَحْمَتُهٗ لَهَمَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ اَنْ يُّضِلُّوْكَ ؕ وَ مَا يُضِلُّوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَ مَا يَضُرُّوْنَكَ مِنْ شَيْءٍ ؕ وَ اَنْزَلَ اللّٰهُ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ وَ الْحِكْمَةَ وَ عَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُنْ تَعْلَمُ ؕ وَ كَانَ فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ عَظِيْمًا ﴿۱۱۳﴾ لَا خَيْرَ فِيْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰىهُمْ اِلَّا مَنْ اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍۭ بَيْنَ النَّاسِ ؕ وَ مَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿۱۱۴﴾ وَ مَنْ يُّشَاقِقِ الرَّسُوْلَ مِنْۢ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدٰى وَ يَتَّبِعْ غَيْرَ سَبِيْلِ الْمُؤْمِنِيْنَ نُوَلِّهٖ مَا تَوَلّٰى وَ نُصْلِهٖ جَهَنَّمَ ؕ وَ سَآءَتْ مَصِيْرًا ﴿۱۱۵﴾

और अल्लाह बड़ा ही जानने वाला और बड़ी हिकमतों वाला है। और जो कोई छोटा गुनाह करे या बड़ा गुनाह और फ़िर उसकी तोहमत किसी बेगुनाह पर लगा दे सो उसने बड़ा भारी बोहतान और सरीह गुनाह अपने ऊपर लादा। और अगर आप पर अल्लाह का फ़ज्ल और रहमत ना हो तो उन लोगों में से एक गिरोह ने तो आप को ग़लती में डाल देने का इरादा कर लिया था और वो ग़लती में नहीं डास सकते मगर सिर्फ़ अपनी जानों को और आपको वो ज़र्रा भर नुक़सान नहीं पहुंचा सकते, और अल्लाह ने आप पर किताब और इल्म की बातें नाज़िल फ़रमाई हैं और आपको वो बातें बतलाई हैं, जो आप ना जानते थे, और आप पर अल्लाह का बड़ा फ़ज्ल है। आम लोगों की अक्सर सरगोशियों में ख़ैर नहीं होती, मगर जो ख़ैरात की, किसी नेक काम की या लोगों में बाहम इस्लाम की तरग़ीब देता है, और जो ये काम करेगा महज़ अल्लाह की रज़ा के लिये सो हम बहुत जल्द उसको उन कामों का बड़ा सिल अता फ़रमायेंगे। और जो रसूल की मुखालिफ़त करेगा जबकि उस पर अम्रे हक़ ज़ाहिर हो चुका था, और मुसलमानों का रास्ता छोड़ कर दूसरे रास्ते पर हो लिया तो हम भी उसको वो ही करने देंगे जो कुछ वो करता है, और हम उसको जहन्नुम में दाख़िल करेंगे और वो जगह जाने के लिए बहुत बुरी है। (4:107-115)

यह बात कि इंसान खुद अपने साथ धोखा करता है, क़ुरआन की नैतिक शिक्षाओं के बयान में एक अनिवार्य तत्व है। खुद को धोखे में रखना, स्वार्थपूर्ति में लगा रहना, अदूरदर्शिता, लालच और दूसरी नैतिक बुराइयां एक जटिल नैतिक रोग बन जाता है। ऐसी ख़राबियों से ग्रस्त व्यक्ति यह समझता रहता है कि दूसरे लोग धोखे में हैं और बात की गहराई तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। जो लोग स्वयं को धोखा देते हैं वो खुल कर नहीं बोलते, वो गुप्त योजनाएं बनातें हैं और सोचते हैं कि लोगों के सामने किस तरह से आएं। इस तरह के दोग़लेपन के जीवन से इंसान खुद अपना महत्व और विश्वास खो देता है, और ख़ुद धोखे में पड़ा रहने से इंसान का मूल

स्वभाव समाप्त हो जाता है। इस तरह का धोखेबाज़ व्यक्ति अपने दोष स्वीकार नहीं करता और दूसरों पर आरोप लगा कर अनैतिक व्यवहार करता है और इस तरह झूट और कायरता से काम लेता है। इस तरह जो कोई अपने आप को और दूसरों को नुक़सान पहुंचाता है वह इन बुराइयों में दिन ब दिन धंसता चला जाता है। इस आत्म भटकाव से बचने के लिए क़ुरआन कड़े शब्दों में चेताता है।

यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि जिस अवसर पर यह आयतें उतरी थीं वह कुछ कहावतों के अनुसार वह मौका था जब कुछ अरबवासियों ने जो इस्लाम को अपना चुके थे एक निर्दोष यहूदी पर चोरी का आरोप लगाया था। इस घटना को अल्लाह ने मुसलमानों को यह निर्देश देने के लिए इस्तेमाल किया कि केवल अफ़वाहों के आधार पर न्याय के तक़ाज़ों की अनदेखी न करें। और उन लोगों के मुक़ाबले पर जो ख़ुद को धोखे में रखे हुए हैं न्याय के तक़ाज़ों को किस तरह पूरा किया जाए। दूसरी तरफ़ क़ुरआन उन लोगों की तसवीर प्रस्तुत करता है जो ख़ुद को सकारात्मक गतिविधियों में लगाते हैं और खुल कर काम करते हैं, और इस तरह समाज में सदभाव और भलाइयों को फैलाते हैं और एक दूसरे से कट जाने वाले लोगों की बीच मेलमिलाप कराते हैं (4:114)। इस तरह के सामाजिक और नैतिक स्वयंसेवी जो अल्लाह की दी हुई भावना से यह सब करते हैं उनकी प्रशंसा की गयी है और आख़िरत में उन्हें बहुत अधिक बदला दिया जाएगा।

उपरोक्त आयतों में इस्लाम की नैतिक और क़ानूनी शिक्षाओं से सम्बंधित एक और बड़ी बात कही गयी है। नैतिकता और नियम की बुनियादी बातों को हालांकि इंसानी अक़ल और चेतना से समझा जा सकता है लेकिन इसके लिए विशेष नियम बनना चाहिएं और जनता को बताए जाने चाहिएं ताकि एक सच्ची नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी के लिए आधार बन सके। अल्लाह की हिदायत इतनी साफ़ और निश्चित ढंग से मालूम होना चाहिए कि लोग उस पर अमल करने के ज़िम्मेदार बन सकें (4:115)। इस हिदायत के उल्लंघन का दोष इन शिक्षाओं से जनता के परिचित कराने के बाद ही आरोपित हो सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में ही यह तय हो सकता है कि उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जान बूझ कर और इच्छापूर्वक पैग़म्बर और पैग़म्बर के अनुयायियों के रास्ते से हट रहा है। इस्लामी नैतिक मर्यादाओं में यह महत्वपूर्ण सिद्धांत इस्लामी समाज की सभी शिक्षण संस्थाओं जैसे परिवार, कालेज व मदरसे, सिखाने व संवारने के अन्य केन्द्र, जनसंचार माध्यम (मास मीडिया) और सरकार वग़ैरह पर यह ज़िम्मेदारी डालता है।

لَيْسَ بِاَمَانِيِّكُمْ وَ لَآ اَمَانِيِّ اَهْلِ

ना तुम्हारी तमन्नाओं से काम चलता है और ना अहले किताब की तमन्नाओं से, जो कोई बुरा काम करेगा वो

الْكِتٰبِ ؕ مَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا يُّجْزَ بِهٖ ۙ وَ لَا يَجِدْ لَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا وَّ لَا نَصِيْرًا ﴿۱۲۳﴾

उसके बदले सज़ा पायेगा, और उसको अल्लाह के सिवा कोई दोस्त ना मिलेगा और ना कोई मददगार। (4:123)

क़ुरआन के अनुसार, फैसले वाले दिन हर व्यक्ति की जांच उसकी अपनी क्षमताओं के मुताबिक होगी (19:80-58)। किसी भी अक़ीदे वाले किसी समुदाय के लिए कोई विशेष छूट नहीं है, यहां तक कि सच्चाई में विश्वास रखने वाले समुदाय के लिए भी क्योंकि एक सच्चा ईमान इंसान के इरादों और कर्मों या उसकी अन्दरूनी और बाहरी स्थिति पर प्रभाव डालता है और यह चीज़ अल्लाह के फ़ैसले और बदले में एक निर्णायक तत्व होगी। इसलिए अल्लाह की हिदायत में नियत और कर्म बराबर से अपेक्षित हैं और उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता (क़ुरआन की बहुत आयतों में ईमान और स्वॉलेह अमल (सद्कर्म) के आपसी सम्बंध के लिए देखें 2:25,62,82; 3:57; 5:69; 16:97; 18:30,88,107; 34:37; 40:40; और देखें 7:42; 9:94,105; 10:14; 16:32; 36:54; 42:15; 99:7-8)। इन आयतों में अल्लाह की हिदायत पर ईमान रखने वाले सभी लोगों को चाहे वो मुसलमान हों या वह अहले किताब जो पिछली आसमानी किताबों पर यक़ीन रखते हैं ख़बरदार किया गया है कि वो केवल अपनी सामुदायिक पहचान के आधार पर अपनी सामूहिक मुक्ति या इनाम के दावेदार न बनें।

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا ثُمَّ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا ثُمَّ ازْدَادُوْا كُفْرًا لَّمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَ لَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيْلًا ﴿۱۳۷﴾ بَشِّرِ الْمُنٰفِقِيْنَ بِاَنَّ لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمَا ۙ﴿۱۳۸﴾ الَّذِيْنَ يَتَّخِذُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَيَبْتَغُوْنَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ فَاِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ﴿۱۳۹﴾ وَ قَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَ يُسْتَهْزَاُ بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ۚ اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَ الْكٰفِرِيْنَ فِيْ جَهَنَّمَ جَمِيْعَا ۙ﴿۱۴۰﴾

बिलाशुबहः जो मुसलमान हुए, फ़िर काफ़िर हो गए, फ़िर मुसलमान हुए, फ़िर काफ़िर हो गए, फ़िर कुफ़्र में बढ़ते चले गए, तो अल्लाह ऐसों को हरगिज़ ना बख़्शेंगे और ना उनको रास्ता दिखायेंगे। मुनाफ़िक़ीन को ये खुशख़बरी सुना दीजिये के उनके लिये बड़ा दर्दनाक अज़ाब है। वो मुनाफ़िक़ जो मुसलमानों को छोड़ कर काफ़िरों को दोस्त बनाते है, क्या उनके पास मोअज़्ज़िज़ रहना चाहते हैं, सो एज़ाज़ तो सारा अल्लाह ही के पास है। और अल्लाह इस किताब में ये हुक्म करता है के जब तुम अहकामे इलाहिया के साथ कुफ़्र और मज़ाक़ होता सुनो तो उन लोगों के पास मत बैठा करो जब तक के वो कोई दूसरी बात शुरू ना कर दें। इस हालत में तो तुम उन ही जैसे हो जाओगे, बिला शुबह अल्लाह मुनाफ़िक़ों और काफ़िरों को सबको दोज़ख में जमा कर देगा। (4:137-140)

الَّذِيْنَ يَتَرَبَّصُوْنَ بِكُمْ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ
فَتْحٌ مِّنَ اللّٰهِ قَالُوْٓا اَلَمْ نَكُنْ مَّعَكُمْ ۖ وَ
اِنْ كَانَ لِلْكٰفِرِيْنَ نَصِيْبٌ ۙ قَالُوْٓا اَلَمْ
نَسْتَحْوِذْ عَلَيْكُمْ وَ نَمْنَعْكُمْ مِّنَ
الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ ؕ وَ لَنْ يَّجْعَلَ اللّٰهُ لِلْكٰفِرِيْنَ عَلَى
الْمُؤْمِنِيْنَ سَبِيْلًا ﴿۱۴۱﴾ اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ
يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ هُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَ اِذَا
قَامُوْٓا اِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ
النَّاسَ وَ لَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿۱۴۲﴾
يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْكٰفِرِيْنَ
اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَتُرِيْدُوْنَ
اَنْ تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ﴿۱۴۴﴾
اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ فِى الدَّرْكِ الْاَسْفَلِ مِنَ
النَّارِ ۚ وَ لَنْ تَجِدَ لَهُمْ نَصِيْرًا ﴿۱۴۵﴾ اِلَّا
الَّذِيْنَ تَابُوْا وَ اَصْلَحُوْا وَ اعْتَصَمُوْا بِاللّٰهِ وَ
اَخْلَصُوْا دِيْنَهُمْ لِلّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ مَعَ
الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ وَ سَوْفَ يُؤْتِ اللّٰهُ
الْمُؤْمِنِيْنَ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿۱۴۶﴾

और ये लोग तुम पर उफ्ताद पड़ने का इन्तिज़ार कर रहे हैं, फ़िर अगर अल्लाह की तरफ़ से तुम्हारी फ़तेह हो जाए तो बातें बनाते हैं के हम तुम्हारे साथ ना थे और अगर काफ़िरों को कुछ हिस्सा मिल गया तो बातें बनाते हैं के क्या हम तुम पर ग़ालिब ना आने लगे थे और क्या हमने तुमको मुसलमानों से बचा नहीं लिया, सो अल्लाह तुम्हारा और उनका क़यामत में फ़ैसला कर देगा, और अल्लाह हरगिज़ काफ़िरों को मुसलमानों के मुक़ाबले में ग़ालिब ना करेगा। बिलाशुबहः मुनाफ़िक़ लोग अल्लाह को धोका देते हैं, वो उस चाल की उनको सज़ा देने वाला है, और जब वो नमाज़ को खड़े होते हैं तो बहुत काहिली के साथ खड़े होते हैं, सिर्फ़ आदमियों को दिखाते हैं, और अल्लाह का ज़िक्र नहीं करते, मगर बहुत ही मुख़्तसर। वो दोनों के दरमियान में मोअल्लिक़ हो रहे हैं, ना ही इधर के ना ही उधर के, बीच में लटके हुए हैं और जिसको अल्लाह गुमराही में डाल दे तो तुम ऐसे शख़्स के लिये कोई सबील ना पाओगे। मोमिनों! तुम मोमिनीन को छोड़ कर काफ़िरों को दोस्त मत बनाओ, क्या तुम चाहते हो के अल्लाह की खुली दलील को अपने ऊपर क़ायम कर लो। बिलाशुबह मुनाफ़िक़ीन दोज़ख के सबसे नीचे के तबक़े में जायेंगे, और तुम उनका कोई मददगार ना पाओगे। मगर जो तौबा कर लें और इस्लाह कर लें, और अल्लाह पर यक़ीन कर लें और अपने दीन को ख़ालिस अल्लाह के लिए कर लें, तो ये लोग मोमिनीन के साथ होंगे और मोमिनीन को अल्लाह जल्द अज्रे अज़ीम अता फ़रमायेगा। (4:141-146)

जो लोग मुसलमान होने का दावा करते हैं जबकि वो इस्लाम और मुसलमानों से घृणा करते हैं और उनके विरुध लगातार गुप्त तरीक़े से सक्रिय रहते हैं उनका क़ुरआन में पर्दा फाश किया गया है और उनकी निन्दा की गयी है (2:8-20; 4:88-91; 9:42-59,61-69,73-98, 101, 107-110, 124-125; 24:47-50; 33:12-20,60-62; 47:20-32; 48:6,15-16; 58:14-19;

59:11-12; 60:1-6; 63:1-11)। दोग़लापन व्यक्तिगत रूप से इंसान के अपने लिए घातक है कि दोग़ला इंसान बे-ईमानी से और छुप छुपाक कर काम करता है और साथ ही यह पूरे समाज के लिए भी नुक़सानदायक है। दोग़लेपन का यह रोग मदीने में बहुत गम्भीर रूप ले चुका था क्योंकि उस समय मुसलमानों को किसी हद तक सत्ता और शक्ति प्राप्त हो गयी थी और उनका एक नागरिक राज्य स्थापित हो चुका था। मुसलमानों के अन्दरूनी दुशमन मदीना में उनकी लोकप्रियता को नहीं रोक पाए थे इसलिए उन्होंने खुद भी मुसलमान होने का चौला औढ़ लिया था हालांकि अन्दर ही अन्दर वो इस्लाम के दुशमनों की मदद करने में लगे हुए थे। क़ुरआन ने दुशमनों के साथ उनकी सांठगांठ को बेनक़ाब किया (59:11-12), और इस तरह उनके दोमुंहेपन और अवसरवादिता का परदा फाश किया। ऐसे लोगों को क़ुरआन ने उन लोगों से भी बदतर बताया जो खुल कर इस्लाम का इंकार कर रहे थे और क़ुर पर बने हुए थे (4:137-145), उनकी कायरता, धोखेबाज़ी और झूट को सामने लाया गया (9:42-45), और मुसलमानों को ख़बरदार किया कि उन पर भरोसा न करें और जो कुछ वो दिखावा करते हैं उन्हें वैसा न मानें (9:42-43,56-57,62,64-68,83,86-87,93-98,101; 47:20-32; 63:1-6)। ये अन्दरूनी दुशमन मुसलमानों में फूट डालने के लिए खुल कर भी सामने आ गए थे और उन्होंने खुद अपनी अलग से एक मस्जिद बना ली थी जहां ये साजिशें रचने के लिए एक दूसरे से मिलते थे (9:107-110)।

मुनाफिकों (दोगले लोगों) की पहचान हालांकि उनके कुछ कर्तूतों और गतिविधियों से हो जाती है (47:29-30), लेकिन क़ुरआन ने उनको केवल चेताया (33:60-62) क्योंकि इस्लाम के प्रसार और मुसलमानों के हित में शायद यह नहीं था कि लड़ाई का एक और मोर्चा उन लोगों के विरुध खोला जाए जो स्वयं को मुसलमान दिखा रहे थे जबकि उनके दिल में ईमान नहीं था। इसके अलावा इस्लाम की न्यायिक व्यवस्था का तक़ाज़ा भी यह है कि किसी के सम्बंध में फैसले और कार्रवाई के लिए ठोस गवाही ज़रूरी है जबकि उन लोगों के विरुध कोई ठोस गवाही लाना लगभग नामुमकिन है जो ऊपर से तो मुसलमान होने का दिखावा करते हों और मोमिनों के साथ शामिल हों लेकिन उनके दिल में खोट और धोखा छुपा हो। इस तरह की स्थितियों के मद्देनजर क़ुरआन मुनाफ़िक़ों (दोग़ले लोगों) को यह अवसर देता है कि वो स्वयं को सुधार लें और ईमान पर जम जाएं (4:164-167)। अल्लाह के दीन में इंसान के अंदर बदलाव की सम्भावना को ख़ारिज नहीं किया गया है हालांकि क़ुरआन की लगभग 150 आयतों में दोगले चरित्र और दोग़ले लोगों की निन्दा की गयी है और उनको बे नक़ाब किया गया है।

لَا يُحِبُّ اللّٰهُ الْجَهْرَ بِالسُّوْٓءِ مِنَ الْقَوْلِ
اِلَّا مَنْ ظُلِمَ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ سَمِيْعًا عَلِيْمًا ﴿۱۴۸﴾

अल्लाह ज़बान पर बुरी बात लाने को पसंद नहीं करता सिवाए मज़लूम के, और अल्लाह ख़ूब सुनने और जानने वाला है। (4:148)

इस आयत में क़ुरआन इस्लाम की न्यायिक व्यवस्था के एक साधारण सिद्धांत और नैतिक नियम को बयान करता है और मोमिनों में बे हयाई फैलाने (अर्थात दुष्कर्म के आरोप लगाने या दुष्कर्मों का प्रचार करने) वालों (24:19) को चेतावनी दी गयी है। किसी के विरुध कोई आरोप लगाने वाला जब तक अपने आरोप को सि) नहीं कर सकता तब तक वह इस आरोप को लोगों के सामने बयान नहीं कर सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में स्वयं आरोप का प्रचार करने वाला दुष्कर्मों के प्रचार का दोषी माना जाएगा। इस आयत में दूसरों के विरुध सार्वजनिक रूप से कोई भी बात कह देने की मनाही बेहयाई की मनाही से भी कठोर अंदाज में की गयी है। इस चेतावनी को चाहे क़ानून का रूप देकर लागू किया जाए या नैतिक प्रशिक्षण और व्यवहारिक प्रेरणा तक सीमित रखा जाए हर हाल में यह चेतावनी हर व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए और अफ़वाहों से लोगों को पहुंचने वाले नुक़सान से बचाने का भरोसा देने के लिए एक ज़रूरी बन्दोबस्त देती है। नैतिक सुरक्षा की यह व्यवस्था सामूहिक रूप से वर्गों को भी अपने दायरे में लेती है और इसके तहत किसी वर्ग के विरुध धार्मिक, नस्लीय, व्यवसायिक या किसी दूसरे आधार पर नफ़रत और दुशमनी को फैलाना या उसे सामूहिक रूप से बदनाम करना भी नैतिक और कानूनी रूप से मना है (49:11-12)।

दूसरी तरफ़ यह भी जरूरी है कि किसी पीडित पक्ष को अपने बचाव का मौक़ा दिया जाए। चुनांचि उत्पीड़न और अत्याचार का निशाना बनने वाला पक्ष अपने हितों की सुरक्षा के लिए अधिकारियों से शिकायत कर सकता है। ऐसी शिकायतें सार्वजनिक रूप से आरोप के रूप में भी ज़ाहिर की जा सकती हैं लेकिन हर हाल में ऐसे उचित माध्यम से हों जो मानव अधिकारों की रक्षा के लिए उपलब्ध हों। किसी मामले में अगर कोई सरकारी अधिकारी या कोई राजनीतिक व्यक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग करे और पीड़ित पक्ष पूरा समाज हो तो ऐसे मामले में भी सार्वजनिक रूप से उत्पीड़न और अत्याचार का आरोप लगाया जा सकता है यदि उसके लिए उचित आधार मौजूद हो और किसी को बदनाम करने का उद्देश्य न हो, चाहे इसके लिए कोई ऐसा ठोस सुबूत मौजूद न हो जिसे अदालत में प्रस्तुत किया जा सकता हो। ऐसे संवेदनशील मामलों में व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकारों के बीच हमेशा एक संतुलन बने रहना चाहिए।

إِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَ الْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ وَ يَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَ عَنِ الصَّلٰوةِ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ﴿٩١﴾

बस शैतान तो यही चाहता है के तुमको शराब और जुऐ में डालकर तुममें दुश्मनी और कीना डाल दे, और तुमको अल्लाह की याद और नमाज़ से रोक दे, पस तुम इन कामों से अब भी बाज़ आओगे। (5:91)

इंसानी तरक़्क़ी और भौतिक विकास के लिए क़ानूनी बन्दोबस्त करके इंसानी अक़्ल और इंसान के रोज़गार के साधन की हिफ़ाज़त करना इंसानी नस्ल और दुनिया में उसकी कारकर्दगी के लिए ज़रूरी है। क़ुरआन व पैग़म्बर साहब की शिक्षाओं में इसके इशारे मौजूद हैं और फक़ीहों (इस्लाम के विधि शास्त्रियों) ने ये नतीजे निकाले हैं कि यह चीज़ (यानि इंसानी अक़्ल की हिफ़ाज़त) शरीअत के ख़ास उद्देश्यों में से है। नशे का सेवन करने के सभी तरीक़े, चाहे शराब पीना हो या नशे की दवाएं खाना, इंजेक्शन लगवाना या अन्य दूसरे साधन हों इंसानी अक़्ल को अस्थाई रूप से या स्थाई रूप से प्रभावित और बेकार करती है और इन चीज़ों से रोकने के लिए कठोर सज़ाओं और कड़े उपायों की व्यवस्था भी पर्याप्त न होगी जब तक नशीली वस्तुओं की आपूर्ति और उपल्बधता के लिए क़ानूनी इजाज़त मिली रहेगी और उन पर क़ानूनी रूप से रोक नहीं लगाई जाएगी। इसलिए इन चीज़ों का सैद्धांतिक रूप से वर्जित होना ज़रूरी है, हर आदमी के लिए, हर औरत के लिए, और हर उम्र के इंसान के लिए। यह एक विरोधाभासी व्यवहार है कि एक तरफ़ तो इंसानी अक़्ल को एक बहुत बड़ी शक्ति और महान चीज़ माना जाए और दूसरी तरफ़ अक़्ल को माउफ़ करने और इंसान को निष्क्रिय कर देने और उसकी गतिविधियों को प्रभावित करने वाली चीज़ें खुले रूप से उपब्ध भी हों। सोच व विचार और आत्मनियंत्रण के बग़ैर या उनकी कमज़ोरी के चलते लोग अपनी धार्मिक और नैतिक जिम्मेदारियों और अपने वचन व इरादे से बेख़बर हो जाते हैं। इस हालत में उन्हें एक दूसरे के विरुध आसानी से भड़काया जा सकता है जिससे उनके सामाजिक सम्बंध और एकता व एकजुटता को नुक़सान पहुंचता है। जहां तक जुए और सट्टेबाज़ी व इस तरह के अन्य कामों का सम्बंध है, यह भौतिक व इंसानी तरक़्क़ी के लिए काम करने की नैतिक मर्यादाओं के विपरीत हैं और जनता के हितों और सामाजिक न्याय के भी विपरीत हैं।

यह एक मानी गयी सच्चाई है कि नशीले पदार्थों का सेवन और जुए बाजी इंसान की बौद्धिक, मानसिक और शरीरिक उर्जा को गम्भीर नुक़सान पहुंचाती है और विक्सित या विकास शील देशों में उनकी क़ानूनी या ग़ैरकानूनी आपूर्ति से ज़बरदस्त नुक़सान पहुंच रहा है। नशे में गाड़ी चलाना, शराब के नशे में मस्त रहना या नशीली वस्तुओं का सेवन आज की दुनिया में सबसे अधिक ज्वलंत समस्याओं में से है, और नुकसानदायक चीज़ों की सशर्त आपूर्ति भी एक अव्यवहारिक बात सि) हो चुकी है। बुराई का दरवाजा पूरी तरह बन्द कर देना ही व्यक्तिगत और सामाजिक हितों के लिए सबसे अच्छी नीति है।

قُلْ لَّا يَسْتَوِي الْخَبِيْثُ وَ الطَّيِّبُ وَ لَوْ
اَعْجَبَكَ كَثْرَةُ الْخَبِيْثِ ۚ فَاتَّقُوا اللّٰهَ يٰۤاُولِي

आप फ़रमा दीजिये के नापाक और पाक बराबर नहीं है गोके नापाक की कसरत तुझ को तआज्जुब में डाल दे, तो तुम अल्लाह ही से डरा करो ऐ अक़्ल वालो ताके तुम

الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَسْـَٔلُوْا عَنْ اَشْيَآءَ اِنْ تُبْدَ لَكُمْ تَسُؤْكُمْ ۚ وَ اِنْ تَسْـَٔلُوْا عَنْهَا حِيْنَ يُنَزَّلُ الْقُرْاٰنُ تُبْدَ لَكُمْ ؕ عَفَا اللّٰهُ عَنْهَا ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ۝

सब कामयाब हो जाओ। मोमिनों! ऐसी बातें ना पूछा करो के अगर तुम पर वो ज़ाहिर कर दी जायें तो तुम को बुरी मालूम हों, और अगर तुम नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त दरयाफ़्त करोगे तो तुम पर ज़ाहिर कर दी जायेंगी, अल्लाह ने गुज़िश्ता सवालात माफ़ कर दिये। और अल्लाह तो बड़ा ही बख़्शने वाला और हिल्म वाला है। (5:100-101)

सच्चाई और अच्छाई का ख़ुद अपना एक महत्व है इस बात से अलग कि उसे अपनाने वालों की संख्या कितनी है। और बुराई व दुराचार त्याग देने की चीज़ है हालांकि बहुत से लोग बुराई और दुराचार में और उसके विभिन्न रूपों में लिप्त होते हैं। जो लोग अल्लाह की हिदायत के तलबगार होते हैं उन्हें हर बात के लिए क़ानून की ज़रूरत नहीं होती कि क़ानूनी रूप से किसी बात की अनुमति हो या पाबन्दी हो। अब यह बात सर्वविदित है कि एक विक्सित समाज सामाजिक सुधार के लिए घरेलू प्रशिक्षण, धार्मिक और संसारिक शिक्षा, जनसंचार माध्यम, सामाजिक जागरूकता और परम्पराओं पर निर्भर होता है बजाए क़ानून और ज़बरदस्ती लागू होने के। पैग़म्बर साहब ने फ़रमायाः"मुझ से उन बातों के बारे में न पूछा करो जिनके बारे में मैं ने कुछ नहीं कहा, और अल्लाह ने तुम्हें जो आदेश दिए हैं उनसे कभी नज़र न चुराओ, सीमाएं बता दी हैं जिन्हें कभी न लांघो, और अपनी रहमत से कुछ ख़ास मामले जान बूझ कर छोड़ दिए हैं इसलिए उनके बारे में सवाल न किया करो" (आयत 105 की व्याख्या में इब्ने कसीर ने अपनी किताब में यह बात नकल की है)। मोमिनों को यह जानना होगा कि अक़ीदों और इबादतों के मामलों को छोड़ कर जीवन की आम गतिविधियों के लिए इजाज़त होना एक आम सिद्धांत है, जब तक कि किसी चीज़ को विशेष रूप से चिन्हित करके मना न किया गया हो, और इस तरह निषेध चीज़ों का दायरा सीमित है। इसके अलावा उन्हें यह बात भी ज़हन में रखना चाहिए कि शिक्षा व प्रशिक्षण और नैतिक प्रेरणा क़ानून बनाने और उसे लागू करने से ज़्यादा प्रभावपूर्ण साधन हैं, और अल्लाह के सामने जवाबदेही का अहसास इंसान को अकेलेपन में भी होता है जहां कोई क़ानून और क़ानून को लागू करने वाला नहीं होता।

وَ لَا تَسُبُّوا الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَيَسُبُّوا اللّٰهَ عَدْوًۢا بِغَيْرِ عِلْمٍ ؕ كَذٰلِكَ زَيَّنَّا لِكُلِّ اُمَّةٍ عَمَلَهُمْ ۪ ثُمَّ اِلٰى رَبِّهِمْ

और उनको बुरा ना कहा करो जिनकी अल्लाह के सिवा ये इबादत करते हैं, क्योंके वो फ़िर अल्लाह को बुरा कहेंगे अपनी जहालत की वजह से हद से आगे निकल कर, उसी तरह हमने हर तरीक़े वालों को उनका अमल मरग़ूब बना रखा है, फ़िर उन सबको अपने रब ही तरफ़

مَّرْجِعُهُمْ فَيُنَبِّئُهُمْ بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝١٠٨

जाना है, सो वो उनको बता देगा जो वो किया करते थे। (6:108)

दूसरों से संवाद करते हुए एक मोमिन उनसे तार्किक और प्रभावी बातचीत तब तक ही कर सकता है जब तक यह संवाद सकारात्मक और निर्माणकारी ढंग से जारी रहे और आपसी समझबूझ के लिए उपयोगी हो, लेकिन उसे ऐसी तकरार से बचना चाहिए जो उत्तेजना पैदा करने वाली और आक्रामक हो (29:46)। अल्लाह को छोड़ कर जिन ख़ुदाओं को लोग पुकारते हैं उनकी या ख़ुद पुकारने वालों की भर्त्सना करना न तो तार्किक बात है और न युक्तिपूर्ण, क्योंकि इससे इस्लाम और उसके अनुयायियों की छवि प्रभावित होती है और ये चीज़ दूसरों को उत्तेजित करने का कारण बनती है जिसके नतीजे में वो पलट कर मुसलमानों की आस्था व ईमान और उनके प्रभु अल्लाह तआला का अनादर करने के दोषी होंगे। क़ुरआन में यह बात बार बार ज़ोर देकर कही गयी है कि दीन व ईमान के मामले में लोगों के बीच सभी तरह के मतभेदों का फ़ैसला अल्लाह तआला अन्तिम फैसले वाले दिन करेंगे, जब तमाम इंसान अल्लाह के सामने हाज़िर होंगे और यह कि वही है जो हर इंसान के दिल को जानता है और उसके हालात तथा क्षमताओं से बाखबर है। (2:113; 3:55; 4:141; 5:48,105; 6:60,108,164; 10:23,93; 16:124; 22:69; 29:8; 31:15; 32:25; 39:3,7,46; 43:17)। लिहाज़ा, विभिन्न अक़ीदों व धर्मों के लोगों को शान्तिपूर्ण, निर्माणकारी सह अस्तित्व के सिद्धांत पर आपसी सम्बंध रखना चाहिएं, और स्थानीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी समझबूझ और सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए, बजाए इसके कि अपनी बातों और कामों से एक दूसरे की भावनाओं को चोट पहुंचाएं और भड़काएं जिसका कोई फ़ायदा न तो सच्चाई पर चलने में और न सच्चाई पर चलने वालों को हो सकता है।

قُلْ تَعَالَوْا اَتْلُ مَا حَرَّمَ رَبُّكُمْ عَلَيْكُمْ اَلَّا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا وَّ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۚ وَ لَا تَقْتُلُوْٓا اَوْلَادَكُمْ مِّنْ اِمْلَاقٍ ؕ نَحْنُ نَرْزُقُكُمْ وَ اِيَّاهُمْ ۚ وَ لَا تَقْرَبُوا الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَ مَا بَطَنَ ۚ وَ لَا تَقْتُلُوا النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ اللّٰهُ اِلَّا بِالْحَقِّ ؕ ذٰلِكُمْ وَصّٰىكُمْ بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۝١٥١ وَ لَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ

उनसे कहो, आओ अब मैं तुम को बताऊँ के तुम्हारे रब ने जो तुम पर हराम की हैं वो ये हैं (1) अल्लाह के साथ किसी दूसरे को शरीक ना करो (2) मां बाप के साथ एहसान किया करो (3) और औलाद को इफ़्लास के सबब क़त्ल ना किया करो, हम तुमको और उन सबको रिज़्क़ देते हैं (4) और बेहयाई के नज़दीक भी मत जाओ, ख़्वाह वो ज़ाहिर हों और ख़्वाह खूफ़िया (5) और जिसका ख़ून करना अल्लाह ने हराम कर दिया है उसको क़त्ल ना करो, हां मगर हक़ पर ये तुम को ताकीदी हुक्म है, ताके तुम ख़ूब समझ लो। (6) और यतीम के माल के

حَتّٰى يَبْلُغَ اَشُدَّهٗ ۚ وَ اَوْفُوا الْكَيْلَ وَ
الْمِيْزَانَ بِالْقِسْطِ ۚ لَا نُكَلِّفُ نَفْسًا اِلَّا
وُسْعَهَا ۚ وَ اِذَا قُلْتُمْ فَاعْدِلُوْا وَ لَوْ كَانَ ذَا
قُرْبٰى ۚ وَ بِعَهْدِ اللّٰهِ اَوْفُوْا ؕ ذٰلِكُمْ وَصّٰىكُمْ
بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ﴿۱۵۲﴾ وَ اَنَّ هٰذَا صِرَاطِيْ
مُسْتَقِيْمًا فَاتَّبِعُوْهُ ۚ وَ لَا تَتَّبِعُوا السُّبُلَ
فَتَفَرَّقَ بِكُمْ عَنْ سَبِيْلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ
وَصّٰىكُمْ بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿۱۵۳﴾

पास भी ना जाया करो मगर इस तरह के बेहतर हो, यहां तक के वो बालिग़ हो जाए (7) और नाप तोल पूरी पूरी करो इन्साफ़ के साथ, हम किसी को उसकी सकत से ज़्यादा तकलीफ़ नहीं देते (8) और जब तुम बात किया करो तो इन्साफ़ रखो गो वो रिश्तेदार ही हो (7) और अल्लाह से जो अहद किया करो उसको पूरा किया करो, ये सब अहकाम ताकीदी हैं, ताके तुम याद रखो। और ये दीन ही मेरा रास्ता है, जो सीधा है, सो इसी राह पर चला करो, और दूसरी राहों पर मत चलो, के वो तुमको अल्लाह के रास्ते से जुदा कर देंगी, ये हुक्म भी ताकीदी है, ताके तुम डरो। (6:151-153)

बुनियादी नैतिक मर्यादाओं पर अल्लाह के सभी पैग़म्बरों के माध्यम से आने वाली शिक्षाओं में ज़ोर दिया गया है। बच्चों को या किसी भी इंसान को अकारण मार देने, बेहयाई (बेशर्मी) के काम करने, यतीमों का माल नाजायज़ तरीक़े से लेने, मामले करने और नाप तौल में धोखा देने जैसी बातों की मनाही, और मातापिता के साथ अच्छा व्यवहार करने और हर तरह की परिस्थिति में इंसाफ़ की बात कहने और इंसाफ़ के मुताबिक़ काम करने की शिक्षा पिछले पैग़म्बरों के द्वारा आई सभी आसमानी शिक्षाओं में पाई जा सकती हैं (2:83-84; 5:27-32,45; 7:80-85; 11:84-88; 42:13; 57:25)। यह भी एक महत्वपूर्ण बात मालूम होती है कि उपरोक्त आदेशों और प्रतिबंधों के बाद यह आयत आई है कि "हम ने मूसा को किताब दी थी ताकि उन लोगों पर जो नेक काम करने वाले हैं नेअमत (वरदान) पूरे कर दें और (इसमें) हर चीज का बयान (है) और हिदायत (है) और रहमत है ताकि (उनकी उम्मत के) लोग अपने रब के सामने हाजिर होने का विश्वास करें। और (ऐ इंकार करने वालो) यह किताब भी हम ने ही उतारी है, बरकत वाली। तो इसका अनुसरण करो और (अल्लाह से) डरो ताकि तुम पर महरबानी की जाए" (6:154-155)। दूसरी आयतों में भी इस पर ज़ोर दिया गया है जैसे "और हमने (तौरात की) तख़तियों (शिलापटों) में उनके लिए हर तरह की सीख और हर चीज का विवरण लिख दिया फिर (कहा कि) इसे मज़बूती से पकड़े रहो और अपनी क़ौम से भी कह दो कि इन बातों को जो इसमें (लिखी हैं और) बहुत बहतर हैं पकड़े रहें। मैं जल्दी ही तुम को नाफ़रमानी करने वालों का घर दिखाउंगा"(7:145)। एक अल्लाह पर और आख़िरत के अनन्त जीवन पर ईमान इंसान को अहंकार और भौतिकतावाद के रास्ते पर बढ़ने से रोकता है। अल्लाह तआला लोगों को अकेले अपनी इबादत और आख़िरत के अनन्त जीवन पर ईमान की

तरफ़ खुद उनके ही फ़ायदे के लिए बुलाते हैं क्योंकि अल्लाह के तक़वा (प्रम व भय की मिली जुली भावना) से नैतिक चेतना पैदा होती है। क़ुरआन में ईमान को अच्छे अमल के साथ ही बयान किया गया है और ये दोनों बातें एक दूसरे का अभिन्न अंग हैं (2:25,62,82,277; 3:57,122,124,173; 5:9,64,93, 7:42; 21:94; 22:14,23,50,56; 24:55; 25:70-71; 28:67,80; 29:7,9,58; 30:15,45; 31:8; 32:19; 34:4; 35:7; 38:24; 40:40; 41:8; 42:22-23; 45:30; 47:2-12; 48:29; 65:11; 84:25; 85:11,95-96; 98:7; 103:3)।

وَ اِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً قَالُوْا وَجَدْنَا عَلَيْهَآ اٰبَآءَنَا وَ اللّٰهُ اَمَرَنَا بِهَا ؕ قُلْ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَاْمُرُ بِالْفَحْشَآءِ ؕ اَتَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۲۸﴾ قُلْ اَمَرَ رَبِّيْ بِالْقِسْطِ ۫ وَ اَقِيْمُوْا وُجُوْهَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّ ادْعُوْهُ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ؕ كَمَا بَدَاَكُمْ تَعُوْدُوْنَ ﴿۲۹﴾ فَرِيْقًا هَدٰى وَ فَرِيْقًا حَقَّ عَلَيْهِمُ الضَّلٰلَةُ ؕ اِنَّهُمُ اتَّخَذُوا الشَّيٰطِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَ يَحْسَبُوْنَ اَنَّهُمْ مُّهْتَدُوْنَ ﴿۳۰﴾ يٰبَنِيْۤ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّ كُلُوْا وَ اشْرَبُوْا وَ لَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ﴿۳۱﴾ قُلْ مَنْ حَرَّمَ زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْۤ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ وَ الطَّيِّبٰتِ مِنَ الرِّزْقِ ؕ قُلْ هِيَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا خَالِصَةً يَّوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ﴿۳۲﴾ قُلْ اِنَّمَا حَرَّمَ رَبِّيَ الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَ مَا

और जब ये कोई फहश काम करते हैं तो कहते हैं के हमने अपने बाप दादा को इसी तरीक़ा पर देखा है, और अल्लाह ने भी हमको इसी का हुक्म दिया है, आप फ़रमा दीजिये के अल्लाह फहश बात की तालीम नहीं दिया क्या तुम अल्लाह के ज़िम्मे ऐसी बात लगाते हो जिसकी सनद तुम नहीं रखते। आप ये फ़रमा दिजिये के मेरे रब ने इन्साफ़ करने का हुक्म दिया है, और ये भी हुक्म दिया है के हर सजदा करने के वक़्त तुम अपना रूख सीधा कर लिया करो और अल्लाह की इबादत भी ख़ालिस अल्लाह ही के लिए किया करो, अल्लाह ने जिस तरह तुमको शुरू में पैदा किया था उसी तरह तुम दोबारा भी पैदा होंगे। बाज़ लोगों को अल्लाह ने हिदायत बख़्शी है और बाज़ पर गुमराही साबित हो चुकी है, उन लोगों ने अल्लाह को छोड़ कर शैतान को अपना दोस्त बनाया है और ख़्याल करते हैं के हम सीधे रास्ते पर हैं। ऐ औलादे आदम! तुम अपना लिबास पहने लिया करो जब भी तुम (नमाज़ के लिए) मस्जिद जाया करो, और ख़ूब खाओ और पियो, और हद से आगे मत निकला, बिला शुबह अल्लाह हद से आगे निकलने वालों को महबूब नहीं रखता। आप फ़रमा दीजिये के अल्लाह का लिबास जो उसने अपने बन्दों के लिए बनाया है और खाने पीने की हलाल और पाक चीज़ों को किस ने हराम किया है, आप ये भी फ़रमा दीजिये के ये चीज़ें मोमिनीन के लिए हैं इस दुनिया की ज़िन्दगी में, ख़ालिस हैं उनके लिए क़यामत के रोज़ हम इसी तरह तमाम आयात समझने

بَطَنَ وَ الْاِثْمَ وَ الْبَغْیَ بِغَیْرِ الْحَقِّ وَ اَنْ تُشْرِكُوْا بِاللّٰهِ مَا لَمْ یُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا وَّ اَنْ تَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۳۳﴾

वाली के लिए साफ़ साफ़ बयान कर देते हैं। आप फ़रमा दीजिये के अलबत्ता मेरे रब ने फहश बातों को सिर्फ़ हराम किया है, उनमें एलानिया हैं वो भी और जो पोशीदा हैं वो भी, और हर गुनाह को और नाहक़ ज़ुल्म करने को और इस बात को के तुम अल्लाह के साथ ऐसी चीज़ को शरीक करो जिसकी सनद उसने नहीं उतारी और इस बात को के एसी बात अल्लाह के ज़िम्मे लगा दो जिसकी सनदर तुम ना रखो। (7:28-33)

इंसानी अक़्ल इंसान की एक क़ीमती सम्पत्ति है और उसकी अनिवार्य आवश्यकता है जिसके द्वारा इंसान फ़ैसला लेता है और अपनी आज़ाद मर्ज़ी का मालिक बनता है। पूर्वजों के आचार विचार का अन्धा अनुसरण, या यह कहना कि यह अल्लाह ने ही तय कर दिया है कि कौन इंसान क्या करेगा, इसका अर्थ वास्तव में इच्छा और इरादे की आज़ादी का इंकार करना है जो कि इंसानी अक़्ल के इस्तेमाल से ही काम में लाई जा सकती है, और यह झूटे बहाने बनाने और निराधार कारण बताने जैसा है। साधारण अक़्ल (कॉमन सेंस) इस तरह के दावों और बहानों को स्वीकार नहीं करती और आदमी को यह समझना चाहिए कि अल्लाह तआला इंसान से बुरे काम नहीं कराते। अल्लाह पाक तो केवल इंसाफ़ को काम में लाते हैं और हर इंसान को बौद्धिक क्षमता, आज़ाद मर्ज़ी और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी के साथ पैदा करते हैं। अल्लाह की हिदायत को अपनाना या ठुकराना हर इंसान की अपनी आज़ाद मर्ज़ी का मामला है जिसके स्वभाविक और अनिवार्य रूहानी और सममाजिक नतीजे इंसान के सामने आना हैं "तो जिसने (अल्लाह के रास्ते में माल) दिया और परहेज़गारी की, और नेक बात को सच जाना, उसको हम आसान रस्ते पर चलाएंगे और जिसने कंजूसी की और बेपरवाह बना रहा, और नेक बात को झूट माना, उसे मुश्किल रास्तों में डालेंगे।"(92:5-10)।

एक और अनिवार्य सिद्धांत जो ऊपर की आयतों में दिया गया है वह यह है कि अल्लाह की हिदायत इस दुनिया में इंसान के जायज़ आनन्द पर रोक नहीं लगाती है। आदम की संतान को संतुलित और संयमित तरीक़े से शरीर और आत्मा दोनों के अच्छेपन की कामना रखनी चाहिए। इंसान अपने इंसानी स्वभाव के आधार पर ऐश व आराम चाहता है इसलिए अगर वह हद से ज़्यादा लास विलास में मगन नहीं रहता तो संयमित ढंग में यह आराम व आनन्द की चाहत बुरी नहीं है। जो कुछ अल्लाह ने हलाल और जायज़ किया है उसे वर्जित ठहराना भी नाजायज़ और निषेध चीज़ों को हलाल कर लेने से कम दर्जे का गुनाह नहीं है। अल्लाह ने इस बात को मना नहीं किया है कि आदमी इस दुनिया के आनन्दों से संयमित ढंग से और स्वयं

को या दूसरों को नुक़सान पहुंचाए बग़ैर मज़ा उठाए, बल्कि शर्मनाक बातों, बुराइयों और अनुचित कामों से आनन्दित होने को मना किया है। लोग नैतिक सीमाओं का पास रखने से ज़्यादा बल पूर्वक लागू होने वाली पाबन्दियों को स्वीकार करने की तरफ़ झुकाव रखते हैं। कुरआन स्वयं पर ज़बरदस्ती करने, दुनिया को छोड़ बैठने और हद से ज़्यादा आत्मिक होने का समर्थन नहीं करता।

وَاتَّقُوْا فِتْنَةً لَّا تُصِيْبَنَّ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْكُمْ خَآصَّةً ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿٢٥﴾

और उस फ़ितने से डरो जो ख़ुसूसियत से तुम में से मुज़्रीमीन पर न हीं वाक़े होगा, और जान लो के अल्लाह सख़्त अज़ाब देने वाला है। (8:25)

यह आयत व्यक्ति और समाज के बीच आपसी सम्बंधों को उजागर करती है और दोनों के हितों के बीच अपेक्षित संतुलन देती है। व्यक्ति किसी वेक्यूम्न (शून्य वातावरण) में नहीं रहता, और न समाज केवल व्यक्तियों का एक समूह है। दूसरी तरफ़ समाज कोई ऐसा ब्लाक भी नहीं है जिसमें व्यक्ति इस तरह समा जाएं कि उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाए। समाज पर व्यक्तियों के व्यवहार और बर्ताव का प्रभाव पड़ता है, और सामाजिक स्थितियां व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियों का ग़लत बर्ताव और दुर्व्यवहार केवल उनको ही नुक़सान नहीं पहुंचाता है बल्कि उसके नकारात्मक प्रभाव पूरे समाज पर पड़ते हें। पैग़म्बर साहब की एक हदीस में समाज का उदाहरण एक जहाज़ में सवार यात्रियों से दिया गया है कि अगर उन यात्रियों में से कोई जहाज़ के फ़र्श में छेद करने लगे और कोई उसे न रोके तो पूरा जहाज़ डूब जाएगा और जहाज़ में सवार सभी यात्री डूब जाएंगे, अतःजहाज़ की सलामती के लिए यह ज़रूरी है कि सब लोग मिल कर उसे जहाज़ में छेद करने से रोकें और अपनी मर्ज़ी का मालिक होने और अपने कर्म के लिए स्वतंत्र होने के उसके अधिकार को सीमित कर दें (हवालाःबुखारी, इब्ने हंबले, तिरमिज़ीद्ध। इसलिए यह ज़रूरी है कि समाज व व्यक्ति के बीच सम्बंध के मामले में दोनों के अधिकारों और ज़िम्मेदारियों की समझ पैदा की जाए और उनके ढांचागत समन्वय को समझा जाए जो नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारियों के लिए आधार देता है (और देखें आयत 11:113 की व्याख्या)।

وَلَا تَرْكَنُوْٓا اِلَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا فَتَمَسَّكُمُ النَّارُ ۙ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ اَوْلِيَآءَ ثُمَّ لَا تُنْصَرُوْنَ ﴿١١٣﴾

और जो ज़ालिम हैं उनकी तरफ़ मत झुको वरना दोज़ख की आग तुमको आ लिपटेगी और अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई दोस्त नहीं होगा फ़िर तुम को कहीं से मदद ना मिलेगी। (11:113)

यहां भी क़ुरआन हर व्यक्ति की समाजिक ज़िम्मेदारी पर ज़ोर देता है और यह जताता है कि अन्याय का साथ देने से, चाहे वह चुप रह कर ही किया जाए, इस अन्याय का नुक़सान पूरे समाज को पहुंचेगा, इस तरह के मामलों में उदीसीन और निश्चिंत रहने वाले लोग भी नुक़सान उठाने वालों में शामिल होंगे, और यह नुक़सान दुनिया के इस जीवन में भी होगा और आख़िरत में भी। इस दुनिया में अन्याय करने वाले चाहे कितने ही शक्तिशाली हों कि उनकी ताक़त को देख कर कुछ लोग उनके समर्थक हो जाएं या कुछ लोग चुप रहें, आख़िरत में अल्लाह के सामने उनका कोई ज़ोर नहीं चलेगा और उनके आज के समर्थक भी देखेंगे कि आज उनको बचाने वाला कोई नहीं, और वो भी बिल्कुल लाचार और कमज़ोर होंगे और अल्लाह के सामने किसी समर्थक और सहायक के बग़ैर अकेले खड़े होंगे (देखें आयत 8:25 पर तफ़सीरी नोट)। जो लोग अन्याय के विरुध संघर्ष करते हैं वो इस बात को सुनिश्चित करते हैं कि समाज में अभी भी आशा की किरण बाकी है और इस तरह इस जीवन में समाज को तबाह होने से बचाने का और आख़िरत में अल्लाह के अज़ाब से बचाने का संघर्ष करके वो स्वयं को सुरेक्षित कर लेते हैं। जो लोग न्याय के लिए संघर्ष करते हैं वो न्याय की बरकत और फ़ायदों का सुख भोगेंगे और साथ ही साथ आख़िरत में अल्लाह की रहमत (दया व कृपा) के पात्र होंगे (और देखें बाद वाली आयतें 11:116-117)।

وَ الْمُؤْمِنُوْنَ وَ الْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ يَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَ يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَ يُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝

मोमिन मद्र, और मोमिन औरतें, आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं, अच्छे काम करने को कहते हैं, और बुरे कामों से मना करते हैं, नमाज़ पाबंदी से पढ़ते हैं, और ज़कात देते हैं, और अल्लाह और रसूल की इताअत करते हैं, उन्हीं पर अल्लाह जल्द रहम करेगा, बिलाशुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त और बड़ी हिकमतों वाला है। (9:71)

यह आयत यह बताती है कि हर मर्द और औरत की एक दूसरे के प्रति भी और समाज के प्रति भी ज़िम्मेदारी बराबर है, और इसी तरह हर मर्द और औरत के लिए पूरे समाज की ज़िम्मेदारी है। यह मर्दों और औरतों के समान और आपसी अधिकारों व ज़िम्मेदारियों की और व्यक्ति व समाज के बीच सम्बंधों की पहली घोषणा है। अच्छी और सही बातों व कामों पर ज़ोर देना और ग़लत व बुरी बातों व कामों से रोकना सामाजिक मूल्यों की रक्षा में हर मर्द और हर औरत के व्यक्तिगत और सक्रिय भूमिका को उजागर करता है जो इस्लाम पर उनके चलते रहने से उनके लिए ज़रूरी होता है। एक अल्लाह की इबादत, समाज के प्रति व्यक्ति की ज़िम्मेदारियों

को पूरा करना और सभी मामलों व कामों में अल्लाह की हिदायत की पैरवी करना यह सब बातें इस्लामी समाज की मूल रूप रेखा को उजागर करती हैं, जो कि हर मर्द और औरत को अपने व्यक्तिगत कामों और सामाजिक गतिविधियों में पूरी प्रतिबद्धता के साथ बरतना चाहिएं।

إِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَ الْإِحْسَانِ وَ
إِيْتَآئِ ذِي الْقُرْبٰى وَ يَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ
وَ الْمُنْكَرِ وَ الْبَغْيِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَذَكَّرُوْنَ ﴿٩٠﴾ وَ اَوْفُوْا بِعَهْدِ اللّٰهِ اِذَا
عٰهَدْتُّمْ وَ لَا تَنْقُضُوا الْاَيْمَانَ بَعْدَ
تَوْكِيْدِهَا وَ قَدْ جَعَلْتُمُ اللّٰهَ عَلَيْكُمْ
كَفِيْلًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا تَفْعَلُوْنَ ﴿٩١﴾ وَ لَا
تَكُوْنُوْا كَالَّتِيْ نَقَضَتْ غَزْلَهَا مِنْۢ بَعْدِ قُوَّةٍ
اَنْكَاثًا ؕ تَتَّخِذُوْنَ اَيْمَانَكُمْ دَخَلًا
بَيْنَكُمْ اَنْ تَكُوْنَ اُمَّةٌ هِيَ اَرْبٰى مِنْ اُمَّةٍ ؕ
اِنَّمَا يَبْلُوْكُمُ اللّٰهُ بِهٖ ؕ وَ لَيُبَيِّنَنَّ لَكُمْ
يَوْمَ الْقِيٰمَةِ مَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ﴿٩٢﴾
وَ لَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّ
لٰكِنْ يُّضِلُّ مَنْ يَّشَآءُ وَ يَهْدِيْ مَنْ
يَّشَآءُ ؕ وَ لَتُسْـَٔلُنَّ عَمَّا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿٩٣﴾
وَ لَا تَتَّخِذُوْۤا اَيْمَانَكُمْ دَخَلًا بَيْنَكُمْ
فَتَزِلَّ قَدَمٌۢ بَعْدَ ثُبُوْتِهَا وَ تَذُوْقُوا
السُّوْٓءَ بِمَا صَدَدْتُّمْ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ
وَ لَكُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿٩٤﴾ وَ لَا تَشْتَرُوْا
بِعَهْدِ اللّٰهِ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ اِنَّمَا عِنْدَ اللّٰهِ هُوَ
خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿٩٥﴾ مَا

बिला शुबह अल्लाह तआला इन्साफ़ (1), नेकी (2), अपने क़रीबी रिश्तेदारों को देने का हुक्म देता है, और बेहयाई, बड़े गुनाहों, और सरकशी के काम से रोकता है, अल्लाह तुम को नसीहत करता है, इसलिये के तुम नसीहत क़ुबूल करो। और अल्लाह के अहद को पूरा करो जब तुम उसको अपने ज़िम्मे लो, और क़समों को मत तोड़ा करो उनके मुसतेहकम करने के बाद और तुम अल्लाह को अपना ज़ामिन बना चुके हो, बिला शुबह अल्लाह ख़ूब जानता है जो तुम करते हो। और तुम उस औरत की मानिंद ना बनो जो मेहनत से सूत कातती है, फ़िर उसको तोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालती है, के तुम अपनी क़समों को आपस में फ़साद का ज़रिया बनाने लगो सिर्फ़ इसलिये के एक गिरोह से ज़्यादा ग़ालिब रहे, बात ये है के अल्लाह उससे तुमको आज़माता है, और जिन बातों में तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे उनको इज़हार क़यामत के रोज़ तुम्हारे सामने कर दिया जायेगा। और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सबको एक ही जमात बना देता, लेकिन वही जिसे चाहता है गुमराह करता है और जिसे चाहता है उसको हिदायत करता है, और तुम से ज़रूर पूछा जाएगा जो तुम दुनिया में करते थे। और तुम अपनी क़समों को आपस में फ़साद का ज़रिया ना बनाओ के क़दम जम जाने के बाद लड़खड़ा जायें, फ़िर तुम चखो अज़ाब इस बात पर के तुम ने लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोका था, और तुम्हारे लिये बड़ा अज़ाब है। और ना लो अल्लाह के अहद पर मुआवज़ा थोड़ा, अल्लाह के पास जो कुछ है वो तुम्हारे लिये बहुत बेहतर है, अगर तुम जानते हो। जो तुम्हारे पास है वो

ख़त्म हो जायेगा, और जो अल्लाह के पास है वो बाक़ी है, और जो सब्र करते रहे उनके अच्छे कामों का बदला ज़रूर हम देंगे। जो नेक काम करेगा मर्द (1) हो या औरत (2), बशर्तयेके मोमिन (3), हो तो हम उसको अच्छी ज़िन्दगी देंगे, और उनके अच्छे आमाल का उनको सिला देंगे। (16:90-97)

عِنْدَكُمْ يَنْفَدُ وَ مَا عِنْدَ اللّٰهِ بَاقٍ ؕ وَ لَنَجْزِيَنَّ الَّذِيْنَ صَبَرُوْۤا اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۹۶﴾ مَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَ هُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً طَيِّبَةً ۚ وَ لَنَجْزِيَنَّهُمْ اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۹۷﴾

न्याय एक समग्र प्रक्रिया है। यह व्यक्तियों के बीच भी होना चाहिए, जैसे परिवार में, पड़ोसियों के बीच में और कारोबारी मामलों में, इसी तरह सार्वजनिक मामले जैसे शासक और शासित अर्थात सरकार और जनता के बीच, और विभिन्न देशों के आपसी सम्बंध भी न्याय पर आधारित होना चाहिएं। लेकिन क़ुरआन ''अद्ल'' की शब्दावली इस्तेमाल करता है जो कि इंसाफ़ या न्याय से भी ऊपर के दर्जे की बात है, और अद्ल के साथ ''अहसान'' (उपकार) का भी निर्देश देता है, और यह कि विवादों के निपटारे में इंसाफ़ और अद्ल के साथ दूसरों से नर्मी का बर्ताव करने, महरबानी का व्यवहार करने और अपने हितों को छोड़ कर दूसरे का हित पूरा करने व सहानुभूति का भाव रखने जैसे उत्तम संस्कारों पर भी ज़ोर देता है (2:109,178,237; 3:134,159; 4:149; 5:13; 17:199; 24:22; 41:34; 42:40; 64:14)। अद्ल व इंसाफ़ और मुरव्वत व उपकार से काम लेने के लिए सबसे पहला मैदान आदमी के लिए उसका अपना घर और अपने रिश्तेदारों का दायरा है, जहां परिवारिक सम्बंधों के बावजूद बहुत से झगड़े और विवाद खड़े होते रहते हैं।

चूंकि इंसानी सम्बंधों में न्याय को एक मौलिक गुण माना गया है इसलिए अन्याय एक मौलिक बुराई है, और यह बुराई विभिन्न रूपों में और विभिन्न नतीजों या निहितार्थों के साथ मौजूद होती है। जिस तरह अद्ल व अहसान (परम न्याय व परोपकार) और निपटारे के विभिन्न रूप व स्तर हैं जिन्हें निष्ठुर न्याय से भी ऊपर दर्जे के गुण माना गया है इसी तरह बुराई या खराबी और दोष के भी विभिन्न रूप व स्तर हैं जिनमें बेशर्मी और अत्याचार व उत्पीड़न सब से बदतर बातें हैं। उत्पीड़न, अत्याचार और दमन सबसे बड़ा अन्याय है क्योंकि यह दूसरों के अधिकारों पर एक खुला हमला होता है। यह उत्पीड़न और दमन परिवार के सदस्यों के साथ भी हो सकता हे और पड़ोसियों, पार्टनरों और साथियों के साथ भी हो सकता है, दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच भी होता है, देश के शासकों और जनता के बीच के मामलों में भी होता है और दुनिया के विभिन्न देशों के आपसी मामलों और सम्बंधों में भी हो सकता है। ईमान वालों को यह शिक्षा दी गयी है कि वो विवादों और मतभेदों में सकारात्मक

ढंग से बर्ताव करें और मेल मिलाप व निपटारे के लिए पूरी कोशिश करें (2:24,228(4:35,114,128; 8:1; 49:9-10)। जब कोई झगड़ा खड़ा हो तो उन्हें पीड़ित पक्ष का साथ देना चाहिए और न्याय से काम लेना चाहिए बजाए इसके कि प्रतिक्रिया में और अधिक अन्याय का सिलसिला शुरू हो (49:9)। क़ुरआन में बुराई और ख़राबी को "मुनकर" (रद कर देने वाली बात) कहा गया है और अच्छाई व भलाई की बात को "मअरूफ़" (जानी पहचानी और प्रिय बात) कहा गया है (3:104,110,114; 7:57; 19:71,112; 22:41)।

वचन और वायदे को पूरा करना भी एक ऐसी महान इबादत है जिसको उसके सभी पहलुओं के साथ बरतना चाहिए। निजी जीवन में, सार्वजनिक मामलों व सम्बंधों में, व्यक्तियों के आपसी मामलों में, जनता और उनके शासकों के बीच मामलों मे, और सरकारों के आपसी मामलों में सब में समझौतों और वचन व प्रतिबद्धता का बहुत महत्व है और उसे पूरा करना एक अनिवार्य काम है। कभी कभी किसी समझौते के तहत कोई पक्ष अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा नहीं करता, समझौते की शर्तों का उल्लंघन करता है, या समझौते की पाबन्दी से कोई पक्ष निकल जाना चाहता है। इसलिए ईमान वालों को यह याद दिलाया गया है कि जैसे ही वो कोई समझौता करें तो उसका ज़मानत कर्ता ख़ुद अल्लाह को बना लें, फिर अपनी प्रतिज्ञाओं और वायदों का पास रखें और ख़ुद अपने हाथों से काता गया सूत टुकड़े टुकड़े न करदें और इस तरह अपने विश्वास और नैतिक चरित्र को नुक़सान न पहुंचाएं। इस जीवन का कोई भी फ़ायदा अस्थाई है लेकिन जो लोग अल्लाह की हिदायत पर चलते हैं उनके लिए अल्लाह के पास कभी न समाप्त होने वाला बदला है। इस्लाम अपने मानने वालों को यह इजाज़त नहीं देता कि वो किसी भी क़ीमत पर दूसरों पर अपना ज़ोर चलाएं क्योंकि अच्छे उद्देश्य को पूरा करने का तरीक़ा भी अच्छा ही होना चाहिए। सभी लोग चाहे उनकी आस्था जो कुछ भी हो, अपने मामलों से ही जांचे जाते हैं, वो लोगों के साथ मामला करने में जो कुछ भी करते हैं उसकी जवाबदेही उन पर आती है और वो अल्लाह के सामने जवाबदेह होंगे। अल्लाह की मंशा यह नहीं है कि वो अपनी हिदायत किसी पर थोपे, लेकिन वह हर एक को अपनी पसन्द और मर्ज़ी के अनुसार अमल करने की आज़ादी देते हैं। अतःजो कोई अपनी रूहानी और बौद्धिक शक्तियों को काम में लाता है अल्लाह उसका मार्गदर्शन करते हैं, लेकिन जो अहंकारी हो, अदूरदर्शी हो और घमण्ड करे उसे अल्लाह उसके हाल पर और गुमराही में भटकने के लिए छोड देते हैं (90:10-20; 91:7-10)। अल्लाह का वायदा है कि जो कोई, मर्द हो या औरत, ईमान लाता/लाती है और दुरूस्त काम करता/करती है उसे इस दुनिया में मानसिक और सामाजिक संतुलन और रूहानी तक़ाज़ों को पूरा करने के नतीजे में अच्छा जीवन मिलेगा, और आख़िरत में वह नेअमतों भरी जन्नत में पहुंचाया जाएगा। यह बात ग़ौरतलब है कि क़ुरआन अपनी ज़िम्मेदारियों और जवाबदेही के हवाले से मर्दों और औरतों का अलग अलग जिक्र करता है,

और इस तरह इंसानी ज़िम्मेदारियों में और खुद अल्लाह की नज़र में मर्दों व औरतों की बराबरी पर ज़ोर देता है (3:195; 4:124; 9:71-72; 16:97; 24:12,31-32; 33:35-36; 40:40; 49:13; 71:28)।

اُدْعُ اِلٰى سَبِيْلِ رَبِّكَ بِالْحِكْمَةِ وَ
الْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ وَ جَادِلْهُمْ بِالَّتِيْ هِيَ
اَحْسَنُ ؕ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ بِمَنْ ضَلَّ عَنْ
سَبِيْلِهٖ وَ هُوَ اَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِيْنَ ﴿۱۲۵﴾ وَ اِنْ
عَاقَبْتُمْ فَعَاقِبُوْا بِمِثْلِ مَا عُوْقِبْتُمْ
بِهٖ ؕ وَ لَئِنْ صَبَرْتُمْ لَهُوَ خَيْرٌ
لِّلصّٰبِرِيْنَ ﴿۱۲۶﴾ وَ اصْبِرْ وَ مَا صَبْرُكَ اِلَّا
بِاللّٰهِ وَ لَا تَحْزَنْ عَلَيْهِمْ وَ لَا تَكُ فِيْ
ضَيْقٍ مِّمَّا يَمْكُرُوْنَ ﴿۱۲۷﴾ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الَّذِيْنَ
اتَّقَوْا وَّ الَّذِيْنَ هُمْ مُّحْسِنُوْنَ ﴿۱۲۸﴾

आप अपने रब की राह की तरफ़ इल्म की बातों से और अच्छी नसीहतों के ज़रिये से बुलायें, और उनके साथ अच्छे तरीक़े से बेहस कीजिये, वाक़ई आपका रब ख़ूब जानता है उसको जो रास्ते से गुम हुआ, और वो उसको भी ख़ूब जानता है जो राह पर चलने वाल हैं। और अगर तुम बदला लेने लगो तो उतना ही बदला लो जितना के तुम्हारे साथ बर्ताओ किया गया है, और तुम सब्र करो तो वो सब्र करने वालों के हक़ में बहुत ही अच्छा होगा। और आप सब्र कीजिये आपका सब्र करना अल्लाह ही की तौफ़ीक़ से है, और आप उन पर ग़म ना करें, और जो तदबीरें वो करते हैं उनसे भी तंग ना होजिये। और अल्लाह उनके साथ होता है जो (अल्लाह से) डरते हैं, और जो नेक काम करते हैं। (16:125-128)

अल्लाह की हिदायत की तरफ़ लोगों को बुलाने की कोशिश ऐसे तरीक़ों से होना चाहिए जो इस उद्देश्य के अनुकूल हों और अल्लाह के दीन के उत्तम आदर्शों को दिखाने वाले हों। इस्लाम का यह प्रतिनिधित्व बहुत अक़लमन्दी के साथ और प्रभावी तरीक़े से होना चाहिए और तर्क व वाद-विवाद बहतरीन तरीक़े से होना चाहिए। इस काम में लगे लोगों को लोगों के साथ बातचीत और संवाद करना चाहिए न कि केवल अपनी बात और अपना अक़ीदा थोपें और दूसरों से यह चाहें कि वो केवल सुनें। यह संवाद बहुत नैतिकतापूर्ण और सार्थक ढंग से होना चाहिए और अविश्वास व आडम्बरों पर विश्वास रखने वालों को उन पर विभिन्न प्रकार के दबाव बना कर क़ायल करने से बचना चाहिए। अल्लाह तआला हर इंसान की नियत को जानते हैं, इस्लाम की दावत का काम करने वालों की सच्ची भावना से भी वह बाख़बर हैं और जिसे दावत दी जा रही हो उसकी नियत से भी बाख़बर हैं, और आख़िरत में अल्लाह का फ़ैसला इंसानों की नियत के अनुसार ही होगा।

एक और नैतिक सिद्धांत जो ऊपर की आयतों में दिया गया है वह है किसी आक्रामकता का जवाब उसी हद तक देना चाहिए जिस हद तक ज़ुल्म हुआ हो, जवाब देने में भी ज़्यादती

नहीं करना चाहिए, और यह कि मआफ़ करना और अनदेखा करना और सहनशीलता व धैर्य रखना बदला लेने से बहतर है। चूंकि अच्छाई और बुराई दोनों एक ही नहीं होतीं इसलिए कहा गया कि "बुराई को भलाई से भगाओ, और तुम देखोगे कि इस तरह वह व्यक्ति जो दुशमन था वह एक करीबी मित्र बन जाएगा" (41:34, और देखें 23:96)। यह वह उत्तम नैतिक स्थिति है जिस तक ईमान वाले व्यक्ति को पहुंचने की कोशिश करना चाहिए "और यह चीज़ किसी को नहीं मिल सकती सिवाए उनके जो बहुत सहनशील हैं, और यह चीज किसी को नहीं मिल सकती सवाए उनके जो बहुत सौभाग्यशाली हैं" (41:35)। इस मामले में अल्लाह के पैग़म्बर स्वयं उत्तम उदाहरण (नमूना) हैं और उन्हें भी अल्लाह की तरफ़ से ही यह गुण प्राप्त हुआ और कठिन स्थितियों में अल्लाह ही उनका मददगार था। दूसरी तरफ़ जो व्यक्ति इस तरह स्वयं पर क़ाबू रखे उसे दुशमनों की उन बातों या हरकतों से जो वो उसके विरुध करते हैं घबराना नहीं चाहिए क्योंकि अल्लाह तक़वा रखने वालों और अहसान करने वालों के साथ है।

وَ قَضٰى رَبُّكَ اَلَّا تَعْبُدُوْۤا اِلَّاۤ اِيَّاهُ وَ
بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ؕ اِمَّا يَبْلُغَنَّ عِنْدَكَ
الْكِبَرَ اَحَدُهُمَاۤ اَوْ كِلٰهُمَا فَلَا تَقُلْ لَّهُمَاۤ
اُفٍّ وَّ لَا تَنْهَرْهُمَا وَ قُلْ لَّهُمَا قَوْلًا
كَرِيْمًا ﴿۲۳﴾ وَاخْفِضْ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ
الرَّحْمَةِ وَ قُلْ رَّبِّ ارْحَمْهُمَا كَمَا رَبَّيٰنِيْ
صَغِيْرًا ﴿۲۴﴾ رَبُّكُمْ اَعْلَمُ بِمَا فِيْ نُفُوْسِكُمْ ؕ
اِنْ تَكُوْنُوْا صٰلِحِيْنَ فَاِنَّهٗ كَانَ لِلْاَوَّابِيْنَ
غَفُوْرًا ﴿۲۵﴾ وَاٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ
وَ ابْنَ السَّبِيْلِ وَ لَا تُبَذِّرْ تَبْذِيْرًا ﴿۲۶﴾ اِنَّ
الْمُبَذِّرِيْنَ كَانُوْۤا اِخْوَانَ الشَّيٰطِيْنِ ؕ وَ
كَانَ الشَّيْطٰنُ لِرَبِّهٖ كَفُوْرًا ﴿۲۷﴾ وَ اِمَّا تُعْرِضَنَّ
عَنْهُمُ ابْتِغَآءَ رَحْمَةٍ مِّنْ رَّبِّكَ تَرْجُوْهَا
فَقُلْ لَّهُمْ قَوْلًا مَّيْسُوْرًا ﴿۲۸﴾ وَ لَا تَجْعَلْ
يَدَكَ مَغْلُوْلَةً اِلٰى عُنُقِكَ وَ لَا تَبْسُطْهَا كُلَّ

और आपके रब ने हुक्म दिया है के अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की इबादत मत किया करो, और अपने मां बाप के साथ अच्छा बर्ताओ किया करो, अगर उनमें से एक या दोनों तेरे पास बुढ़ापे को पहुंच जायें तो उकी कभी (हां से) हूँ तक ना कहो, और ना उनको झिड़का करो, और उनसे बड़े अदब से बात किया करो। और उनके सामने शफ़्क़त से इनकसारी के साथ झुके रहा करो, और यूं दुआ करते रहा करो, ऐ मेरे रब! तू उन पर रहम फ़रमा, जैसा के उन्होंने मुझे बचपन में (ऐसी शफ़्क़त से) पाला है। तुम्हारा रब तुम्हारे दिलों की बातें ख़ूब जानता है, अगर तुम नेक होंगे तो फ़िर वो तौबा करने वालों को बख़्शने वाला है। और रिश्तेदारों, मोहताजों और मुसाफ़िरों को उनका हक़ अदा किया करो, और फ़ुज़ूल खर्ची ना किया करो। बेशक फ़ुज़ूल खर्च करने वाले शैतान के भाई हैं और शैतान अपने रब का बड़ा ना शुक्रा है। और अगर तुमको उनसे पहलू तही करना पड़ जाये जबके तुमको उस रिज़्क़ का इन्तिज़ार है जिसकी अपने परवरदिगार की तरफ़ से उम्मीद है तो उनसे नर्म अल्फ़ाज़ में बात कह दिया करो। और तुम

الْبَسْطِ فَتَقْعُدَ مَلُوْمًا مَّحْسُوْرًا ﴿٢٩﴾ اِنَّ رَبَّكَ
يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ وَ يَقْدِرُ ؕ اِنَّهٗ
كَانَ بِعِبَادِهٖ خَبِيْرًۢا بَصِيْرًا ﴿٣٠﴾ وَ لَا تَقْتُلُوْٓا
اَوْلَادَكُمْ خَشْيَةَ اِمْلَاقٍ ؕ نَحْنُ نَرْزُقُهُمْ
وَ اِيَّاكُمْ ؕ اِنَّ قَتْلَهُمْ كَانَ خِطْاً كَبِيْرًا ﴿٣١﴾ وَ
لَا تَقْرَبُوا الزِّنٰٓى اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً ؕ وَ سَآءَ
سَبِيْلًا ﴿٣٢﴾ وَ لَا تَقْتُلُوا النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ
اللّٰهُ اِلَّا بِالْحَقِّ ؕ وَ مَنْ قُتِلَ مَظْلُوْمًا فَقَدْ
جَعَلْنَا لِوَلِيِّهٖ سُلْطٰنًا فَلَا يُسْرِفْ فِّي
الْقَتْلِ ؕ اِنَّهٗ كَانَ مَنْصُوْرًا ﴿٣٣﴾ وَ لَا تَقْرَبُوْا
مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ حَتّٰى
يَبْلُغَ اَشُدَّهٗ ۪ وَ اَوْفُوْا بِالْعَهْدِ ۚ اِنَّ
الْعَهْدَ كَانَ مَسْئُوْلًا ﴿٣٤﴾ وَ اَوْفُوا الْكَيْلَ اِذَا
كِلْتُمْ وَ زِنُوْا بِالْقِسْطَاسِ الْمُسْتَقِيْمِ ؕ ذٰلِكَ
خَيْرٌ وَّ اَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ﴿٣٥﴾ وَ لَا تَقْفُ مَا
لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَ الْبَصَرَ
وَ الْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُوْلًا ﴿٣٦﴾
وَ لَا تَمْشِ فِي الْاَرْضِ مَرَحًا ۚ اِنَّكَ لَنْ
تَخْرِقَ الْاَرْضَ وَ لَنْ تَبْلُغَ الْجِبَالَ
طُوْلًا ﴿٣٧﴾ كُلُّ ذٰلِكَ كَانَ سَيِّئُهٗ عِنْدَ رَبِّكَ
مَكْرُوْهًا ﴿٣٨﴾

अपने हाथ को ना तो इतना तंग ही करो के कुछ ना दो और ना इतना कुशादा करो के कुल का कुल दे डालो, वर्ना इल्ज़ाम खोर्दा खाली हाथ होकर बैठ रहोगे। बेशक तुम्हारा रब जिसे चाहता है रोज़ी फ़राख़ कर देता है और वही तंग भी कर देता है, वो बेशक अपने बन्दों से बाख़बर है (और) देख रहा है। और तुम अपनी औलाद को ग़ुर्बत के डर से क़त्ल ना किया करो, हम उनको भी रिज़्क़ देते हैं और तुम को भी, बिलाशुबह उनका मार डालना बड़ा सख़्त गुनाह है। और तुम ज़िना के क़रीब भी ना जाया करो, क्योंके वो बेहयाई और बुरी राह है। और तुम उस शख़्स को मत क़त्ल करो जिसको अल्लाह ने हराम कर दिया है, मगर हक़ के साथ, और जो ना हक़ क़त्ल हो तो हमने उसके वारिस को इख़्तियार दिया है, फ़िर वो क़त्ल (के क़सास) में ज्यादती ना करे, बेशक उसकी मदद की जाएगी। और तुम यतीम के माल के क़रीब भी ना जाना, मगर अहसन तरीक़ से यहां तक (के) वो जवान हो, और अहेद को पूरा किया करो, बेशक अहद के बारे में पूछा जाएगा। और पूरा नापो जब नाप तोल करो और तोल कर दो सही तराज़ू से, ये अच्छा है, और अंजाम भी उसका अच्छा है। और तू उस बात के पीछे ना पड़ा कर जिसको तू जानता ना हो, कान, आंख, और दिल हर शख़्स से इन के बारे में पूछा जायेगा। तू ज़मीन पर अकड़ कर ना चलाकर, तू ज़मीन को फ़ाड़ नहीं सकेगा, और ना तू लम्बा होकर पहाड़ों की चोटी तक पहुंच सकता है। ये सारी बुरी आदतें तेरे रब के नज़दीक नापसंद हैं। (17:23-38)

इन आयतों में व्यक्तियों, परिवारों और समाज के लिए ज़रूरी नैतिक संस्कार बताए गए हैं। मातापिता के साथ नर्मी और महरबानी का व्यवहार अल्लाह की इबादत के बाद सबसे महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित काम है कि ये दोनों बातें शुक्रगुज़ार (आभारी) होने की अभिव्यक्ति हैं।

शुक्रगुज़ारी इस ढंग से होनी चाहिए कि कोई एक बात या काम भी इस शुक्रगुज़ारी के विपरीत न हो। तथापि, अल्लाह इस बात से बाख़बर है कि व्यक्ति के दिल की गहराई में क्या भावनाएं हैं और अगर उसके मुंह से कोई ग़लत बात निकल जाती है और उस पर उसे पछतावा होता है तो अल्लाह उसको जानते हैं, और अल्लाह तआला बख़्शने वाले महरबान हैं।

परिवार के अन्दर बर्ताव करने के लिए भी कुछ निर्देश हैं। सब से पहली बात तो यह है कि रिश्तेदारों की नैतिक और भौतिक मदद करते रहना चाहिए। परिवार का अस्तित्व और उसका रख रखाव ज़िना (व्यभिचार या बलात्कार) से तबाह हो जाता है, यौन अपराध एक बने बनाए परिवार का विनाश कर देता है और अविवाहित यौन सम्बंधों का चलन परिवार निर्माण के रास्ते में रुकावट है। यह बात ग़ौरतलब है कि यहां निकाह के दायरे से बाहर यौन सम्बंधों का ज़िक्र करने से पहले बच्चों की हत्या का ज़िक्र है और उसके तुरन्त बाद किसी को अकारण मार देने से मना किया गया है, मतलब यह हुआ कि अवैध यौन सम्बंध व्यक्तियों, परिवार और समाज सभी के लिए नैतिक और शरीरिक विनाश का कारण हैं।

आम तौर से परिवार के बाहर और समाज के अन्दर जिस किसी को भी मदद की ज़रूरत हो उसकी मदद व्यक्ति और समाज दोनों को करना चाहिए। ऐसे ज़रूरतमंद लोगों की सूची में सबसे ऊपर यतीम (अनाथ) आते हैं जिन्हें परिवार और समाज में सुरक्षा की ज़रूरत होती है। यतीमों का ज़िक्र इस आयत के तुरन्त बाद वाली आयत में होना भी महत्वपूर्ण है जिसमें अवैध यौन सम्बंधों से मना किया गया है, कि निकाह के दायरे से बाहर यौन सम्बंधों के नतीजे में यतीमों की संख्या बढ़ना सम्भव है क्योंकि ऐसी स्थिति में मातापिता नदारद होते हैं और बच्चे बिन बाप के पैदा होते हैं और यह भी यतीमी (अनाथपन) का ही एक रूप है। यतीमों के अधिकारों और उनकी सम्पत्ति की सुरक्षा करने तथा उसे विक्सित करने का यहां आदेश दिया गया है।

इसके अलावा बहुते से ऐसे लोग होते हैं जो बीमारी, अपंगता, बेरोज़गारी, बुढ़ापे या दूसरे कारणों से अस्थाई या स्थाई रूप से मदद के ज़रूरतमंद होते हैं, ऐसे लोगों की मदद परिवार और सार्वजनिक फण्ड से की जानी चाहिए। राजनीतिक और वैचारिक शरणार्थियों के विभिन्न अधिकारों का भी ज़िक्र क़ुरआन में मुसाफ़िरों के शीर्षक के तहत हुआ है। चूंकि क़ुरआन यह सीख देता है कि इंसान को पूरी दुनिया से सम्बंध रखना चाहिए, और अपने इंसानी अधिकारों की रक्षा के लिए एक जगह से दूसरी जगह पलायन कर लेना चाहिए, इसलिए यह अपने घर और देस को छोड़ कर मुसलमानों के देस में आने वालों को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरक्षण देता है, चाहे उनके पिछले हालात जो कुछ भी हों और वो कितने ही मालदार रहे हों क्योंकि उन्हें उनके देस और संसाधनों से वंचित होना पड़ा है।

अल्लाह की हिदायत में माल कमाने की तरह ही माल ख़र्च करने पर भी पाबन्दियां लगाई गयी हैं। व्यक्ति और समाज के हितों की रक्षा और उनके बीच संतुलन रखना और भौतिक हितों को मानवता के मौलिक तत्व पर यानि मानवीय संस्कारों व आत्मिकता पर नहीं छा जाने देना इस संदर्भ में इस्लाम की शिक्षाओं का लक्ष्य हैं। ''इसराफ़'' (अत्यधिक और अनावश्यक ख़र्च करना) और ''तबज़ीर'' (गुनाह के कामों में ख़र्च करना) का सम्बंध न केवल ख़र्चों की मात्रा से है बल्कि उसके उद्देश्य से भी है जैसा कि तिबरी ने अपनी तफ़सीर में कुछ प्राचीन मुफ़स्सिरों के बोल नक़ल किए हैं। अल्लाह की नेअमत को बेकार करना भी अल्लाह की नाशुक्री है, और जो कोई अपने बौद्धिक, नैतिक और वित्तीय संसाधनों को बेकार करता है, वह अपने रब के सबसे बड़े नाशुक्रे (अवज्ञाकारी) शैतान के पाले में चला जाता है।

क़ुरआन में लोगों से मामला करने के लिए विशेष नियम दिए गए हैं। माल कमाने के सिलसिले में क़ुरआन यह शिक्षा देता है कि नाप-तौल में ईमानदारी से काम लिया जाए, और यह सिद्धांत हर फ़ैसले और जांच की हर प्रक्रिया पर और हर तरह के इंसानी मामलों में लागू होता है और केवल कारोबारी लेनदेन तक सीमित नहीं है। जहां तक इंसानी जान का मामला है तो यह जान अल्लाह की दी हुई है, अल्लाह ने इसकी हिफ़ाज़त का हुक्म दिया है, इसे सम्मानित किया है और अकारण जान लेने से मना किया है, सिवाय इसके कि इस्लामी शरीअत के अनुसार किसी मामले में ऐसा करना ज़रूरी हो जाए।, जैसे कि आत्मरक्षा में दूसरे की जान चली जाना या समाज के अधिकारों की रक्षा में किसी की जान लेना। हत्या करने वाले को सज़ा देने को मृतक के परिजनों का अधिकार बनाया गया है और यह हक़ दिलाना सरकार का काम है। परिजनों के होते हुए सरकार इस प्रक्रिया में एक पक्ष है लेकिन परिजन न हों तो फिर यह ज़िम्मेदारी अकेले सरकार की ही होती है। क़ुरआन के मशहूर मुफ़स्सिर ज़मख़शरी (मृ 119 हिजरी) ने इसकी अच्छी व्याख्या की है। हत्या अगरचे अपने आप में एक गम्भीर अपराध है और अल्लाह ने इसकी निन्दा की है (हज़रत आदम के बेटे का दूसरे बेटे के हाथों क़त्ल सबसे पहला इंसानी कत्ल था), लेकिन निर्दोष बच्चों की हत्या करना जो आम तौर से ग़रीबी की आशंका से होता है, इंसानी जान पर सबसे बड़ा हमला है।

अनिवार्य नैतिक संस्कारों का ज़िक्र पूरा करते हुए क़ुरआन इंसान की शरीरिक, मानसिक और बौद्धिक योग्यताओं के दुरुपयोग से बचने के लिए भी चेताता है। जिन योग्यताओं और प्रतिभाओं की जवाबदेही इंसान को इस जीवन में भी करना है और मरने के बाद आख़िरत के जीवन में भी करना है। किसी को भी अपनी शक्तियों का इस्तेमाल दूसरों के अधिकारों का हनन करने में नहीं लगाना चाहिए और दूसरी तरफ़ उन्हें नज़रअंदाज़ भी नहीं करना चाहिए कि आस्थाऐं, भावनाएं और फ़ैसले ठोस तथ्यों के किसी ठोस आधार या उचित कारणों के बगैर ही होने लगें। क०मन सेंस की अनदेखी करना और अक़्ल के विपरीत काम करना नैतिक

ज़िम्मेदारी के अभाव को और जिहालत, हठधर्मी व जल्दबाज़ी को व्यक्त करता है। इंसानी सम्बंधों में इंसाफ़ का अकेला रक्षक अख़लाक़ (नैतिकता) है, और यह अख़लाक़ ही है जो इंसाफ़ से भी आगे बढ़ कर अहसान (परोपकार) और मुरव्वत से काम लेने पर तैयार करता है। एक अल्लाह पर और आख़िरत के अनन्त जीवन पर ईमान इंसान की नैतिक चेतना को परवान चढ़ाता और उसे तेज़ करता है, और ईमान वालों के नज़दीक हर तरह की अनैतिकता अल्लाह से दूरी का कारण बनती है।

وَاصْبِرْ نَفْسَكَ مَعَ الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ رَبَّهُمْ بِالْغَدٰوةِ وَ الْعَشِيِّ يُرِيْدُوْنَ وَجْهَهٗ وَ لَا تَعْدُ عَيْنٰكَ عَنْهُمْ ۚ تُرِيْدُ زِيْنَةَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَ لَا تُطِعْ مَنْ اَغْفَلْنَا قَلْبَهٗ عَنْ ذِكْرِنَا وَاتَّبَعَ هَوٰىهُ وَ كَانَ اَمْرُهٗ فُرُطًا ۝

और आप अपने आपको उन लोगों के साथ रोके रखा करें जो सुबह व शाम अपने रब की इबादत महज़ उसकी रज़ा जुई के लिये करते हैं और दुनियावी ज़िन्दगी की रौनक़ के ख़्याल में आपकी नज़र उनसे हटने ना पाये, और जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफ़िल बना दिया है, उसका कहना ना माना कीजिये और वो अपनी नफ़्सानी ख़्वाहिश पर चलता है और उसका हाल हद से आगे बढ़ गया है। (18:28)

हर आदमी के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि अपने दोस्तों का चुनाव बहुत सोच समझ कर करे कि ज़रूरत के समय जिनकी दोस्ताना मदद पर वह भरोसा करता हो, और यह बात अल्लाह के पैग़म्बर के लिए ख़ास तौर से ज़रूरी है। उनके साथी ऐसे ही होना चाहिएं जिनका आचरण अल्लाह के दीन की उन मर्यादाओं को अभिव्यक्त करता हो जिनकी तरफ़ अल्लाह के पैगम्बर लोगों को बुलाते हैं। उपरोक्त आयत यह इशारा करती है कि अल्लाह के पैग़म्बर के साथियों का असिल गुण यह है कि अल्लाह उनके दिल व दिमाग़ में और उनके आचरण में मौजूद होता है। वो सुबह शाम अपने रब को पुकारते हैं, न केवल नमाज़ों में बल्कि सोते और जागते अपने तमाम कामों और बातों में अल्लाह के हाज़िर और साक्षी होने का अहसास रखते हैं। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि वो अल्लाह को मशीनी ढंग वाली इबादत या सामाजिक रीतियों में ही याद नहीं करते बल्कि जीवन भर पूरे होश व हवास के साथ अल्लाह की प्रसन्नता के तलबगार रहते है:"और वो अपने दिमाग़ में किसी का अहसान उतारने का विचार नहीं रखते, बल्कि अपने रब की रज़ामन्दी ही चाहते हैं"(92:19-20)।

जो लोग अपने दिल व दिमाग़ में अल्लाह के हाज़िर व निगरां होने का अहसास रखते हैं उनके विपरीत ऐसे लोग भी हैं जो अल्लाह से बे परवाह हो कर और अल्लाह की हिदायत के बगैर अंधेरे में जीते हैं, और केवल अपनी इच्छाओं की पैरवी करते हैं, और इस तरह दो

अतिवादों के बीच झूलते रहते हैं और उनका आचरण अक़्ल और तर्क की सभी हदें पार कर लेता है। हालांकि ऐसे शक्तिशाली लोग किसी समय ऐसे बेबस हो जाते हैं कि समाज में हो रहे बदलावों की ज़िम्मेदारी नहीं उठा सकते और उन मूल्यों पर नहीं होते जिनकी तरफ़ अल्लाह का दीन और अल्लाह के पैग़म्बर बुलाते हैं। और चूंकि वो इस दुनिया के अस्थाई आकर्षण में फंस कर रह जाते हैं और अपनी क्षणिक इच्छाएं पूरी करने में लगे रहते हैं। अल्लाह का दीन पूरी गम्भीरता और चेतना का तक़ाज़ा करता है ताकि आदमी उसे पूरे ध्यान से सुने और अपनाए और खुद को पूरी चेतना के साथ उसके हवाले कर दे। इसी लिए मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से कहा गया कि उन लोगों को अनदेखा करें जो बे परवाह हैं चाहे वो कितने ही मालदार हों और उनका सामाजिक रुत्बा कैसा ही हो। यह रूहानी और नैतिक स्थिति हालांकि सभी लोगों में एक ही स्तर पर होना मुमकिन नहीं है इसलिए दीन में इसके लिए समान स्तर की मांग नहीं है लेकिन यह एक आदर्श है जो लोगों को उनके आचरण के लिए रास्ता दिखाता है।

وَ اضْرِبْ لَهُمْ مَّثَلًا رَّجُلَيْنِ جَعَلْنَا
لِاَحَدِهِمَا جَنَّتَيْنِ مِنْ اَعْنَابٍ وَّ حَفَفْنٰهُمَا
بِنَخْلٍ وَّ جَعَلْنَا بَيْنَهُمَا زَرْعًا ﴿٣٢﴾ كِلْتَا
الْجَنَّتَيْنِ اٰتَتْ اُكُلَهَا وَ لَمْ تَظْلِمْ مِّنْهُ
شَيْـًٔا ۙ وَّ فَجَّرْنَا خِلٰلَهُمَا نَهَرًا ﴿٣٣﴾ وَّ كَانَ لَهٗ
ثَمَرٌ ۚ فَقَالَ لِصَاحِبِهٖ وَ هُوَ يُحَاوِرُهٗۤ اَنَا
اَكْثَرُ مِنْكَ مَالًا وَّ اَعَزُّ نَفَرًا ﴿٣٤﴾ وَ دَخَلَ
جَنَّتَهٗ وَ هُوَ ظَالِمٌ لِّنَفْسِهٖ ۚ قَالَ مَاۤ اَظُنُّ
اَنْ تَبِيْدَ هٰذِهٖۤ اَبَدًا ﴿٣٥﴾ وَّ مَاۤ اَظُنُّ
السَّاعَةَ قَآئِمَةً ۙ وَّ لَئِنْ رُّدِدْتُّ اِلٰى رَبِّيْ
لَاَجِدَنَّ خَيْرًا مِّنْهَا مُنْقَلَبًا ﴿٣٦﴾ قَالَ لَهٗ
صَاحِبُهٗ وَ هُوَ يُحَاوِرُهٗۤ اَكَفَرْتَ بِالَّذِيْ
خَلَقَكَ مِنْ تُرَابٍ ثُمَّ مِنْ نُّطْفَةٍ ثُمَّ
سَوّٰىكَ رَجُلًا ﴿٣٧﴾ لٰكِنَّا۠ هُوَ اللّٰهُ رَبِّيْ وَ لَاۤ

और आप उन लोगों से दो आदमियों का हाल बयान कीजिये, उन दोनों में से एक को हमने दो बाग़ात अंगूर के दिये, और उन दोनों के इर्द गिर्द खजूर के दरख्त लगा दिये थे और दोनों के दरमियान खेती पैदा कर दी थी। दोनों ख़ूब फल लाते, और उसकी पैदावार में कोई कमी ना होती, और दोनों के बीच में (एक) नहर जारी कर दी थी। और उस शख़्स के पास और भी माल था, तो अपने उस दोस्त से मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बातें करते हुए कहने लगा के मैं तुम से माल में भी ज़्यादा हूँ और जथ्थे में भी ज़बरदस्त हूँ। और वो अपने ऊपर ज़ुल्म करता हुआ अपने बाग़ में दाख़िल हुआ, मैं नहीं ख़्याल करता के ये बाग़ कभी तबाह हो। और ना मैं ये ख़्याल करता हूँ के क़यामत बर्पा होगी, और अगर मैं अपने रब की तरफ़ लौटाया जाऊँ तोवहां ज़रूर इससे अच्छी जगह पाऊँगा। तो उसका दोस्त जो उससे गुफ़्तगू कर रहा था कहने लगा, क्या तुम उस ज़ात के साथ कुफ़्र करते हो जिसने तुम को मिटटी से पैदा किया, फ़िर नुतफ़े से, फ़िर तुमको पूरा मर्द बना दिया। लेकिन मैं तो ये कहता हूँ के वो

أُشْرِكُ بِرَبِّيْٓ أَحَدًا ﴿٣٨﴾ وَ لَوْ لَآ إِذْ دَخَلْتَ
جَنَّتَكَ قُلْتَ مَا شَآءَ اللّٰهُ ۙ لَا قُوَّةَ إِلَّا
بِاللّٰهِ ۚ إِنْ تَرَنِ أَنَا أَقَلَّ مِنْكَ مَالًا وَّ
وَلَدًا ﴿٣٩﴾ فَعَسٰى رَبِّيْٓ أَنْ يُّؤْتِيَنِ خَيْرًا مِّنْ
جَنَّتِكَ وَ يُرْسِلَ عَلَيْهَا حُسْبَانًا مِّنَ
السَّمَآءِ فَتُصْبِحَ صَعِيْدًا زَلَقًا ﴿٤٠﴾ أَوْ يُصْبِحَ
مَآؤُهَا غَوْرًا فَلَنْ تَسْتَطِيْعَ لَهٗ طَلَبًا ﴿٤١﴾ وَ
أُحِيْطَ بِثَمَرِهٖ فَأَصْبَحَ يُقَلِّبُ كَفَّيْهِ عَلٰى مَآ
أَنْفَقَ فِيْهَا وَ هِيَ خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوْشِهَا وَ
يَقُوْلُ يٰلَيْتَنِيْ لَمْ أُشْرِكْ بِرَبِّيْٓ
أَحَدًا ﴿٤٢﴾ وَ لَمْ تَكُنْ لَّهٗ فِئَةٌ يَّنْصُرُوْنَهٗ
مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَ مَا كَانَ مُنْتَصِرًا ﴿٤٣﴾
هُنَالِكَ الْوَلَايَةُ لِلّٰهِ الْحَقِّ ۭ هُوَ خَيْرٌ ثَوَابًا
وَّ خَيْرٌ عُقْبًا ﴿٤٤﴾ وَ اضْرِبْ لَهُمْ مَّثَلَ
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا كَمَآءٍ أَنْزَلْنٰهُ مِنَ السَّمَآءِ
فَاخْتَلَطَ بِهٖ نَبَاتُ الْأَرْضِ فَأَصْبَحَ
هَشِيْمًا تَذْرُوْهُ الرِّيٰحُ ۭ وَ كَانَ اللّٰهُ عَلٰى
كُلِّ شَيْءٍ مُّقْتَدِرًا ﴿٤٥﴾ اَلْمَالُ وَ الْبَنُوْنَ
زِيْنَةُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَ الْبٰقِيٰتُ الصّٰلِحٰتُ
خَيْرٌ عِنْدَ رَبِّكَ ثَوَابًا وَّ خَيْرٌ أَمَلًا ﴿٤٦﴾

यानी अल्लाह ही मेरा रब है, और मैं अपने रब के साथ किसी को शरीक नहीं करता। और जब तुम अपने बाग़ में दाख़िल हुए तो तुमने ये क्यों नहीं कहा माशा अल्लाह लाक़ुव्वता इल्लाबिल्लाह, अगर तुम मुझे मालो औलाद में कम तर देखते हो। तो वो वक़्त नज़दीक है के मेरा रब मुझे तेरे बाग़ से अच्छा अता कर दे और इस तुम्हारे बाग़ पर कोई आफ़त आसमान से भेज दे जिससे वो साफ़ मैदान हो जाये। या उसका पानी ख़ुश्क हो जाए, फ़िर तुम उसको तलाश करके ना ला सको। और उसके सारे फ़ल को आफ़त ने आ घेरा, फ़िर वो अपने हाथ मलता रह गया, इस पर जो उसने उस बाग़ पर ख़र्च किया था और वो बाग़ अपने छत्रियों पर गिर पड़ा था और कहने लगा के काश मैं अपने रब के साथ किसी को शरीक ना बनाता। और उसके पास कोई ऐसी जमात ना थी जो उसकी मदद करती सिवाये अल्लाह के और ना वो ख़ुद बदला ले सका। ऐसे मौक़े पर सब इख़्तियार अल्लाह बरहक़ के लिये है, उसका सिला अच्छा है और उसी का दिया हुआ बदला अच्छा है। और उन से दुनिया की ज़िन्दगी की मिसाल बयान कीजिये जैसा पानी है जिसे हमने आसमान से बरसाया, उसके साथ ज़मीन की रौयदगी मिल गई, फ़िर वो चूरा चूरा हुई के हवायें उसको उड़ाती फ़िरती हैं, और अल्लाह हर चीज़ का क़ुदरत रखता है। माल और बेटे दुनिया की ज़िन्दगी की रौनक़ हैं, और नेकियां जो बाक़ी रहने वाली हैं, आपके रब के नज़दीक सवाब के ऐतबार से बहुत बेहतर हैं, और उम्मीद के लिहाज़ से भी बहुत बेहतर हैं। (18:32-46)

क़ुरआन में पिछले पैग़म्बरों और उनकी क़ौमों के कई क़िस्से बयान किये गए हैं। हज़रत ईसा के बारे में जो क़िस्से बयान हुए हैं वो बाइबिल में भी हैं और बाइबिल पढ़ने वालों की जानकारी में पहले से भी हैं। ऊपर के किस्से इस सच्चाई को बयान करते हैं कि तमाम प्राकृतिक संसाधन और इंसानी उपलब्धियां जो व्यक्तिगत और सार्वजनिक सम्पत्ति होती हैं

अल्लाह ने ही पैदा की हैं, जो कारणों को पैदा करने वाला हैं और वास्तविक जनक व दाता है। इंसान कभी कभी सामने से दिखाई देने वाले कारणों को भी नहीं समझता और अपनी उत्तम अक़ली योग्यताओं को भी यह जानने के लिए इस्तेमाल नहीं करता कि ज़ाहिर में दिखाई देने वाली चीजों के पीछे कोन कारक है हालांकि उसे समझने का दारोमदार अक़ल पर ही है और अक़ल को काम में लाने का प्राकृतिक और अनिवार्य नतीजा इसी समझ का प्राप्त होना है। इंसान का घमण्ड और ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार और अपने कर्तव्यों से मुंह मोड़ने की रीति इंसान की अदूरदर्शिता को और ज़्यादा बढ़ा देती है और इस अदूरदर्शिता की वजह से इंसान यह समझता है कि उसके जीवन का उद्देश्य बस ऐश व आराम भोगना और जीवन के आनन्द उठाते रहना ही है। क़ुरआन बार बार यह कहता है कि "जो चीज़ ज़मीन पर है हम ने उसको ज़मीन के लिए सजावट बनाया है ताकि लोगों की परख करें कि उनमें कौन अच्छा अमल (आचरण) करने वाला है" (18:7)।

क़ुरआन की अनेक आयतों में इस बात से बार बार ख़बरदार किया गया है कि इंसान इस दुनिया के आकर्षण और आनन्द में पूरी तरह उलझ कर न रह जाए। दिल को खींचने वाली इन दुनियावी चीज़ों में सबसे पहली चीज़ परिवार और माल व दौलत है। इन चीज़ों में पूरी तरह मगन हो जाने से इंसान कमनज़री में मुब्तिला हो जाता है और दूरदर्शिता से काम नहीं लेता और अपने कर्मों के दूरगामी नतीजों से आंखे फेरे रहता है। इस तरह अपनी बौद्धिक, मानसिक और नैतिक ज़रूरतों को नहीं समझ पाता है (और देखें 3:10,116(8:28(1:87(19:77-80(28:76-83(34:35(57:20(58:17(68:12-23(69:28-29(89:17-20(92:11(104:3-4)। ऊपर बयान हुए क़िस्से में एक आदमी का ज़िक्र है जिसके पास फलदार बाग थे, उपजाऊ ज़मीन थी, ज़बरदस्त दौलत थी और बहुत से बेटे थे और समर्थकों व सहायकों की भीड़ थी। वह इस दुनियावी शान से घमण्ड में आ गया और इस बात का इंकार ही कर बैठा कि यह माल व दौलत देने वाला अल्लाह है जो सारी सृष्टि को पैदा करने वाला है जो जिस को चाहता है देता है। उसने इस बात को बहुत लापरवाही से लिया और यह समझा कि ये नेअमतें उसे हमैशा मिली रहेंगी। लेकिन अचानक ही उसके बाग़ नष्ट हो गए और फिर उसने यह माना कि उसका विचार ग़लत था और इस धोखे की वजह से उसका सब कुछ तबाह हो गया। उसका साथी धन दौलत और रसूख में उससे कम था, लेकिन उसने इस बात को समझा जिसे समझने में उसका मालदार साथी असफ़ल रहा था। उसने अपने मालदार साथी का ध्यान अस्थाई चीज़ों के आकर्षण और दुनियावी जीवन से परे वास्तविक तथ्यों की तरफ़ दिलाने का प्रयास किया। यह क़िस्सा कम माल व दौलत रखने वाल या माल व दौलत से वंचित मोमिनों का एक उदाहरण है और दूसरी तरफ़ ऐसे घमण्ड़ी मालदार और बाहुबलियों का उदाहरण है जो अल्लाह

की हिदायत और पैग़ाम पर कोई ध्यान नहीं देते हैं, और दोनों के दृष्टिकोण और लक्ष्य एक दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं। सच आख़िरकार विजयी होता है लेकिन कौन सही है और कौन ग़लत यह बाद में ही मालूम होता है। इस छोटे से दुनियावी जीवन की छटपटाहट का बयान इसी सूरत में इससे पहले भी हो चुका है (18:46)।

ऊपर के क़िस्से में दोनों आदमियों की आपसी तकरार का जो बयान हुआ है वह इन जैसी परिस्थितियों में कहीं भी सामने आ सकती है, और क़ुरआन इस तरह की अस्थाई क्षणिक आकर्षणों में मस्त हो जाने का ज़िक्र करता है:"जान रखों कि दुनिया का जीवन केवल खेल तमाशा और साज सज्जा और तुम्हारा आपस में घमण्ड करना और एक दूसरे से ज़्यादा माल व औलाद की तलब है (इसकी मिसाल ऐसी है) जैसे बारिश कि (उससे खेती उगती औरे) किसानों को खेती भली लगती है फिर वह जोबन पर आ जाती है फिर (ऐ देखने वाले) तू उसको देखता है कि (पक कर) पीली पड़ गयी फिर चूरा चूरा हो गयी। और आख़िरत में (काफ़िरों के लिए) कड़ा अज़ाब और (मोमिनों के लिए) अल्लाह की तरफ़ से बख़्शिश और ख़ुशनूदी है और दुनिया का जीवन तो धोखे का सामान है"(57:20)। यह मिसाल भी पहले वाली आयत 18:45 में बयान हुई मिसाल के समान है। माल और बेटे दुनियावी जीवन की साज सज्जा हैं, और यह एक स्वभाविक चाह और जायज़ लगन है जिसकी निन्दा नहीं की जा सकती (7:31-32; 16:72; 25:74)। लेकिन यह जीवन का असिल मकसद और लक्ष्य नहीं होना चाहिए और इन चीज़ों को वही स्थान देना चाहिए जो अक़ल कहती है अगर अक़ल की बात को गम्भीरता से सोचा जाए। अक़ल दुनिया के इस छोटे से जीवन के स्रोत, उसके मक़सद व लक्ष्य और उसके अंजाम पर ग़ौर करती है तो यह पाती है कि इंसान की सभी उमंगों और आरज़ुओं की पूर्ति और वास्वतिक इंसाफ़ केवल आख़िरत के जीवन में ही हो सकता है।

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ ۙ﴿۱﴾ الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ
صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ ۙ﴿۲﴾ وَ الَّذِيْنَ هُمْ عَنِ اللَّغْوِ
مُعْرِضُوْنَ ۙ﴿۳﴾ وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِلزَّكٰوةِ فٰعِلُوْنَ ۙ﴿۴﴾
وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِفُرُوْجِهِمْ حٰفِظُوْنَ ۙ﴿۵﴾ اِلَّا عَلٰٓى
اَزْوَاجِهِمْ اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَاِنَّهُمْ
غَيْرُ مَلُوْمِيْنَ ۚ﴿۶﴾ فَمَنِ ابْتَغٰى وَرَآءَ ذٰلِكَ
فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْعٰدُوْنَ ۚ﴿۷﴾ وَ الَّذِيْنَ هُمْ
لِاَمٰنٰتِهِمْ وَ عَهْدِهِمْ رٰعُوْنَ ۙ﴿۸﴾ وَ الَّذِيْنَ هُمْ

तहक़ीक़ उन ईमान वालों ने फ़लाह हासिल कर ली। जो अपनी नमाज़ में इजज़ो नियाज़ करते हैं। और जो बेहूदा बातों से परहेज़ करने वाले हैं। और ज़कात अदा करने वाले हैं। और जो अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करने वाले हैं। मगर अपनी मनकूहा बीवियों से, या अपनी बांदियों से, क्योंकि उन पर कोई मलामत नहीं। पस जो उनके अलावा के तालिब हों, वो हद से आगे बढ़ने वाले हैं। और जो अपनी अमानतों और इक़रार का लिहाज़ करने वाले हैं। और जो अपनी नमाज़ों की पाबंदी करते हैं। तो ऐसे लोग वारिस होने वाले हैं। जो जन्नतुल

फ़िरदोस के वारिस होंगे, वो हमेशा उसमें रहेंगे। (23:1-11)

عَلٰى صَلَوٰتِهِمْ يُحَافِظُوْنَ ۝٩ اُولٰٓئِكَ هُمُ
الْوٰرِثُوْنَ ۝١٠ الَّذِيْنَ يَرِثُوْنَ الْفِرْدَوْسَ ؕ هُمْ
فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝١١

दैनिक जीवन में नैतिक मर्यादाओं को बरतने के लिए अल्लाह का तक़वा एक मुस्तक़िल निगरां है। लेकिन फिर भी ख़ास ख़ास नैतिक मूल्यों की निशानदेही ज़रूरी है ताकि लोग इस बारे में किसी भ्रम में न रहें कि उनके लिए दीनदारी और नेकी का तक़ाज़ा क्या है, और वैध या अवैध में अतिवाद व अतिश्योक्ति से बचें। क़ुरआन और सुन्नत ने ख़ास ख़ास नैतिक मूल्यों को बयान कर दिया है। इन आयतों में मोमिनों के कुछ महत्वपूर्ण नैतिक गुण बयान किए गए हैं। वो अपनी नमाज़ों की हिफ़ाज़त करते हैं और अल्लाह के आगे विनम्रता से झुके रहते हैं, और इन नमाज़ों से अपने व्यवहारिक जीवन के लिए सीख लेते हैं जैसे अल्लाह का तक़वा, शरीरिक और आत्मिक व नैतिक पवित्रता, अपनी दिशा ठीक रखना, अनुशासन और सही ढंग अपनाना वग़ैरह (29:25)। इसके अलावा यह कि एक मोमिन केवल उसी बातचीत में शामिल होता है जिसका कोई मक़सद व मतलब हो और बेकार बातों से अलग रहता है। वह अपनी इन्द्रियों और शक्तियों का इस्तेमाल ईमानदारी से करता है और जो चीज़ें उसके अपने या दूसरों के लिए शरीरिक या नैतिक रूप से हानिकारक होती है उसे देखने, सुनने, चखने या छूने से बचता है। इसी तरह मोमिन अमानतों (दूसरों के अधिकार वाली चीजों या बातों) को सुरक्षित रखता है और अपने वायदे और प्रतिज्ञाएं पूरी करता है।

नैतिक मूल्यों को बरतने का सबसे पहला मैदान आदमी का घर है। किसी मोमिन का किसी से भी निकाह के बग़ैर कोई यौन सम्बंध नहीं होना चाहिए चाहे यह घर में काम करने वाली सेविका ही क्यों न हो। इस्लाम में बांदी रखने का चलन प्राथमिक काल में एक अस्थाई अनुमति थी, और जब तक आज़ादी व बराबरी के क़ानूनी व नैतिक निमय नहीं बने थे तब तक इस चलन को अन्तरिम रूप से मंज़ूरी दी गयी थी जो कि अरब और बाक़ी दुनिया में प्राचीन काल से चला आ रहा एक चलन था। सेविका या बांदी से यौन सम्बंध केवल वासना पूरी करने के लिए नहीं बनाया जा सकता और न इसे गोपनीय रखा जाना चाहिए बल्कि जायज़ तरीक़े से उसके साथ निकाह किया जा सकता है जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है:"इन (दासियों) के साथ निकाह करो उनके घर वालों की इजाजत से और रीति के अनुसार उनका महर भी दो, पत्नि बना कर रखो ना कि बदकारी करने के लिए और छुपा हुआ सम्बंध हो" (4:25)।

इसके अतिरिक्त, नैतिक मूल्य तब तक पूरी नहीं हो सकते जब तक कि सामाजिक न्याय और दूसरों की भलाई चाहने की आदत और भावनाएं पैदा न हों। अतःक़ुरआन यह इंसानी

रवैया विक्सित करता है कि हर आदमी अपनी ऊर्जा, ज्ञान, दौलत या जो चीज़ भी उसे मिली हुई है उसमें से दूसरे ज़रूरतमंदों पर खर्च करे या सामूहिक रूप से सामाजिक ज़रूरतों के लिए ख़र्च करे। क़ुरआन सामाजिक कल्याण की इस अनिवार्य मद के लिए जो हर आदमी पर लागू होती है एक ख़ास शब्दावली उपयोग करता है जिससे उसका नैतिक महत्व जाहिर होता है, यानि "ज़कात" (माल को पवित्र करने वाली मद)।

जिन मोमिनों में उपरोक्त गुण और विशेषताएं होती हैं वो जन्नत की विरासत प्राप्त करेंगे और उसमें हमेशा रहेंगे। आख़िरत के अनन्त जीवन पर विश्वास का ज़िक्र ऊपर की आयत में एक अल्लाह पर ईमान के अनिवार्य अंग के रूप में किया गया है कि यह ईमान उन गुणों और विशेषताओं को मोमिन के अन्दर गहराई से जमा देता है। अल्लह और उसकी हिदायत, उसके इंसाफ़ और आख़िरत के जीवन में बदला मिलने का यह पूरा अक़ीदा ऐसा अक़ीदा (आस्था) है जो नैतिक मूल्यों की हिफ़ाज़त करता है। पैग़म्बर साहब की हदीसें इस बात की तरफ़ इशारा करती हैं कि सच्चा ईमान तरह तरह के अच्छे कामों पर उभारता है, जिसमें यह बात भी शामिल है कि किसी कष्ट देने वाली चीज़ को रास्ते से हटा दिया जाए ताकि किसी को कष्ट न हो (मुस्लिम, अबुदाऊद, नसई, इब्ने माजा)। किसी से मुस्कुरा कर मिलना भी नेकी है (बुखारी, इब्ने हंबल, तिरमिजी), और किसी का अपनी पत्नि के मुंह में निवाला देना भी नेकी है (बुखारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिजी)।

وَ لَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ رَحْمَتُهٗ فِي
الدُّنْيَا وَ الْاٰخِرَةِ لَمَسَّكُمْ فِيْ مَاۤ اَفَضْتُمْ
فِيْهِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿۱۴﴾ اِذْ تَلَقَّوْنَهٗ
بِاَلْسِنَتِكُمْ وَ تَقُوْلُوْنَ بِاَفْوَاهِكُمْ مَّا لَيْسَ
لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ وَّ تَحْسَبُوْنَهٗ هَيِّنًا ۖ وَّ هُوَ
عِنْدَ اللّٰهِ عَظِيْمٌ ﴿۱۵﴾ وَ لَوْ لَاۤ اِذْ سَمِعْتُمُوْهُ
قُلْتُمْ مَّا يَكُوْنُ لَنَاۤ اَنْ نَّتَكَلَّمَ بِهٰذَا ۖ
سُبْحٰنَكَ هٰذَا بُهْتَانٌ عَظِيْمٌ ﴿۱۶﴾ يَعِظُكُمُ
اللّٰهُ اَنْ تَعُوْدُوْا لِمِثْلِهٖۤ اَبَدًا اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ﴿۱۷﴾ وَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ ؕ وَ
اللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿۱۸﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ يُحِبُّوْنَ

और अगर अल्लाह का फ़ज़ल और उसकी रहमत इस दुनिया और आख़िरत में तुम पर ना होती तो जिस शुग़ल में तुम मुनहमिक थे उसकी वजह से तुम पर बड़ा सख़्त अज़ाब नाज़िल होता। जब तुम अपनी ज़बानों से उसका एक दूसरे से ज़िक्र करते थे, और अपने मुंह से ऐसी बात कहते थे जिसका तुम को कोई इल्म ना था, और तुम उसे एक हल्की बात समझते थे, और अल्लाह के नज़दीक वो बड़ी भारी बात थी। और जब तुम ने उसे सुना था तो क्यों ना कहा के ये हमारी शान के ख़िलाफ़ है के ऐसी बात ज़बान पर लाये, ऐ रब! तू तो पाक है, ये तो बहुत बड़ा बोहतान है। तुम को अल्लाह नसीहत करता है के तुम फ़िर ऐसा काम ना करना, अगर तुम मोमिन हो। और अल्लाह तुम को आयात खोल कर बयान करता है, और अल्लाह तो बड़ा जानने वाला, और

اَنْ تَشِيْعَ الْفَاحِشَةُ فِي الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَهُمْ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۙ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ؕ وَاللّٰهُ
يَعْلَمُ وَ اَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿١٩﴾ وَ لَوْ لَا فَضْلُ
اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ رَحْمَتُهٗ وَ اَنَّ اللّٰهَ رَءُوْفٌ
رَّحِيْمٌ ﴿٢٠﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّبِعُوْا
خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ؕ وَ مَنْ يَّتَّبِعْ خُطُوٰتِ
الشَّيْطٰنِ فَاِنَّهٗ يَاْمُرُ بِالْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ ؕ وَ
لَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ رَحْمَتُهٗ مَا زَكٰى
مِنْكُمْ مِّنْ اَحَدٍ اَبَدًا ۙ وَّ لٰكِنَّ اللّٰهَ يُزَكِّيْ
مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ اللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢١﴾ وَ لَا
يَاْتَلِ اُولُوا الْفَضْلِ مِنْكُمْ وَ السَّعَةِ اَنْ
يُّؤْتُوْۤا اُولِي الْقُرْبٰى وَالْمَسٰكِيْنَ
وَالْمُهٰجِرِيْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۖ وَلْيَعْفُوْا
وَلْيَصْفَحُوْا ؕ اَلَا تُحِبُّوْنَ اَنْ يَّغْفِرَ اللّٰهُ
لَكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٢﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ
يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنٰتِ الْغٰفِلٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ
لُعِنُوْا فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۪ وَ لَهُمْ عَذَابٌ
عَظِيْمٌ ﴿٢٣﴾ يَّوْمَ تَشْهَدُ عَلَيْهِمْ اَلْسِنَتُهُمْ وَ
اَيْدِيْهِمْ وَ اَرْجُلُهُمْ بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿٢٤﴾
يَوْمَئِذٍ يُّوَفِّيْهِمُ اللّٰهُ دِيْنَهُمُ الْحَقَّ
وَ يَعْلَمُوْنَ اَنَّ اللّٰهَ هُوَ الْحَقُّ الْمُبِيْنُ ﴿٢٥﴾

बड़ा हिकमत वाला है। जो लोग ये पसंद करते हैं के बेहयाई मोमिनों में .ख़ूब फ़ैले, तो उनको दुनिया और आख़िरत में दुख देने वाला अज़ाब होगा, और अल्लाह (.ख़ूब) जानता है और तुम नहीं जानते। और अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी रहमत ना होती (तो क्या ना हो जाता) और ये के अल्लाह बड़ा शफ़ीक़ और मेहरबान है। मोमिनों! शैतान के क़दम ब क़दम ना चलना, और जो शैतान के क़दमों पर चलेगा तो वो बेहयाई और बुरे काम ही बताएगा, और अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी मेहरबानी ना होती तो एक श.ख़्स भी तुम में पाकबाज़ ना होता, लेकिन अल्लाह तो जिसे चाहता है पाक कर देता है, और अल्लाह .ख़ूब सुनने वाला है जानने वाला है। और तुम में से जो लोग बुज़ुर्गी वाले हैं वो क़सम ना खायें के वो रिश्तेदारों और मोहताजों और वतन छोड़ने वालों को कोई .ख़र्च इख़्राजात नहीं देंगे, बल्के वो माफ़ कर दें, और दरगुज़र कर दें, क्या तुम ये पसंद नहीं करते के अल्लाह तुम को ब.ख़्श दे, और अल्लाह बड़ा ब.ख़्शने वाला बड़ा रहम वाला है। और जो पाक दमान, बुरे कामों से बे.ख़बर मोमिन औरतों पर बदकारी की तोहमत लगाते हैं, उन पर दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की लानत होगी और उनको सख़्त अज़ाब होगा। जिस दिन उनकी ज़बानें, उनके हाथ और उनके पांऊ उनके आमाल पर गवाही देंगे। उस दिन अल्लाह उनका बदला जो चाहिये पूरा पूरा देगा, और उनको मालूम हो जाएगा के अल्लाह हक़ को ज़ाहिर करने वाला है। (24:14-25)

क़ुरआन कहता है कि जिस चीज़ का तुम्हें ज्ञान न हो उसके पीछे न पड़ा करो कि कान और आंख और दिल इन सबे (अंगों) से ज़रूर पूछगछ होगी (17:36)। इसी तरह क़ुरआन मुसमलानों को यह सिखाता है कि वो जब कोई ख़बर सुनें तो उसकी पुष्टि कर लिया करें ताकि

बेख़बरी में किसी को नुक़सान न पहुंचा दें (49:6), और क़ुरआन निराधार अंदाज़ों, जिज्ञासा और ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई बयान करने) से बचने की भी शिक्षा देता है (49:12)। और अगर किसी पर दुष्कर्म या व्यभिचार का आरोप बिला सुबूत लगा दिया जाए तो यह तो बहुत ही घातक बात होगी, जिनके सम्बंध में ऊपर की आयतों में और पहली वाली आयतों में नैतिक और क़ानूनी शिक्षाएं दी गयी हैं। किसी के व्यक्तित्व व प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाने वाली अफ़वाहें न केवल उस व्यक्ति को नुक़सान पहुंचाती हैं बल्कि पूरे समाज को नुक़सान पहुंचाती हैं इस तरह से कि समाज से हया (लज्जा) और जिम्मेदारी जाती रहती है और भृष्टाचार के मामलों के प्रति समाज उदासीन और निश्चिंत हो जाता है। इसके नतीजे में व्यक्तियों और समाज का भरोसा ख़त्म हो जाता है (24:12,19), और इस नैतिक ख़राबी का नुक़सान निश्चित रूप से सभी को होगा इस दुनिया में भी और आख़िरत में भी। जो बुराई भी कहीं जन्म ले उसे तुरन्त वहीं के वहीं दबा देना चाहिए, इसलिए झूटे आरोप या लांछन लगाने वालों और ऐसी बातों को सुनने वालों दोनों को ग़लत बात कहने और सुनने से बचने का निर्देश दिया गया है (24:12,15-16) क्योंकि जीभ और अन्य सभी अंग क़ियामत के दिन गवाही देंगे कि इन से इस दुनिया में क्या काम लिया गया है (24:24)।

लेकिन, इस दुनिया में लांछन लगाने के नतीजे भुगतने का मतलब यह नहीं है कि किसी ग़रीब या ज़रूरतमंद को, जो लांछन लगाने का दोषी हो, भूखा मरने के लिए छोड़ दिया जाए। उसे अपनी भौतिक आवश्यकताएं पूरी करने का हक़ है और उसका नैतिक प्रशिक्षण भी करना होगा, लेकिन ऐसा व्यक्ति अपने ग़लत काम के लिए नैतिक और क़ानूनी रूप से जवाबदेह होगा। इस तरह के नैतिक और क़ानूनी अपराध में इस्लाम की शिक्षा और उसका क़ानून इंसान के सुधार पर ध्यान देता है। एक तरफ़ दोषी को तौबा करने और भरपाई करने का मौक़ा दिया गया है और दूसरी तरफ़ पीड़ित को मआफ़ी की प्रेरणा दी गयी है कि मआफ़ कर देना ही ज़्यादा बहतर है, और उसे यह सीख दी गयी है कि बुराई का जवाब बुराई से देने और लांछन के जवाब में लांछन लगाने से बचे (2:109,160,178,237(3:89,134,159(4:164(5:13, 34,39(7:153(23:96(24:5,22(25:70(42:40(64:14)।

وَ عِبَادُ الرَّحْمٰنِ الَّذِيْنَ يَمْشُوْنَ عَلَى الْاَرْضِ هَوْنًا وَّ اِذَا خَاطَبَهُمُ الْجٰهِلُوْنَ قَالُوْا سَلٰمًا ﴿۶۳﴾ وَ الَّذِيْنَ يَبِيْتُوْنَ لِرَبِّهِمْ سُجَّدًا وَّ قِيَامًا ﴿۶۴﴾ وَ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا اصْرِفْ عَنَّا عَذَابَ جَهَنَّمَ ۖ اِنَّ عَذَابَهَا

और रहमान के बन्दे वो हैं जो ज़मीन पर आहिस्ता चलते हैं और जब जाहिल लोग उनसे बातें करते हैं तो उनको सलाम कहते हैं। और जो अपने रब के सामने सज्दा और क़याम करते हुए रातें बसर करते हैं। और वो ये दुआ मांगते हैं के ऐ हमारे रब! दोज़ख के अज़ाब को हमसे दूर रखना, क्योंके दोज़ख का अज़ाब बड़ा तकलीफ़ दह है। बेशक दोज़ख तो बहुत ही बुरा ठिकाना और बुरा

كَانَ غَرَامًا ﴿٦٥﴾ اِنَّهَا سَآءَتْ مُسْتَقَرًّا وَّ
مُقَامًا ﴿٦٦﴾ وَ الَّذِيْنَ اِذَآ اَنْفَقُوْا لَمْ يُسْرِفُوْا
وَ لَمْ يَقْتُرُوْا وَ كَانَ بَيْنَ ذٰلِكَ قَوَامًا ﴿٦٧﴾ وَ
الَّذِيْنَ لَا يَدْعُوْنَ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ وَ لَا
يَقْتُلُوْنَ النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ اللّٰهُ اِلَّا
بِالْحَقِّ وَ لَا يَزْنُوْنَ ۚ وَ مَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ
يَلْقَ اَثَامًا ﴿٦٨﴾ يُّضٰعَفْ لَهُ الْعَذَابُ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ وَ يَخْلُدْ فِيْهٖ مُهَانًا ﴿٦٩﴾ اِلَّا مَنْ
تَابَ وَ اٰمَنَ وَ عَمِلَ عَمَلًا صَالِحًا فَاُولٰٓئِكَ
يُبَدِّلُ اللّٰهُ سَيِّاٰتِهِمْ حَسَنٰتٍ ؕ وَ كَانَ
اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿٧٠﴾ وَ مَنْ تَابَ وَ عَمِلَ
صَالِحًا فَاِنَّهٗ يَتُوْبُ اِلَى اللّٰهِ مَتَابًا ﴿٧١﴾ وَ
الَّذِيْنَ لَا يَشْهَدُوْنَ الزُّوْرَ ۙ وَ اِذَا مَرُّوْا
بِاللَّغْوِ مَرُّوْا كِرَامًا ﴿٧٢﴾ وَ الَّذِيْنَ اِذَا ذُكِّرُوْا
بِاٰيٰتِ رَبِّهِمْ لَمْ يَخِرُّوْا عَلَيْهَا صُمًّا وَّ
عُمْيَانًا ﴿٧٣﴾ وَ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا
مِنْ اَزْوَاجِنَا وَ ذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّ اجْعَلْنَا
لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ﴿٧٤﴾ اُولٰٓئِكَ يُجْزَوْنَ
الْغُرْفَةَ بِمَا صَبَرُوْا وَ يُلَقَّوْنَ فِيْهَا تَحِيَّةً وَّ
سَلٰمًا ﴿٧٥﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ حَسُنَتْ مُسْتَقَرًّا وَّ مُقَامًا ﴿٧٦﴾
قُلْ مَا يَعْبَؤُا بِكُمْ رَبِّيْ لَوْ لَا دُعَآؤُكُمْ ۚ
فَقَدْ كَذَّبْتُمْ فَسَوْفَ يَكُوْنُ لِزَامًا ﴿٧٧﴾

मुक़ाम है। और वो जब ख़र्च करते हैं तो ना फ़िज़ूल ख़र्ची करते हैं और ना तंगी करते हैं, और उनक ख़र्च एतदाल से होता है। और वो जो अल्लाह के साथ किसी और माबूद को नहीं पुकारते, और जिस जान को मार डालना अल्लाह ने मना किया है उसको क़त्ल नहीं करते मगर जायज़ तरीक़ा (यानी शरीयत के हुक्म से) और ना वो बदकारी करते हैं, और जो ये काम करेगा सख़्त गुनाह में मुब्तला होगा। क़यामत के रोज़ उसको दुगना अज़ाब होगा, और उसमें हमेशा ज़िल्लतो ख़्वारी से रहेगा। मगर जो तौबा कर ले और ईमान ले आये, और अच्छे काम करे, तो अल्लाह उनके गुनाहों को नेकियों से बदल देगा, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला, रहम करने वाला है। और जो तौबा करता है और अच्छे काम करता है तो बिला शुबह वो अल्लाह की तरफ़ रूजू करता है। और वो झूटी गवाही नहीं देते, और जब उनको बेहूदा चीज़ों के पास से गुज़रने का इत्तिफ़ाक़ हो तो बुज़ुर्गाना अंदाज़ से गुज़रते हैं। और जब उनको अपने रब के अहकामात सुनाये जाते हैं तो उन पर अंधे, बहरे होकर नहीं गिरते (बल्के ग़ौरो फ़िक्र से सुनते हैं)। और वो जो अपने रब से दुआ मांगते हैं, ऐ हमारे रब! तू हमको हमारी बीवियों और हमारी औलाद की तरफ़ से आंख की ठंडक इनायत फ़रमा, और हमको परहेज़गारों का इमाम बना। इन सिफ़ात के लोगों को उनके सब्र के बदले में ऊँचे ऊँचे महलात अता किये जायेंगे, और वहां उनका दुआ व सलाम के साथ इसतक़बाल किया जायेगा। इसमें वो हमेशा रहेंगे, वो ठहरने और रहने के लिये बहुत ही उम्दा जगह होगी। आप फ़रमा दीजिये! अगर तुम लोग मेरे रब को नहीं पुकारते तो मेरा रब तुम्हारी कोई परवा नहीं करता, तुमने तकज़ीब की है सो उसकी सज़ा तुम्हारे लिये लाज़िम होगी। (25:63-77)

यहां नैतिकता का आधार एक अल्लाह की इबादत को बताया गया है। अल्लाह के लिए अल्लाह का विशेष नाम अर्रहमान इस्तेमाल किया गया है क्योंकि उसकी हिदायत व मार्गदर्शन इंसान के लिए उसकी महरबानी व निगरानी का ही नतीजा है, उसके ग़ज़बनाक होने या हाकिम होने से नहीं है। केवल उसी की इबादत और उसके तक़वा से पैदा होने वाला नैतिक आचरण इंसान के व्यक्तिगत और सामाजिक फ़ायदे के लिए है, क्योंकि वह महान रब अपने आप में तो बेनियाज़ (आवश्यकता मुक्त) है। जो लोग अल्लाह के अलावा कभी किसी को नहीं पुकारते और केवल उसी की इबादत करते हैं वो जब भी अल्लाह को याद करते हैं तो अल्लाह की तरफ़ से उन्हें हिदायत मिलती है। उनका अल्लाह से अटूट सम्बंध और उसी की तरफ़ अपनी दिशा को बनाए रखना उनकी नैतिकता के लिए एक आधार है क्योंकि उनके दिल व दिमाग़ में अल्लाह के हाज़िर और निगरां होने की भावना उन्हें दुनिया की ज़बरदस्त उक्सावें और असहनशीलता के मुक़ाबले नैतिक रूप से गिरने से बचाता है। अतः रहमान के बन्दों को मूर्खतापूर्ण उत्तेजनाओं के मुक़ाबले आत्मनियंत्रण की शक्ति प्राप्त होती है और उनका आत्मसम्मान उन्हें अशलील हरकतों से दूर रखता है। वो कभी झूटी गवाही नहीं देते, क्योंकि उन्हें अपनी हर बात की जवाबदेही का अहसास रहता है। जहां तक उनके कर्मों की बात है तो वो ख़ुद हत्या और बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों में कभी लिप्त नहीं होते। इसके अलावा अल्लाह के बन्दे अल्लाह की दी हुई नेअमतों की जवाबदेही का अहसास रखते हैं इसलिए वो ख़र्च करने में संतुलित रवैया रखते हैं और बेकार में खर्च करने या कंजूसी करने दोनों से बचते हें। अच्छी बातों व कामों के लिए और नैतिक बुलंदी के लिए असिल मैदान परिवार और घर होता है इसलिए अल्लाह के बन्दे अपने रब से दुआ करते हैं कि उनके घर वाले उनकी आंखों की ठण्डक बनें, और उनका घर समाज में दूसरों के लिए नमूना बने। अलबत्ता, ग़लती हो जाना एक इंसानी कमज़ोरी है और ऐसी स्थिति में आदमी को तौबा कर लेना चाहिए और अच्छे कामों में लगे रहना चाहिए। सच्ची तौबा से इंसान की कर्म पत्रि में गुनाह (पाप) की जगाह सवाब (पुण) लिख दिया जाता है। जो लोग अल्लाह के तक़वा की वजह से इस तरह का ऊंचा नैतिक नमूना रखते हैं उन्हें इस दुनिया में भी इसका बदला मिलता है और आख़िरत में भी वो इसका बदला पाएंगे।

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِهٖ هُمْ بِهٖ يُؤْمِنُوْنَ ﴿٥٢﴾ وَ اِذَا يُتْلٰى عَلَيْهِمْ قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِهٖٓ اِنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّنَآ اِنَّا كُنَّا مِنْ قَبْلِهٖ مُسْلِمِيْنَ ﴿٥٣﴾ اُولٰٓئِكَ يُؤْتَوْنَ اَجْرَهُمْ

जिन लोगों को हमने इससे पहले किताब दी थी, वो इस पर ईमान ले आते हैं। और जब उनको क़ुरआन पढ़ कर सुनाया जाता है, तो कहते हैं हम इस पर ईमान ले आये, बेशक ये हक़ है हमारे रब की तरफ़ से, और हम तो इससे पहले ही फ़रमांबर्दार थे। उन लोगों को दोगुना

مَّرَّتَيْنِ بِمَا صَبَرُوْا وَ يَدْرَءُوْنَ بِالْحَسَنَةِ
السَّيِّئَةَ وَ مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ﴿٥٤﴾ وَ اِذَا
سَمِعُوا اللَّغْوَ اَعْرَضُوْا عَنْهُ وَ قَالُوْا لَنَآ
اَعْمَالُنَا وَ لَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۫ سَلٰمٌ
عَلَيْكُمْ ۫ لَا نَبْتَغِي الْجٰهِلِيْنَ ﴿٥٥﴾ وَ اِذَا
سَمِعُوا اللَّغْوَ اَعْرَضُوْا عَنْهُ وَ قَالُوْا لَنَآ
اَعْمَالُنَا وَ لَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۫ سَلٰمٌ
عَلَيْكُمْ ۫ لَا نَبْتَغِي الْجٰهِلِيْنَ ﴿٥٥﴾ اِنَّكَ لَا
تَهْدِيْ مَنْ اَحْبَبْتَ وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِيْ
مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَ هُوَ اَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِيْنَ ﴿٥٦﴾

बदला दिया जाएगा, क्योंके वो सब्र करते रहे हैं, और भलाई से बुराई को दूर करते हैं, और जो हमने उनको दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं। और जब कोई बेहूदा बात सुनते हैं तो उससे मुंह फ़ेर लेते हैं, और कहते हैं के हमको हमारे आमाल मुबारक और तुमको तुम्हारे आमाल मुबारक! सलाम हो तुम पर, हम जाहिलों के ख़्वासतगार नहीं। (ऐ अल्लाह के नबी) आप जिसको चाहें उसे हिदायत नही दे सकते, बल्के अल्लाह ही जिसे चाहता है हिदायत देता है, वो हिदायत पाने वालों को ख़ूब जानता है। (28:52-56)

ऊपर की आयतों में अल्लाह के सभी पैग़म्बरों की शिक्षाओं के असिल पैग़ाम और समान मूल्यों को बयान किया गया है:"और जो पैग़म्बर हमने तुम से पहले भेजे उनकी तरफ़ यही वही भेजी कि मेरे सिवा कोई पूजनीय नहीं तो मेरी ही इबादत करो"(21:25), "और हमने हर समुदाय में पैग़म्बर भेजे कि अल्लाह की ही इबादत करो और मूर्तियों से बचो तो उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनको अल्लाह ने हिदायत दी और कुछ ऐसे हैं जिन पर गुमराही साबित हुई सो जमीन में चल फिर कर देख लो कि झुटलाने वालों का अंजाम कैसा हुआ"(16:36)। मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से पहले जिन लोगों के पास अल्लाह का पैग़ाम आया है वो उसको पहचानते हैं:"कहते हैं कि हम इस पर ईमान लाए। बेशक वह हमारे रब की तरफ से सत्य है (और) हम तो पहले से ही आज्ञाकारी ह"। चूंकि वो ईमानदार थे और अल्लाह के आख़री पैग़ाम को उन्होंने गम्भीरता से सुना और समझा और अहंकार नहीं किया इसलिए वो पहले और बाद वाले दोनों पैग़ामों पर ईमान लाने का अच्छा नतीजा पाएंगे। उन्हें उनके नैतिक आचरण और उनके अच्छे कामों का बदला भी दिया जाएगा जिनसे उन्होंने अपने सच्चे ईमान को साबित किया जैसे मुस्तिकल तौर से नेकी पर अडिग रहना, बुराई को भलाई से दूर करना, और अल्लाह की दी हुई नेअमतों में से दूसरे ज़रूरतमंदों पर खर्च करना।

इसके अलावा, ईमान लाने वालों के लिए यह ज़रूरी है कि जब वह कोई लांछन की बात या कोई भी घटिया बात सुनें तो वो उससे अलग हो जाएं यह कहते हुए कि हर आदमी को अपने कर्मों का जवाब अल्लाह को देना होगा, और यह बात अल्लाह पर ईमान रखने वाले हर

व्यक्ति की ख़ासियत है। इस बात के कुछ अनिवार्य नतीजे हैं जो निश्चित रूप से सामने आते हैं। इससे मोमिनों को यह अहसास मिलता है कि वो फिलहाल भी और आगे भी एक मज़बूत आधार पर खड़े हैं और यह अहसास उन्हें आक्रामक व्यवहार करने वालों के साथ शान्तिपूर्ण मामला करने के लिए उभारता है, क्योंकि ज्ञान रखने वाले लोग सच्चाइयों की अनदेखी करने वालों के बराबर नही हो सकते, और अक़्ल रखने वाले ही सोच विचार से काम लेते हैं (39:9)। कोई व्यक्ति अपने किसी चाहने वाले को सच्चाई पर ईमान लाने के लिए मजबूर नहीं कर सकता क्योंकि हर व्यक्ति के पास अपनी अक़्ल और आज़ाद मर्ज़ी है। लिहाज़ा, आदमी इसी बात का ज़िम्मेदार है कि दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करे और नैतिक आचरण के साथ मिले, और फ़ैसला हर व्यक्ति पर छोड दिया जाए: "तुम सब को अल्लाह की तरफ लोट कर जाना है फिर जिन बातों में तुम्हारे बीच मतभेद था वो तुम्हें बता देगा" (5:48)।

وَابْتَغِ فِيمَآ اٰتٰىكَ اللّٰهُ الدَّارَ الْاٰخِرَةَ وَلَا تَنْسَ نَصِيْبَكَ مِنَ الدُّنْيَا وَاَحْسِنْ كَمَآ اَحْسَنَ اللّٰهُ اِلَيْكَ وَلَا تَبْغِ الْفَسَادَ فِي الْاَرْضِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُفْسِدِيْنَ ۝

और जो कुछ अल्लाह ने तुम को अता किया है उससे आख़िरत का घर हासिल करो, और दुनिया में से अपना हिस्सा ना भूल, और जैसे अल्लाह ने तुम से भलाई की है, वैसी ही तुम भी भलाई करो, और मुल्क में फ़साद ना करते फ़िरो, क्योंके अल्लाह फ़साद करने वालों को पसंद नहीं रखता। (28:77)

इस्लाम ईमान लाने वालों को अपने व्यवहार व बर्ताव में संयम व संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देता है। माल खर्च करने में उन्हें कंजूसी और बेकार खर्च करने दोनों से मना किया गया है कि इस दुनिया के आकर्षण में मस्त हो कर कहीं वो अपनी नैतिक और सामाजिक ज़िम्मेदारियां न भूल जाएं या जीवन को त्याग ही न दें और दूसरे लोगों से भी पूरी तरह अलग न हो जाएं और कठोर तपस्याओं से अपनी स्वभाविक इच्छाओं को कुचल न डालें। संयम का रास्ता यह है कि इस दुनिया में ख़ूब महनत और मुशक़्क़त की जाए और लोगों से मिला जुला जाए जबकि मन में हमेशा यह विचार हो कि इस सारी महनत और मुशक़्क़त का मतलब अल्लाह की हिदायत पर अमल करना है और इसका उद्देश्य अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करना है। इस तरह आदमी माल व दौलत और जीवन शैली के बारे में स्वयं पर नियंत्रण रखता है, वह न तो इस जीवन के अस्थाई आनन्दों में खो कर रह जाता है और न उन से उचित फ़ायदा उठाने से ख़ुद को वंचित रखता है और सामाजिक व नैतिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करता रहता है।

تِلْكَ الدَّارُ الْاٰخِرَةُ نَجْعَلُهَا لِلَّذِيْنَ لَا يُرِيْدُوْنَ عُلُوًّا فِي الْاَرْضِ وَ لَا فَسَادًا ؕ وَالْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَ ﴿۸۳﴾

वो जो आख़िरत का घर है, हमने उसे उन लोगों के लिये तैयार कर रखा है जो मुल्क में ज़ुल्म और फ़साद का इरादा नहीं रखते और (अच्छा) अंजाम तो सिर्फ़ अल्लाह से डरने वालों के लिये है। (28:83)

आख़िरत के जीवन पर ईमान और वहां आदमी की आरज़ुओं व उमंगों की पूर्ति और सब को इंसाफ मिलने का विश्वास ज़मीन पर किसी भी तरह के भृष्टाचार और उत्पात पर नियंत्रण पाने में मदद करता है, यानि यह विश्वास कि नैतिकता पर बने रहने का बदला आख़िरत में मिलेगा दुनिया में नैतिकता को बाक़ी रखे हुए है।

وَ لَا تُجَادِلُوْٓا اَهْلَ الْكِتٰبِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ ۖ اِلَّا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْهُمْ وَ قُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِالَّذِيْٓ اُنْزِلَ اِلَيْنَا وَ اُنْزِلَ اِلَيْكُمْ وَ اِلٰهُنَا وَ اِلٰهُكُمْ وَاحِدٌ وَّ نَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿۴۶﴾

और अहले किताब से बहस ना किया करो मगर बेहतरीन तरीक़ा से, मगर हां जो उनमें ज़्यादती करें उनके साथ उसी तरह मुजादला करो और कह दो के जो किताब हम पर उतरी, और जो किताबें तुम पर उतरीं हम सब पर ईमान रखते हैं, और हमारा और तुम्हारा माबूद एक ही है, और हम सब उसी के फ़रमांबर्दार हैं। (29:46)

नैतिक आचरण न केवल भौतिक कामों तक सीमित है बल्कि बौद्धिक कामों में भी ज़रूरी है और हर तरह की नैतिकता चाहे वह किसी भी स्तर की हो अल्लाह के तक़वा से बढ़ती और तरक़्क़ी करती है। हर इंसान को अपनी आस्था रखने और उसको व्यक्त करने का अधिकार है, इस बात को ज़हन में रखना न केवल नैतिक बात है बल्कि खुद ईमान व अक़ीदे में इसकी जड़ें समाहित हें क्योंकि तमाम इंसानों को आख़िरकार पलट कर अल्लाह की तरफ़ जाना है और वही है जो सत्य के बारे में इंसानों के आपसी मतभेदों का फ़ैसला करेगा। इसके अलावा जो लोग एक अल्लाह में यक़ीन रखते हैं उन्हें अपनी समान बुनियादों को समझना चाहिए, और अपने मतभेदों के बारे में उत्तेजक बातों से बचना चाहिए, कि वो सभी लोग एक ही ख़ुदा की इबादत करते हैं और उसके आगे ख़ुद को झुकाते हैं और उसकी हिदायत का अनुसरण करते हैं। या तो उचित, सकारात्मक और निर्माणकारी ढंग से आपसी वार्ता होना चाहिए या फिर अगर लगे कि इससे नुक़सान हो रहा है तो इससे बचना बहतर है। हर समुदाय में बुरे व्यक्तियों का मौजूद होना भी एक प्राकृतिक तथ्य है, और ऐसे व्यक्तियों से हुज्जतबाज़ी और तकरार बेमतलब और बेनतीजा ही होगी। इस लिए या तो उनसे यह तकरार शुरू ही न होना चाहिए या फिर जैसे ही यह लगे कि सामने वाला सत्य को समझने और बात को नतीजे तक पहुंचाने में गम्भीर नहीं है तो बीच में ही इससे रुक जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में आक्रामक और

उत्तेजक तकरार ठीक नहीं है चाहे यह तकरार उन लोगों से ही हो रही हो जो अल्लाह को छोड़ कर दूसरों को पूजनीय बनाते हैं (6:108)। सोच विचार में, विचारों की अभिव्यक्ति में और दूसरों से विचारों का आदान प्रदान करने में नैतिकता को ध्यान में रखना जरूरी है। आदमी को हमेशा खुद अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी ईमानदार होना चाहिए। दूसरों की बात सुनना, उनके विचारों को तर्क की कसोटी पर परखना और जिसकी जो बात सही लगे उसे मानना, इन गुणों के लिए ऊंचे दर्जे की नैतिकता चाहिए। जो लोग अल्लाह का तक़वा रखते हैं उन्हें इस सिलसिले में अपनी योग्यता को साबित करना होगा।

اِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَ الْمُسْلِمٰتِ وَ الْمُؤْمِنِيْنَ وَ الْمُؤْمِنٰتِ وَ الْقٰنِتِيْنَ وَ الْقٰنِتٰتِ وَ الصّٰدِقِيْنَ وَ الصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِيْنَ وَ الصّٰبِرٰتِ وَ الْخٰشِعِيْنَ وَ الْخٰشِعٰتِ وَالْمُتَصَدِّقِيْنَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّآئِمِيْنَ وَ الصّٰٓئِمٰتِ وَالْحٰفِظِيْنَ فُرُوْجَهُمْ وَ الْحٰفِظٰتِ وَ الذّٰكِرِيْنَ اللّٰهَ كَثِيْرًا وَّ الذّٰكِرٰتِ ۙ اَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿۳۵﴾

बेशक मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें, मोमिन मर्द और मोमिना औरतें, फ़रमांबर्दार औरतें, रास्त बाज़ मर्द और रास्त बाज़ औरतें, सब्र करने वाले मर्द और सब्र करने वाली औरतें, और आजिज़ी करने वाले मर्द और आजज़ी करने वाले मर्द और आजज़ी करने वाली औरतें, ख़ैरात करने वाले मर्द, और सब्र करने वाली औरतें, रोज़ा रखने वाले मर्द और रोज़ा रखने वाली औरतें, अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाले मर्द और अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाली औरतें और अल्लाह को कसरत से याद करने वाले मर्द और अल्लाह को कसरत से याद करने वाली औरतें, अल्लाह ने सब के लिये तैयार कर रखा है अज्रे अज़ीम। (23:35)

यह बात ग़ौरतलब है कि ऊपर की आयत में गुणों के संदर्भ में पुरुषों और स्त्रियों दोनों का अलग अलग ज़िक्र किया गया है। क़ुरआन ने कई जगह पर औरतों के स्वतंत्र व्यक्तित्व और समान हैसियत को उजागर किया है (3:195(33:36(49:11)। एक अल्लाह की इबादत व बन्दगी, अल्लाह पर मज़बूत ईमान और भरोसा, उसके प्रति आत्मसमर्पण, उसके आगे झुके रहना और उसकी हिदायत को हमेशा ज़हन में रखना, चेतना व ज्ञान रखना कल्पनात्मक गुण हैं जबकि सच्चाई को पसन्द करना, धैर्य और संयम रखना, सदक़ा व ख़ैरात करते रहना, आत्मनियंत्रण रखना और अपने चरित्र की हिफ़ाज़त करना जैसे गुण इंसान के व्यवहार व बर्ताव को ज़ाहिर करते हैं। दोनों तरह के गुण एक दूसरे से इन्टरेक्ट करते हैं कि ईमान अच्छे कामों पर उभारता है, और इन अच्छे कर्मों व चरित्र से ईमान बढ़ता व निखरता है। इन दोनों बातों का ज़िक्र क़ुरआन में जगह जगह और बार बार किया गया है।

وَ لَا تَسْتَوِی الْحَسَنَةُ وَ لَا السَّیِّئَةُ ؕ اِدْفَعْ
بِالَّتِیْ هِیَ اَحْسَنُ فَاِذَا الَّذِیْ بَیْنَكَ وَ
بَیْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِیٌّ حَمِیْمٌ ﴿۳۴﴾ وَ مَا
یُلَقّٰىهَاۤ اِلَّا الَّذِیْنَ صَبَرُوْا ۚ وَ مَا یُلَقّٰىهَاۤ
اِلَّا ذُوْ حَظٍّ عَظِیْمٍ ﴿۳۵﴾

और ये बात उन ही लोगों को हासिल होती है जो बर्दाश्त करने वाले हैं और उन ही को नसीब होती है जो बड़े नसीब वाले हैं। और अगर आप को शैतान की तरफ़ से कोई वसवसा पैदा हो तो अल्लाह की पनाह मांगा करें, बिला शुबह वो ख़ूब सुनने वाला ख़ूब जानने वाला है। (41:34-35)

क़ुरआन में अल्लाह इंसाफ का हुक्म देता है लेकिन इस बात पर बार बार ज़ोर दिया गया है कि मआफ़ करना और बुराई का जवाब भलाई से देना एक ऊंचे दर्जे की बात है (2:109,178,237(3:134(5:13(7:199(13:22(15:85(24:22(42:40(43:89(64:14)। इस तरह का उत्तम नैतिक आदर्श दुशमनों को दोस्त बना देता है, लेकिन इसके लिए आत्मनियंत्रण और इच्छाशक्ति होना ज़रूरी है और केवल अच्छा नहीं बल्कि अच्छे से अच्छा तरीक़ा अपनाने का जज़्बा चाहिए। जो लोग इन गुणों से मालामाल होते हैं वो बहुत सौभाग्यशाली होते हैं इस लिहाज़ से कि इस दुनिया में उनके दोस्त बढ़ते चले जाते हैं और दुशमन कम होते जाते हैं, और आख़िरत में वो अल्लाह की तरफ़ से बड़ा बदला पाएंगे।

فَمَاۤ اُوْتِیْتُمْ مِّنْ شَیْءٍ فَمَتَاعُ الْحَیٰوةِ
الدُّنْیَا ۚ وَ مَا عِنْدَ اللّٰهِ خَیْرٌ وَّ اَبْقٰى
لِلَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَ عَلٰى رَبِّهِمْ یَتَوَكَّلُوْنَ ﴿۳۶﴾
وَ الَّذِیْنَ یَجْتَنِبُوْنَ كَبٰٓىِٕرَ الْاِثْمِ
وَ الْفَوَاحِشَ وَ اِذَا مَا غَضِبُوْا هُمْ
یَغْفِرُوْنَ ﴿۳۷﴾ وَ الَّذِیْنَ اسْتَجَابُوْا لِرَبِّهِمْ وَ
اَقَامُوا الصَّلٰوةَ ۪ وَ اَمْرُهُمْ شُوْرٰى
بَیْنَهُمْ ۪ وَ مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ یُنْفِقُوْنَ ﴿۳۸﴾ وَ
الَّذِیْنَ اِذَاۤ اَصَابَهُمُ الْبَغْیُ هُمْ
یَنْتَصِرُوْنَ ﴿۳۹﴾ وَ جَزٰٓؤُا سَیِّئَةٍ سَیِّئَةٌ
مِّثْلُهَا ۚ فَمَنْ عَفَا وَ اَصْلَحَ فَاَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ؕ
اِنَّهٗ لَا یُحِبُّ الظّٰلِمِیْنَ ﴿۴۰﴾ وَ لَمَنِ انْتَصَرَ

तो जो मालो मता तुम को दिया गया है, वो दुनिया की ज़िन्दगी के फ़ायदे के लिये है, और जो अल्लाह के पास है वो उस से कहीं बेहतर और क़ायम रहने वाला है, वो उन लोगों के लिये है जो ईमान लाये और अपने रब पर भरोसा रखते हैं। और जो लोग बड़े गुनाहों और बेहयाई के कामों से परहेज़ करते हैं और जब ग़ुस्सा आता है तो माफ़ कर देते हैं। और जो अपने रब का फ़रमान क़ुबूल करते हैं, और नमाज़ की पाबंदी करते हैं और उनका हर काम आपस के मशवरे से होता है और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं। और जो ऐसे हैं के जब उन पर ज़ुल्म होता है तो वो बराबर का बदला लेते हैं। और बुराई का बदला उसी तर्ज़ की बुराई है, फ़िर जो दरगुज़र कर दे और दुरूस्ती कर ले तो उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है, बिला शुबह अल्लाह ज़ालिमों को पसंद नहीं करता। और जो बराबर का बदला ले ले बाद उसके के उस पर ज़ुल्म हो तो ऐसे लोगों पर कोई

بَعْدَ ظُلْمِهٖ فَاُولٰٓئِكَ مَا عَلَيْهِمْ مِّنْ سَبِيْلٍ ۝ اِنَّمَا السَّبِيْلُ عَلَى الَّذِيْنَ يَظْلِمُوْنَ النَّاسَ وَ يَبْغُوْنَ فِي الْاَرْضِ بِغَيْرِ الْحَقِّ ؕ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ وَ لَمَنْ صَبَرَ وَ غَفَرَ اِنَّ ذٰلِكَ لَمِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ۝

गुनाह नहीं। गुनाह तो उन पर होता है जो लोगों पर ज़ुल्म करते हैं और मुल्क में नाहक़ फ़साद फ़ैलाते हैं, उन ही लोगों के लिये दर्दनाक अज़ाबा है। और जो सब्र करे और माफ़ कर दे, ये अल्बत्ता बड़े हौसले के कामों में से है। (42:36-43)

अल्लाह पर ईमान का लाज़मी तक़ाज़ा यह है कि हर मोमिन अल्लाह पर भरौसा रखे और अल्लाह ने मोमिनों के लिए जो नैतिक नियम बना दिए हैं उनकी पैरवी करे, चाहे कैसी ही उक्साहटें हों या दबावों का सामना हो। अल्लाह की मंशा यह नहीं है कि हम से कभी ग़लती ही न हो और हम हमेशा निर्दोष ही रहें, लेकिन हमें बड़े बड़े गुनाहों से बचने की हमेशा पूरी पूरी कोशिश करना चाहिए और छोटी छोटी जो ग़लतियां जब कभी हम कर बैठें तो हमें तुरन्त तौबा (प्रायिश्चित) कर लेना चाहिए (3:135)।

क़ुरआन ने जहां कहीं ईमान वालों के मौलिक गुणों का ज़िक्र किया है वहां सबसे पहले उन्हें यह सीख दी है कि वो अल्लाह की हिदायत का अनुसरण करें और नमाज़ों पर ध्यान दें। इसके बाद क़ुरआन सीधे यह बताता है कि उन्हें आपस के मामलों में सलाह मशौरा करना चाहिए और जो कुछ उन्हें बख़्शिश के रूप में दिया गया है उसमें से दूसरे ज़रूरतमंदों पर तथा सामाजिक ज़रूरतों पर ख़र्च करना चाहिए। आपसी सलाह व मशौरे से निर्णय लेने को इस सूरत में सबस महत्वपूर्ण मामले के रूप में ज़िक्र किया गया है और इसी संदर्भ में इस सूरत का नाम ''अलशूरा'' (सलाहकार मण्डल) है। सामूहिक रूप से निर्णय लेना एक जीवन शैली होना चाहिए, और यह तरीक़ा सबसे पहले घर और परिवार से शुरू होना चाहिए इस तरह कि पति पत्नि घर के मामले आपसी विचार विमर्श और सलाह से तय करें (2:233)।

इन आयतों में व्यक्तिगत रूप से किसी के ग़ुस्से मे आने और ज़ोर ज़बरदस्ती व प्रताड़ित करने के मामले में फ़र्क किया गया है (42:39-43), जहां एक तरफ़ मआफ़ करने और छोड़ देने का रवैया अपनाने की सीख दी गयी है वहीं दूसरी तरफ़ आत्मरक्षा का हक़ भी स्वीकार किया गया है, और जिसने उत्पीड़न और उत्याचार शुरू किया हो उसे इसके सभी नतीजों की ज़िम्मेदारी लेनी होगी, जिसमें उत्पीड़न का निशाना बनने वाले की तरफ़ से आत्मरक्षा में की गयी कार्रवाई भी शामिल है। लेकिन फिर भी मआफ़ कर देना हर हाल में ज़्यादा अच्छा है और इन आयतों में तीन बार इसी पर ज़ोर दिया गया है (37:40-42), अपने बचाव का समर्थन करने के बावजूद चूंकि मआफ़ कर देने से ज़ालिम और आगे ज़ुल्म करने से रुक सकता है,

जबकि जवाब देने से उसे और ज़ुल्म करने का बहाना मिलता है और उसके फिर भड़कने और उत्तजित होने की आशंका रहती है। इन दोनों विकल्पों में से आदमी किस को चुनता है यह परिस्थित पर निर्भर है, ख़ास तौर से ज़ुल्म व आक्रामकता की शिद्दत को देख कर, आक्रमणाकारी के व्यक्तित्व को देख कर और इस बात का अनुमान लगा कर उस समय ताक़त का जबाव ताक़त से देना बहतर रहेगा या फ़िलहाल अनदेखी कर देना ही बहतर है। जो भी स्थिति हो, हर हाल में ज़ुल्म के मुक़ाबले में मआफ़ कर देने का फ़ैसला लेने के लिए भी शरीरिक और भौतिक बल होना ज़रूरी है, क्योंकि जिस के पास बल ही नहीं है उसके पास तो मआफ़ करने के अलावा कोई चारा ही नहीं होता।

مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ ؕ وَالَّذِيْنَ مَعَهٗۤ
اَشِدَّآءُ عَلَى الْكُفَّارِ رُحَمَآءُ بَيْنَهُمْ
تَرٰىهُمْ رُكَّعًا سُجَّدًا يَّبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنَ
اللّٰهِ وَ رِضْوَانًا ۫ سِيْمَاهُمْ فِيْ وُجُوْهِهِمْ مِّنْ
اَثَرِ السُّجُوْدِ ؕ ذٰلِكَ مَثَلُهُمْ فِي التَّوْرٰىةِ ۚۖ
وَ مَثَلُهُمْ فِي الْاِنْجِيْلِ ۚۛ كَزَرْعٍ اَخْرَجَ
شَطْـَٔهٗ فَاٰزَرَهٗ فَاسْتَغْلَظَ فَاسْتَوٰى عَلٰى
سُوْقِهٖ يُعْجِبُ الزُّرَّاعَ لِيَغِيْظَ بِهِمُ
الْكُفَّارَ ؕ وَعَدَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ عَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ مِنْهُمْ مَّغْفِرَةً وَّ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿۲۹﴾

मोहम्मद अल्लाह के रसूल है, और जो लोग उनके साथ हैं, वो काफ़िरों पर बहुत सख़्त हैं, और आपस में रहमदिल ऐ मुख़ातिब! तो उनको देखेगा तो उनको रूकू, सजूद और अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी ख़ुशनूदी की तलब में मशग़ूल पायेगा सज्दों के असरात उनके चेहरों पर मौजूद हैं यही औसाफ़ तौरात और इंजील में लिखे गए हैं, के गोया एक खेती की मिस्ल हैं जिसने पहले ज़मीन से अपनी सूई निकाली, फ़िर वो मोटी हो गई, फ़िर वो अपने तने पर सीधी खड़ी हो गई, और काश्तकारों को ख़ुश करने लगी, ताके काफ़िरों का जी जलाये, उस गिरोह के जो लोग ईमान लाये, और नेक काम करते रहे उनसे अल्लाह ने मग़फ़िरत और बड़े अज्र का वादा फ़रमाया है। (48:29)

एक दूसरे के साथ हमदर्दी और विनम्रता का व्यवहार, और किसी आक्रामकता का सामना मज़बूती और जमाव के साथ करना किसी भी समाज के लिए दो तरफ़ा नैतिक मर्यादा है। जो लोग अल्लाह के आगे सिर झुकाए रहते हैं उनसे क़ुरआन यह मांग करता है कि अल्लाह की हिदायत का अनुसरण करें और एक दूसरे के साथ नर्मी और विनम्रता से पेश आएं। इसी के साथ दूसरों की आक्रामकता और ज़ुल्म के मुक़ाबले उन्हें मजबूती से खड़े होना चाहिए और उन लोगों का जम कर, ना कि अहंकार के साथ, मुक़ाबला करना चाहिए जो मोमिनों की विनम्रता को उनकी कमज़ोरी समझते हैं और उत्पीड़न व अत्याचार पर उतारू रहते हैं (और देखें आयत 5:54 जिसमें मोमिनों को आपस में नर्मी और काफ़िरों के साथ सख़्ती से पेश आने को कहा गया है)। इस आयत में जिन लोगों को हक़ (सत्य) का इंकारी कहा गया है ये वो लोग हैं जो

मोमिनों को ख़िलाफ़ आक्रामक हरकतें करते हैं, जबकि वो लोग जो मोमिनों के साथ शान्तिपूर्ण ढंग से रहते हैं उनसे शराफ़त और शालीनता का व्यवहार करने की सीख दी गयी है चाहे उनकी आस्थाएं कुछ भी हों (देखें आयत 60:8-9, जहां इन दोनों तरह के लोगों के बीच स्पष्ट अन्तर किया गया है)।

इस आयत में अल्लाह के आगे सिर झुकाए रहने और उसके प्रभाव उनके चेहरों और व्यवहार पर नज़र आने को पिछली किताबों के हवाले से ज़िक्र किया गया है, क्योंकि अल्लाह के सभी पैग़म्बरों की शिक्षा में केवल अल्लाह की इबादत करने और अल्लाह से सम्बंध के प्रभाव नैतिक व्यवहार में नज़र आने पर ज़ोर दिया गया है। पेड़ पौधों के अच्छी तरह फलने फूलने और उनसे अच्छी फ़सल आने का उदाहरण इंजील मे दिए गए उदाहरणों के समान है (देखें डंता पअ 27:28)। यह आयत यह निर्देश देती है कि सच्चे ईमान से वास्तविक नैतिक और सामाजिक विकास होता है जिससे जीवन सुरक्षित होता और बना रहता है और मोमिन अन्दरूनी गिरावट और बाहरी हमलों से सुरक्षित रहता है। अल्लाह के पैग़म्बर जीवन का ऐसा नैतिक नमूना बनने के लिए आए जिससे अल्लाह का पैग़ाम फैलता है और प्रभाव डालता है और जो कथन से ज़्यादा प्रभावपूर्ण होता है चाहे ये कथन कितने ही तार्किक और दिल को लगने वाले हों। प्रथम मुस्लिम समुदाय का जीवन जिसका नमूना अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और आपके साथियों ने पेश किया अरब के उन बहुत से लोगों के लिए प्रभावी हुआ जो जीवन के व्यवहारिक मामलों से दूर जा पड़े थे, जबकि वो लोग जो चिन्तन और मनन कर सकते थे उन्हें क़ुरआन ने अपने ध्वनि प्रभाव और अर्थपूर्ण संदेश से प्रभावित किया।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ جَآءَكُمْ فَاسِقٌۢ
بِنَبَاٍ فَتَبَيَّنُوْٓا اَنْ تُصِيْبُوْا قَوْمًۢا بِجَهَالَةٍ
فَتُصْبِحُوْا عَلٰى مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِيْنَ ۝٦ وَ
اعْلَمُوْٓا اَنَّ فِيْكُمْ رَسُوْلَ اللّٰهِ ؕ لَوْ يُطِيْعُكُمْ
فِيْ كَثِيْرٍ مِّنَ الْاَمْرِ لَعَنِتُّمْ وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ
حَبَّبَ اِلَيْكُمُ الْاِيْمَانَ وَ زَيَّنَهٗ فِيْ
قُلُوْبِكُمْ وَ كَرَّهَ اِلَيْكُمُ الْكُفْرَ وَالْفُسُوْقَ
وَ الْعِصْيَانَ ؕ اُولٰٓئِكَ هُمُ الرّٰشِدُوْنَ ۝٧
فَضْلًا مِّنَ اللّٰهِ وَ نِعْمَةً ؕ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ

ऐ ईमान वालों! अगर कोई फ़ासिक़ आदमी तुम्हारे पास कोई .ख़बर लेकर आये तो .ख़ूब तहक़ीक़ कर लिया करो, ऐसा ना हो, के किसी क़ौम को नादानी से नुक़सान पहुंचा दो, फ़िर तुम को अपने किये पर शर्मिंदा होना पड़े। और जान लो! के तुम में अल्लाह के पैग़म्बर हैं, अगर वो बहुत सी बातों में तुम्हारा कहना मान लिया करें तो तुम मुश्किल में मुबतला हो जाओगे, लेकिन अल्लाह ने तुम्हारे लिये ईमान को अज़ीज़ बना दिया, और तुम्हारे दिलों में उसको ज़ीनत बख़्शी, और कुफ़्र और फ़िस्क़ और नाफ़रमानी को तुम्हारे लिये नापसंदीदा बना दिया, यही लोग हिदायत की राह पर हैं। (यानी)

حَكِيْمٌ ۝٨ وَ اِنْ طَآىِٕفَتٰنِ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ
اقْتَتَلُوْا فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا ۚ فَاِنْۢ بَغَتْ
اِحْدٰىهُمَا عَلَى الْاُخْرٰى فَقَاتِلُوا الَّتِيْ
تَبْغِيْ حَتّٰى تَفِيْٓءَ اِلٰٓى اَمْرِ اللّٰهِ ۚ فَاِنْ
فَآءَتْ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا بِالْعَدْلِ وَ
اَقْسِطُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ۝٩
اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ اِخْوَةٌ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَ
اَخَوَيْكُمْ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ
تُرْحَمُوْنَ ۝١٠ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَسْخَرْ
قَوْمٌ مِّنْ قَوْمٍ عَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنُوْا خَيْرًا
مِّنْهُمْ وَ لَا نِسَآءٌ مِّنْ نِّسَآءٍ عَسٰٓى اَنْ
يَّكُنَّ خَيْرًا مِّنْهُنَّ ۚ وَ لَا تَلْمِزُوْٓا اَنْفُسَكُمْ
وَ لَا تَنَابَزُوْا بِالْاَلْقَابِ ؕ بِئْسَ الِاسْمُ
الْفُسُوْقُ بَعْدَ الْاِيْمَانِ ۚ وَ مَنْ لَّمْ يَتُبْ
فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝١١ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوا اجْتَنِبُوْا كَثِيْرًا مِّنَ الظَّنِّ ۫ اِنَّ بَعْضَ
الظَّنِّ اِثْمٌ وَّ لَا تَجَسَّسُوْا وَ لَا يَغْتَبْ
بَّعْضُكُمْ بَعْضًا ؕ اَيُحِبُّ اَحَدُكُمْ اَنْ
يَّاْكُلَ لَحْمَ اَخِيْهِ مَيْتًا فَكَرِهْتُمُوْهُ ؕ وَ
اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ تَوَّابٌ رَّحِيْمٌ ۝١٢ يٰٓاَيُّهَا
النَّاسُ اِنَّا خَلَقْنٰكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ وَّ اُنْثٰى وَ
جَعَلْنٰكُمْ شُعُوْبًا وَّ قَبَآىِٕلَ لِتَعَارَفُوْا ؕ
اِنَّ اَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللّٰهِ اَتْقٰىكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
عَلِيْمٌ خَبِيْرٌ ۝١٣ قَالَتِ الْاَعْرَابُ اٰمَنَّا ؕ

ख़ुदा के फ़ज़्ल और एहसान से, और अल्लाह ख़ूब जानने वाला और हिकमत वाला है। अगर मोमिनों की दो जमातें आपस में लड़ पड़ें, तो उनमें सुलह करा दो, फ़िर अगर एक जमात दूसरे पर .ज्यादती करे तो .ज्यादती करने वालों से लड़ो, यहां तक के वो अल्लाह के हुक्म की तरफ़ रूजू करें, फ़िर अगर वो रूजू करें तो उन दोनों में इन्साफ़ के साथ सुलह करा दो, और इन्साफ़ से काम करो, बेशक अल्लाह इन्साफ़ करने वालों को पसंद करता हैं मोमिन सब आपस में भाई भाई हैं, तो अपने दो भाईयों में सुलह करा दिया करो, और अल्लाह से डरते रहो, ताके तुम पर रहम हो। ऐ ईमान वालों! कोई क़ौम किसी क़ौम का मज़ाक़ ना उड़ाये, मुमकिन है के वो उन से बेहतर हों, और ना ही औरतें औरतों का मज़ाक़ उड़ायें, मुमकिन है वो उनसे बेहतर हों, और ना एक दूसरे को ताना दो, और ना एक दूसरे को बुरे लक़ब से पुकारो, ईमान लाने के बाद बुरा नाम रखना गुनाह है, और जो तौबा ना करें तो वो ज़ालिम हैं। ऐ ईमान वालों! बहुत गुमान करने से बचा करो, के बाज़ गुमान गुनाह हैं, और एक दूसरे के भेद ना टटोला करो और ना कोई किसी की ग़ीबत किया करे, क्या तुम में कोई इस बात को पसंद करेगा के अपने मुर्दा भाई का गोश्त खाये, इससे तो नफ़रत करते हो, और अल्लाह से डरते रहा करो, बिला शुबह अल्लाह .ख़ूब तौबा क़ुबूल करने वाला, रहम वाला है। ऐ लोगों! हमने तुम को एक मर्द और एक औरत से पैदा किया है, और तुम्हारी क़ौमें और क़बीले बनाये ताके एक दूसरे को शनाख़्त करो, अल्लाह के नज़दीक तुम में .ज्यादा इज्ज़त वाला वो है जो सबसे .ज्यादा परहेज़गार हो बिला शुबह अल्लाह .ख़ूब जानने वाला बा .ख़बर है। ये देहाती कहते हैं के हम ईमान ले आये, कह दो के तुम ईमान नहीं लाये, बल्के यूं कहो, हम इस्लाम लाये हैं, और ईमान तो हनूज़ तुम्हारे दिलों में

قُلْ لَّمْ تُؤْمِنُوْا وَلٰكِنْ قُوْلُوْٓا اَسْلَمْنَا وَ
لَمَّا يَدْخُلِ الْاِيْمَانُ فِيْ قُلُوْبِكُمْ ؕ وَاِنْ
تُطِيْعُوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ لَا يَلِتْكُمْ مِّنْ
اَعْمَالِكُمْ شَيْـًٔا ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۴﴾
اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ
وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ لَمْ يَرْتَابُوْا وَجٰهَدُوْا
بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ
اُولٰٓئِكَ هُمُ الصّٰدِقُوْنَ ﴿۱۵﴾

दाख़िल ही नहीं हुआ, और अगर तुम अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमांबर्दारी करोगे तो अल्लाह तुम्हारे आमाल में से कुछ कमी नहीं करेगा, बिला शुबह अल्लाह बख़्शने वाला रहम वाला है। पूरे मोमिन तो वो हैं जो अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाये, फ़िर शक में ना पड़ें और अल्लाह की राह में अपने मालो जान से जिहाद करें, यही लोग सच्चे हैं। (49:6-15)

इन आयतों में कुछ गम्भीर नैतिक और सामाजिक बुराइयों के बारे में चेताया गया है, जिनमें सब से पहली बात जो बयान की गयी वह निराधार और बिना सुबूत बातें कहना यानि अफ़वाहें उड़ाना है। क़ुरआन ऐसी बातें फैलाने वालों और सुनन वालों दोनों से कहता है कि इस तरह लोगों के बीच फैली कहानियों को जांचने के लिए अपनी समझ से काम लिया करें, कहीं ऐसा न हो कि वो अनजाने में लोगों को नुक़सान पहुंचा दें। उनका ईमान और उनकी नैतिक मर्यादाएं उनके भाई बहनों के सम्बंध में उन्हें जो कुछ सिखाती हैं उसको अपनाया करें।

चूंकि इस तरह की फ़र्ज़ी बातों से झगड़े खड़े होते हैं इसलिए आगे की आयतों में मोमिनों से कहा गया कि झगड़ने वाले पक्षों के बीच सुलह करा देने के लिए अपनी पूरी कोशिश किया करें, लेकिन जब कोई पक्ष ज़्यादती पर उतारू हो तो सभी मोमिन मिल कर मज़बूती के साथ उस पक्ष का समर्थन और सहायता करें जो ज़्यादती का निशाना बन रहा हो और ज़्यादती करने वाले का मुकाबला करें। दरअस्ल, शान्ति और न्याय के लिए इस तरह की किसी समस्या से ख़ुद को अलग नहीं रखना चाहिए। लेकिन जब ज़्यादती करने वाला बाज़ आ जाए और अल्लाह के हुक्म की तरफ़ पलट आए तो इंसाफ़ के साथ शान्ति स्थापित करना चाहिए ताकि लड़ाई का सिलसिला फिर से शुरू हो जाने से रोका जा सके। अल्लाह के इंसाफ़ का उद्देश्य अन्याय को रोकना है ना कि उस व्यक्ति या गुट को ज़लील या तबाह करना जो अन्याय कर बैठा हो लेकिन फिर अपनी ग़लती को मान ले। बहुत से ऐसे मेलमिलाप जिनमें न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया हो हारे हुए पक्षों के ऊपर थोपे जाते रहे हैं और इस तरह उन समझौतों से ही एक नई लड़ाई की बुनियाद पड़ जाती है और कुछ समय बाद बदले की कार्रवाइयां शुरू हो जाती हैं। शान्ति जो कि हमेशा न्याय पर आधारित होना चाहिए तब तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक लोग यह न समझ लें कि लड़ाई सभी पक्षों के लिए

विनाशकारी होती है, इसलिए लड़ने वाले पक्षों के बीच रक्तपात होने के बजाए सुलह हो जाना न केवल उनके अपने लिए बहतर होता है बल्कि आम तौर से पूरी दुनिया के लिए बहतर होता है। क़ुरआन ने एक आम सिद्धांत के रूप में मेलमिलाप की यह जो शिक्षा 1400 वर्ष पहले दी थी उसकी आज भी ज़रूरत है ख़ास तौर से आम तबाही के नए नए तकनीकी हथ्यारों का अविष्कार हो जाने के बाद जो कि न्यूक्लेयर, रसायनिक और जैविक बमों के रूप में दुनिया में मौजूद हैं।

क़ुरआन की ये शिक्षाएं किसी ख़ास घटना के संदर्भ में किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं हैं बल्कि इंसानी प्रतिष्ठा और नैतिकता की हिफ़ाज़त के लिए एक आम सिद्धांत हैं। दूसरे इंसान को बदनाम और अपमानित करना या उसको निशाना बनाना सभी ईमान वाले मर्दों और औरतों के लिए मना है कि उनकी नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारियां बराबर हैं। निराधार अनुमान लगाने से भी मना किया गया है, लेकिन कोई बात अगर ज़रूरी और छानबीन योग्य हो तो उचित ढंग से जांच पड़ताल की इजाज़त दी गयी है (7:48)। इसी तरह जिज्ञासा में दूसरों की तरफ़ कान लगाना, दूसरों की टोह लेना या पीठ पीछे किसी की बुराई करना भी मना है सिवाय इसके कि पुलिस और सैनिक छानबीन या प्रशासनिक ज़रूरतों की वजह से ऐस करना ज़रूरी हो। इन नैतिक और समाजक बुराइयों का ज़िक्र उपरोक्त आयतों में किया गया है। अफ़वाहें फैलाने और तरह तरह से लोगों का उपहास उड़ाने या अपमान करने को ईमान के ख़िलाफ़ और अल्लाह की हिदायत व नैतिकता से हटन के समान बताया गया है (49:6-7)। किसी अनुपस्थित व्यक्ति के बारे में नकारात्मक ढंग से कोई बात कहने को मरे हुए भाई का मास खाने की तरह कहा गया है (49:12)। लेकिन फिर अपना व्यवहार ठीक कर लेने और तौबा करने के लिए अल्लाह के दरवाज़े हमेशा खुले हुए हैं।

उपरोक्त नैतिक मूल्य मुसलमानों को आपस में ही बरतने के लिए नहीं कहा गया है। क़ुरआन चूंकि विश्वव्यापी इंसानियत की बात करता है और यह सिखाता है कि लोगों के बीच मतभेद और अन्तर अलग अलग कारणों से, और ज़रूरतों या योग्यताओं की वजह से आपसी बातचीत और सहयोग को बढ़ाने का माध्यम हैं। व्यक्तिगत या सामूहिक अन्तर व भेद के वावजूद तमाम इंसानों को बराबरी के साथ एक दूसरे से सहयोग करना चाहिए क्योंकि वो तमाम के तमाम एक ही मर्द और औरत से पैदा किए गए हैं (49:13)। अल्लाह की नज़र में सबसे ज़्यादा सम्मानित वह है जो अल्लाह से ज़्यादा जुड़ाव (तक़वा) रखता है, और ऐसा व्यक्ति ही इंसानों की एकता और समानता का सबसे ज़्यादा ध्यान रखने वाला होता है। लेकिन इस दुनिया में हर व्यक्ति को उसके गुणों के लिहाज़ से ही जांचा जाएगा जो इंसानों के नज़र आते हैं, जबकि अल्लाह तबारक व तआला इंसान के दिल और दिमाग़ में छुपी हुई बातों को जानते हैं और उनकी नियत और आस्था व ईमान का फ़ैसला वही करेंगे।

ऊपर वर्णित आयतों में से आख़री दो आयतों में इस बात का निर्देश दिया गया है कि इस्लाम ने जो नैतिक मर्यादाएं सिखाई हैं उन पर बने रहना और अपने व्यवहार में उन्हें बरतना चाहे उसकी कुछ भी क़ीमत अदा करनी पड़े, सच्चे ईमान का असली सुबूत है जिससे एक सच्चे मोमिन के और एक ऐसे आदमी के बीच फ़र्क़ साफ़ दिखाई देता है जिसने औपचारिकता निभाने के लिए केवल ज़बान से ईमान का इक़रार किया हो। ईमान पर गम्भीरतापूर्वक बने रहने का प्रभाव आदमी के कामों और व्यवहार में दिखाई देता है और यही वास्तविक ईमान है जो इस दुनिया में भी महत्व रखता है और आख़िरत में भी इसी का महत्व होगा।

وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَ مَا فِي الْاَرْضِ ۙ
لِيَجْزِيَ الَّذِيْنَ اَسَآءُوْا بِمَا عَمِلُوْا
وَيَجْزِيَ الَّذِيْنَ اَحْسَنُوْا بِالْحُسْنٰى ۚ ﴿٣١﴾
اَلَّذِيْنَ يَجْتَنِبُوْنَ كَبٰٓئِرَ الْاِثْمِ
وَالْفَوَاحِشَ اِلَّا اللَّمَمَ ؕ اِنَّ رَبَّكَ وَاسِعُ
الْمَغْفِرَةِ ؕ هُوَ اَعْلَمُ بِكُمْ اِذْ اَنْشَاَكُمْ مِّنَ
الْاَرْضِ وَ اِذْ اَنْتُمْ اَجِنَّةٌ فِيْ بُطُوْنِ
اُمَّهٰتِكُمْ ۚ فَلَا تُزَكُّوْٓا اَنْفُسَكُمْ ؕ هُوَ اَعْلَمُ
بِمَنِ اتَّقٰى ﴿٣٢﴾

और वो सब अल्लाह का है जो आसमानों और ज़मीन में है, ताके जिन लोगों ने बुरे काम किये उनको उनके काम के एवज़ बदला दे, और जिसने अच्छे काम किये उनको उनके नेक कामों का एवज़ दे। जो बड़े बड़े गुनाहों और बहयाई के कामों से बचते रहे मगर छोटे गुनाहों (को नज़रअंदाज़ कर दें) बेशक तुम्हारा रब बड़ी बख़्शिश वाला है, वो तुम को ख़ूब जानता है जब उसने तुमको मिटटी से पैदा किया, और जब तुम अपनी मांओं के पेट में बच्चे थे, तो तुम अपने आपको पाक ना जताओ, वो परहेज़गारों से ख़ूब वाक़िफ़ है। (53:31-32)

अल्लाह सबसे बाख़बर है और सबको उनके कर्मों का फल देने वाला है। वह ख़ालिक़ (जनक) है इसलिए वह इंसान को जानता है और उसकी उनकी तमाम स्थितियों से बाख़बर होता है जिनसे पैदा होने के बाद से वह ग़ुज़रता रहा है। लिहाज़ा अल्लाह इस बात से पूरी तरह बाख़बर है कि कौन उससे डरता और उसका लिहाज़ करता है, और एक इंसान अपने मुत्तक़ी (अल्लाह का डर रखने वाला) होने का दावा कर सकता है और अपने आप को अच्छा समझता और जताता है लेकिन इससे तथ्य और सच्चाइयां नहीं बदल सकतीं, अलबत्ता आदमी के अन्दर घमण्ड ज़रूर पैदा हो सकता है। एक आदमी अपने गुणों के बारे में फ़र्ज़ी दावे करके दूसरों को धोखा दे सकता है, और इस तरह अपनी ग़लतियों में इज़ाफ़ा करता है, लेकिन वह ख़ुदा को कभी धोखा नहीं दे सकता। हां मगर इंसान अपनी प्रतिभाओं और योग्यताओं के बारे में बता सकता है ताकि दूसरे लोग उसको जांच सकें। जिस तरह हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्सलाम ने मिस्र के राजकोष का अधिकारी बनने के लिए अपनी अमानतदारी और योग्यता का इज़हार किया

(12:55), लेकिन अल्लाह का डर और अल्लाह से ताल्लुक़ की स्थिति को ख़ुद अल्लाह ही जानता है और इसका दावा कोई इंसान ख़ुद नहीं कर सकता, "क्या तुमने उन लोगों को नहीं देखा जो अपने आपको पाकीज़ा कहते हैं (नहीं) बल्कि अल्लाह ही जिसको चाहता है पाकीज़ा करता है और उन पर धागे बराबर भी ज़ुल्म नहीं होगा"(4:49)।

पर अल्लाह की हस्ती इतनी दयाशील और कृपा वाली है कि अल्लाह ईमान लाने वाले किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह पूरी तरह विशुद्ध या परिपूर्ण हो जाए। अल्लाह ने इंसान को पैदा किया है और वह इंसान की कमज़ोरियों और सीमाओं को जानता है। इसलिए जो लोग अल्लाह की नज़र में अच्छे कर्म वाले हैं वो वे हैं जो बड़े गुनाहों और बेशर्मी की बातों से दूर रहते हैं अलबत्ता छोटे छोटे दोष उनसे होते रहते हैं। मुस्लिम फक़ीहों (शरीअत के विधि शास्त्रियों) और मुहद्दिसों ने बड़े और छोटे गुनाहों (कबीरह गुनाह व सग़ीरह गुनाह) का विश्लेषण किया है और यह बताया है कि क्या बातें हैं जिनसे भरोसा और विश्वास पैदा होता है, अदालत में गवाही देने वाले का सच्चा व न्याय प्रिय होना और इससे भी ऊंचे दर्जे में अल्लाह के रसूल की किसी हदीस को बयान करने वाले का न्याय प्रिय होना। किसी बड़े गुनाह के करने से या छोटे छोटे गुनाह करते रहने से गवाह का भरोसा और विश्वास जाता रहता है। अदालत में ख़ास तौर से उच्चतम न्यायालय में जहां बड़े बड़े अपराधों और अन्याय के मुक़दमों का फैसला किया जाता है ऐसे व्यक्ति होते हैं जो कुछ विषयों के विशेषज्ञ होते हैं और अदालत को अपनी जानकारी से अवगत कराते हैं। जहां तक नैतिक और अध्यात्मिक विकास की बात है, उनके बारे में क़ानूनी नियम और फैसले कुछ भी हों, लेकिन अल्लाह का मआफ़ करने में बहुत दयावान है। इस्लामी नैतिक संस्कार इंसान की क्षमता से बाहर की चीज़ नहीं हैं, उनका आदर्श यथार्थ के दायरे में है। जिन्हें क़ुरआन में अल्लाह से डरने वाला कहा गया है उनसे भी ग़लतियां और गुनाह हो सकते हैं लेकिन "जब वो कोई खुला गुनाह या अपने हित में कोई और बुराई कर बैठते हैं तो अल्लाह को याद करते और अपने गुनाहों की बख़्शिश मांगते हैं और अल्लाह के अलावा गुनाह बख़्श भी कौन सकता है, और जान बूझ कर अपने कर्मों पर अड़े नहीं रहते"(3:135)।

سَابِقُوٓا اِلٰى مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَ جَنَّةٍ
عَرْضُهَا كَعَرْضِ السَّمَآءِ وَ الْاَرْضِ ۙ
اُعِدَّتْ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ ؕ ذٰلِكَ
فَضْلُ اللّٰهِ يُؤْتِيْهِ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ ذُو
الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝

(ऐ बन्दों) अपने रब की बख़्शिश और जन्नत की तरफ़ लपको! जिसका अर्ज़ आसमान और ज़मीन के अर्ज़ का सा है, वो उन लोगों के लिये तैयार की गई है जो अल्लाह पर और उसके रसूल पर ईमान लाये हैं, ये अल्लाह का फ़ज़्ल है जिसे चाहे अता करे, और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल का मालिक है। (57:21)

एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा और मुक़ाबला इंसानी स्वभाव है, क़ुरआन इस प्रतिस्पर्धा को जायज़ ठहरता है लेकिन इस मुक़ाबले की दिशा अच्छे कामों की तरफ़ करता है जो व्यक्ति के हित में भी होते हैं और समाज के लिए भी लाभदायक होते हैं। इस्लाम एक तरफ़ सामाजिक एकता और आपसी सहयोग व संतुलन स्थापित करता है और दूसरी तरफ़ व्यक्तिगत मुक़बालों का उत्साहवर्धन करता है। चूंकि इस्लाम की शिक्षा के मुताबिक़ इंसानों के बीच मुक़ाबले का लक्ष्य आख़िरत में जन्नत को प्राप्त करना है इसलिए इस दुनिया के स्वाद व आनन्द के बजाए जोकि इंसान के अन्दर लालच और स्वार्थीपन को बढ़ाते हैं और नतीजे में इंसानों के बीच झगड़े और रंजिश का कारण बनते हैं, इंसानों के संयुक्त लक्ष्यों और हितों के लिए प्रतिस्पर्धा करने की प्रेरणा दी गयी है जिनसे सामाजिक एकता को बल मिलता है और नैतिकता को बढ़ावा मिलता है। जो लोग ईमान ले आते हैं वो संयुक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने और समाज सेवा में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने में लग जाते हैं, इससे उनके व्यक्तित्व का भी विकास होता है और पूरे समाज का भी फ़ायदा होता है। इस्लामी फ़िक़्ह (विधि शास्त्र) में अल्लाह के अधिकारों और बन्दों के अधिकारों के अन्तर्गत व्यक्तियों के कर्तव्य बताए गए हैं तो जो अधिकार बन्दों के हैं वो वास्तव में हर व्यक्ति पर समाज का एक सामूहिक अधिकार हैं।

لَا يَنْهٰكُمُ اللّٰهُ عَنِ الَّذِيْنَ لَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ فِي الدِّيْنِ وَ لَمْ يُخْرِجُوْكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْهُمْ وَ تُقْسِطُوْٓا اِلَيْهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ۝

अल्लाह तुम को उन लोगों से भलाई और इन्साफ़ करने से नहीं रोकता जो तुम से दीन के बारे में जंग नहीं करते और ना तुम को तुम्हारे घरों से निकालते हैं, अल्लाह तो इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है। (60:8)

इस्लाम जिस संघर्ष के लिए शान्ति भंग होने के बर्दाश्त करता है वह केवल मानव अधिकारों की सुरक्षा और अत्याचार व उत्पीड़न के ख़िलाफ़ लड़ने का संघर्ष है। ग़ैर-मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बंध न्याय के सिद्धांतों और दानशीलता एवं विनम्रता के नैतिक मूल्यों पर आधारित होना चाहिएं, और इन नैतिक मूल्यों का स्थान कठोर न्याय से ऊपर है। इस्लाम आस्था में अन्तर के विरुध नहीं है क्योंकि मतभेद एक इंसानी स्वभाव है (5:48(11:118-119), और इस्लाम कहता है कि आस्था के मामले में किसी पर कोई ज़बरदस्ती नहीं है (2:265), लेकिन इस्लाम मतभेदों को अत्याचार और उत्पीड़न का कारण और आधार बनाने के ख़िलाफ़ है।

اِنَّا بَلَوْنٰهُمْ كَمَا بَلَوْنَآ اَصْحٰبَ الْجَنَّةِ ۚ اِذْ اَقْسَمُوْا لَيَصْرِمُنَّهَا مُصْبِحِيْنَ ۝ وَ لَا

हमने उन लोगों की आज़ामईश कर रखी है, जैसा हमने बाग़ वालों की आज़माईश की थी, जब उन्होंने क़सम

يَسْتَثْنُوْنَ ﴿١٨﴾ فَطَافَ عَلَيْهَا طَآئِفٌ مِّنْ
رَّبِّكَ وَ هُمْ نَآئِمُوْنَ ﴿١٩﴾ فَاَصْبَحَتْ
كَالصَّرِيْمِ ﴿٢٠﴾ فَتَنَادَوْا مُصْبِحِيْنَ ﴿٢١﴾ اَنِ
اغْدُوْا عَلٰى حَرْثِكُمْ اِنْ كُنْتُمْ
صٰرِمِيْنَ ﴿٢٢﴾ فَانْطَلَقُوْا وَهُمْ
يَتَخَافَتُوْنَ ﴿٢٣﴾ اَنْ لَّا يَدْخُلَنَّهَا الْيَوْمَ
عَلَيْكُمْ مِّسْكِيْنٌ ﴿٢٤﴾ وَّ غَدَوْا عَلٰى حَرْدٍ
قٰدِرِيْنَ ﴿٢٥﴾ فَلَمَّا رَاَوْهَا قَالُوْٓا اِنَّا
لَضَآلُّوْنَ ﴿٢٦﴾ بَلْ نَحْنُ مَحْرُوْمُوْنَ ﴿٢٧﴾ قَالَ
اَوْسَطُهُمْ اَلَمْ اَقُلْ لَّكُمْ لَوْ لَا
تُسَبِّحُوْنَ ﴿٢٨﴾ قَالُوْا سُبْحٰنَ رَبِّنَآ اِنَّا كُنَّا
ظٰلِمِيْنَ ﴿٢٩﴾ فَاَقْبَلَ بَعْضُهُمْ عَلٰى بَعْضٍ
يَّتَلَاوَمُوْنَ ﴿٣٠﴾ قَالُوْا يٰوَيْلَنَآ اِنَّا كُنَّا
طٰغِيْنَ ﴿٣١﴾ عَسٰى رَبُّنَآ اَنْ يُّبْدِلَنَا خَيْرًا
مِّنْهَآ اِنَّآ اِلٰى رَبِّنَا رٰغِبُوْنَ ﴿٣٢﴾ كَذٰلِكَ
الْعَذَابُ ؕ وَ لَعَذَابُ الْاٰخِرَةِ اَكْبَرُ ۘ لَوْ
كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ﴿٣٣﴾

खाई के हम सुबह होते ही इस बाग़ के फल तोड़ लेंगे। और इंशाअल्लाह ना कहा। तो तुम्हारे रब की तरफ़ से उस बाग़ पर एक फ़िरने वाला फ़िर गया और वो सो रहे थे। तो वो सुबह ऐसा हो गया जैसे कटी हुई खेती। जब सुबह हुई तो वो एक दूसरे को पुकारने लगे। अगर तुम को काटना है तो तुम अपने खेत पर सुबह सवेरे ही पहुंच जाओ। तो वो चल पड़े और आपस में आहिस्ता आहिस्ता कहते जाते थे। के आज यहां तुम्हारे पास कोई फ़क़ीर ना आने पाये। और चले अपने को उसके ना दने पर क़ादिर समझ कर। फ़िर जब बाग़ को देखा (तो वीरान) कहने लगे के हम रास्त भूल गए हैं। (नहीं बल्के हम बदनसीब हैं। एक उनमें जो अच्छा था वो बोला मैंने तुम से नहीं कहा था के तुम तसबीह क्यों नहीं करते। तो सब कहने लगे के हमार रब तो पाक है, बिला शुबह हम ही कुसूरवार थे। फ़िर तो वो एक दूसरे को दुबदू बुरा कहने लगे। कहने लगे, हाय शामते आमाल! हम ही हद से आगे बढ़ गए थे। उम्मीद है के हमारा रब इसके बदल में हमको इससे बेहतर बाग़ देगा, हम अपने रब की तरफ़ मुतवज्जह होते हैं। (देखो) अज़ाब यूं होता है, और आख़िरत का अज़ाब तो इससे कहीं ज़्यादा सख़्त होता है, काश! ये जानते हाते। (68:17-33)

अल्लाह की यह हिदायत कि जो लोग ज्यादा आमदनी वाले हैं वो अपने माल में से दूसरे ज़रूरतमंदों और ग़रीबों ख़ास तौर से उन मजबूरों को भी दें जो अस्थाई या स्थाई रूप से काम करने में अक्षम हैं, अल्लाह की तरफ़ से आने वाले लगातार पैग़ामों में एक बुनियादी हिदायत है (हज़रत शुएब के लिए हवाला 11:84-88, बनी इस्राईल के लिए हवाला 2:83)। क़ुरआन यहां ज़रूतमंद और महरूम लोगों के साथ सम्पन्न और सुखी लोगों के अहंकारी व्यवहार और उनके लालचीपन के बारे में एक क़िस्सा बयान करता है। आर्थिक समृ) और दौलत के घमण्ड का एक उदाहरण आयत 18:32-44 में दिया गया है। इन दोनों उदाहरणों में लालच और कंजूसी को तक़वा और अल्लाह का डर न होने से जोड़ा गया है:''और (ऐसे घमण्ड से) अपने

आप पर ज़ुल्म करता हुआ अपने बाग़ में दाख़िल हुआ और कहने लगा कि मैं नहीं समझता कि यह बाग़ कभी नष्ट होगा और न यह मानता हूं कि क़ियामत आएगी, और यदि मैं अपने रब की तरफ़ लोटाया भी जाऊं तो (वहां) ज़रूर इससे भी अच्छी जगह पाउंगा''(18:35-36)। उपरोक्त आयतों में बाग़ के मालिक ने क़समें खा खाकर कहा कि ''सुबह होते ही हम इसके फल तोड़ लेंगे, और 'इन शा अल्लाह' न कहा''(68:16-18)। क़ुरआन ईमान वालों को यह शिक्षा देता है कि ''किसी काम के संदर्भ में यह न कहना कि मैं कल इसे कर दूंगा मगर (इन शा अल्लाह कह कर कि यानि अगर) अल्लाह चाहे तो (कर दूंगा), और जब अल्लाह का नाम लेना भूल जाओ तो याद आने पर लेलो और कह दो कि उमीद है कि मेरा रब मुझे इससे भी ज़्यादा हिदायत की बातें बताए'' (18:23-24)। इसका मतलब यह नहीं है कि अपनी इच्छा शक्ति की कमज़ोरी या आलसीपन के लिए इस बात को बहाना बनाया जाए बल्कि यहां अपने दृढ़ निश्च के साथ अल्लाह का तक़वा रखने और अल्लाह पर भरोसा रखने का निर्देश दिया जा रहा है ताकि अपनी कोशिश के साथ अल्लाह की सहायता व सहयोग की इच्छा रखी जाए। अल्लाह पर ईमान रखने और केवल उसी की इबादत करने वालों से अल्लाह यह चाहता है कि वह अल्लाह की मर्ज़ी और निर्देश के दायरे में किसी काम के लिए इरादा या वायदा और निश्चय किया करें। इस तरह इंसान इस बात को मन में बैठाता है कि सारा अधिकार और शक्ति तो अल्लाह के पास ही है और वह हर चीज़ पर नियंत्रण रखता है, इसलिए ऐसा कोई भी वायदा और फ़ैसला नहीं करना चाहिए जिससे मोमिन की नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी का इंकार होता हो।

इस क़िस्से में भी और आयत 18:32-44 में बयान हुए दूसरे क़िस्से में भी अल्लाह से डरने वाले किसी व्यक्ति की यह बात दोहराई गयी है कि उसने अल्लाह पर ईमान न रखने वाले या इस ईमान की अनदेखी करने वाले दूसरे व्यक्ति (या व्यक्तियों) को चेताया। क़ुरआन इस बात पर बार बार ज़ोर देता है कि दुनिया के आनन्द में खो जाने वाले आदमी के अन्दर स्वार्थपूर्ति, लालच, घमण्ड और अदूरदर्शिता पैदा होती है:''उनकी क़ौम के सरदार जो काफ़िर थे और आख़िरत को झूट समझते थे और दुनिया के जीवन में हमने उनको समृ) दे रखी थी कहने लगे कि यह तो तुम्हारे जैसा आदमी है, जिस तरह का खाना तुम खाते हो उसी तरह का यह भी खाता है और जो पानी तुम पीते हो उसी तरह का यह भी पीता है। और अगर तुम ने अपने ही जैसे आदमी का कहा मान लिया तो घाटे में पड़ जाओगे'' (23:33-34, और देखें 11:116; 17:116; 21:13; 23:64; 34:34; 43:23; 56:45-46)। क़ुरआन इंसान को यह सिखाता है कि इस दुनिया के आनन्दों और ख़ुशियों को बरतने में संतुलन और संयम से काम लें और आख़िरत को कभी न भूलें (7:31-32; 17:26-30; 18:7,46; 28:77-78)। जो लोग अल्लाह और उसकी हिदायत के मुक़ाबले अपनी हैसियत व ताक़त को भूल जाते हैं वो इस दुनिया के जीवन में संतुलन और समानुपात न होने का नुक़सान उठाएंगे और अहंकार, घमण्ड व लालच की वजह से इस नुक़सान से ज़्यादा बड़ा नुक़सान आख़िरत में उठाएंगे (68:33)।

नैतिक संस्कार

وَ اِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَاۤ اَوْ رُدُّوْهَا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ حَسِيْبًا ﴿۸۶﴾

और जब तुम को दुआ दी जाए तो तुम उससे बेहतर दुआ दो, या उसी को दोहरा दो, बिलाशुबह अल्लाह हर चीज़ का हिसाब लेगा। (4:86)

लोगों के बीच आपस में आपसी सम्बंधों को बढ़ावा देने के लिए क़ुरआन आसान तरीक़े बताता है जैसे ईमान वालों को यह निर्देश देता है कि सलाम में पहल किया करें, और जब कोई सलाम करे तो उसको उसी तरह या उससे भी ज़्यादा बहतर तरीक़े से सलाम का जवाब दें। यह यद्यपि अच्छे नैतिक आचरण की एक साधारण सी बात मालूम होती है लेकिन व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार को बनाने में इसका बहुत महत्व है और यह इतना महत्वपूर्ण निर्देश है कि अल्लाह करीम इसका हिसाब लेंगे क्योंकि वह हर चीज़ का हिसाब लेने वाले हैं।

पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने भी कई हदीसों में सलाम करने और मिलने जुलने के ढंग सिखाए हैं। सलाम करने में छोटों को पहल करने की सीख दी गयी है, इसी तरह रस्ता चलने वालों या सवारी पर जाने वालों से कहा गया है कि रस्ते में बैठे हुए लोगों को सलाम किया करें, और कम संख्या वाली टोली ज़्यादा संख्या वाली टोली को सलाम किया करे (बुख़ारी, मुस्लिम, मालिक, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी)। सलाम का मतलब सलामती की दुआ देना होता है इसलिए जब कोई मुसलमान किसी दूसरे को सलाम करता है तो वह मानो उसे अपनी तरफ़ से सलामती और शान्ति की दुआ देता है। जिस व्यक्ति को भी सलाम किया जाए वह भी उसी तरह अपने सम्बोधक को सलामती की दुआ दे और साथ ही उस पर अल्लाह की रहमत और बरकत उतरने की दुआ भी दे।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَ تُسَلِّمُوْا عَلٰۤى اَهْلِهَا ؕ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ﴿۲۷﴾ فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِيْهَاۤ اَحَدًا فَلَا تَدْخُلُوْهَا حَتّٰى يُؤْذَنَ لَكُمْ ۚ وَ اِنْ قِيْلَ لَكُمُ ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا هُوَ اَزْكٰى لَكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿۲۸﴾ لَيْسَ

मोमिनों! तुम अपने घर के सिवा दूसरे घरों में मत दाख़िल हो जब तक के इजाज़त ना लो, और घर वालों को सलाम ना करो यही तुम्हारे लिये बेहतर है, ताके तुम समझो। फ़िर अगर तुम उन घरों में किसी को मौजूद ना पाओ, तो उसमें मत दाख़िल हो जब तक तुम को इजाज़त ना दी जाए, अगर तुम से कहा जाए लौट जाओ तो लौट जया करो, ये तुम्हारे लिये बड़ी पाकीज़ा बात है, और अल्लाह तो जानता है जो तुम करते हो। इसमें तुम्हारे लिये कोई हर्ज नहीं है के तुम किसी ग़ैर आबाद

عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ
مَسْكُوْنَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ مَا
تُبْدُوْنَ وَ مَا تَكْتُمُوْنَ ﴿۲۹﴾ قُلْ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ
يَغُضُّوْا مِنْ اَبْصَارِهِمْ وَ يَحْفَظُوْا فُرُوْجَهُمْ ؕ
ذٰلِكَ اَزْكٰى لَهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا
يَصْنَعُوْنَ ﴿۳۰﴾ وَ قُلْ لِّلْمُؤْمِنٰتِ يَغْضُضْنَ
مِنْ اَبْصَارِهِنَّ وَ يَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَ لَا
يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَ
لْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلٰى جُيُوْبِهِنَّ ۖ وَ لَا
يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا لِبُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ
اٰبَآئِهِنَّ اَوْ اٰبَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اَبْنَآئِهِنَّ اَوْ
اَبْنَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ
اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ اَخَوٰتِهِنَّ اَوْ نِسَآئِهِنَّ اَوْ
مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ اَوِ التّٰبِعِيْنَ غَيْرِ اُولِي
الْاِرْبَةِ مِنَ الرِّجَالِ اَوِ الطِّفْلِ الَّذِيْنَ لَمْ
يَظْهَرُوْا عَلٰى عَوْرٰتِ النِّسَآءِ ۖ وَ لَا يَضْرِبْنَ
بِاَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا يُخْفِيْنَ مِنْ
زِيْنَتِهِنَّ ؕ وَ تُوْبُوْٓا اِلَى اللّٰهِ جَمِيْعًا اَيُّهَ
الْمُؤْمِنُوْنَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۳۱﴾

घर में दाख़िल हो जाओ और उसमें तुम्हारा सामान हो, और अल्लाह जानता है जो तुम ज़ाहिर करते हो और जो तुम छुपाते हो। आप मोमिन मर्दों से कह दो के वो अपनी नज़रें नीची रखें, और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें, ये उनके लिये बड़ी पाकीज़ा बात है, बेशक अल्लाह बाख़बर है जो ये करते हैं। और आप मोमिन औरतों से कह दीजिये के वो अपनी निगाहें नीची रखा करें और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त किया करें, और अपनी ज़ीनत को ना ज़ाहिर किया करें, मगर जो हिस्सा इसमें खुला रहता हो, और अपने सीनों पर चादरें ओढ़े रहा करें, और अपनी ज़ीनत को ना ज़ाहिर करें मगर अपने शौहरों अपने बाप, अपने खुसर, अपने बेटों और शौहर के बेटों, अपने भाईयों, अपने भतीजों, अपने भांजों और अपनी ही क़िस्म की औरतों पर या अपनी लौंडी ग़ुलाम पर, या उन ख़ुद्दाम पर जो औरतों की ख़्वाहिश ना रखते हों, और या ऐसे लड़कों पर जो औरतों के पर्दों की चीज़ों से वाक़िफ़ ना हों, और अपने पाँऊ को इस तरह ज़मीन पन ना मारें के उनका पोशीदा ज़ेवर मालूम हो जाये, और ऐ मोमिनों! तम सबके सब अल्लाह के सामने तौबा करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। (24:27-31)

इन आयतों में उत्तम संस्कारों और अच्छे नैतिक आचरण की शिक्षा दी गयी है। घरों का अपना सम्मान होता है और किसी के घर में बिना इजाज़त दाख़िल नहीं हुआ जा सकता, और जब इजाज़त मिले तो सलाम करके की दाख़िल होना चाहिए। अगर घर में कोई मौजूद न हो जो इजाज़त दे और स्वागत करे तो घर में दाख़िल नहीं होना चाहिए। जब आने वाले को घर में आने की इजाज़त मिले तो उसे तुरन्त ही घर वालों को सलाम करना चाहिए ताकि मुलाक़ात और बातचीत का सिलसिला शुरू हो और यह मालूम हो कि घर वाले किस मूड में हैं और आने

वाले का आना घर वालों को कैसा लगा है। यह संस्कार व आचरण पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने अरब के उस जनजातीय समाज को सिखाए जो इन संस्कारों से अनजान था। जिनका हाल यह था कि उनमें से कुछ लोग जब पैग़म्बर साहब से मिलने के लिए आए तो बाहर से उन्हें आवाज़ें देने लगे और फिर क़ुरआन की यह आयत उतरी कि "जो लोग आप को हुजरों (घरों) के बाहर से आवाज़ देते हैं उनमें अधिकतर मूर्ख हैं, और यदि वो धैर्य रखते यहां तक कि आप ख़ुद निकल कर उनके पास जाते तो यह उनके लिए बहतर होता" (49:4-5)। अगर घर वाले मिलने आने वाले से मिलने की स्थिति में न हों तो आने वाले के लिए यह बहतर है कि वह वापस चला जाए और घर वालों के एकान्त में ख़लल न डाले क्योंकि हर व्यक्ति पर यह ज़रूरी है कि वह दूसरों की निजता का सम्मान करे। इसी से यह बात भी साबित होगी कि आने वाला किसी ग़लत नियत से नहीं आया था। अलबत्ता, ऐसे भवन जो किसी का निजी मकान नहीं होते और आम लोगों के आने जाने की जगह होती है, या ऐसे मकान जहां कोई न रहता हो या किसी सार्वजनिक मक़सद के लिए बनाए गए हों वहां दाख़िल होने के लिए हमेशा अनुमति की ज़रूरत नहीं है।

इसके बाद इन आयतों में मर्दों व औरतों को अच्छे संस्कार व नैतिक आचरण सिखाए गए हैं जो किसी मिले-जुले समाज में ज़रूरी हैं। दोनों को अपनी नज़र नीची रखना चाहिए और अपने प्राइवेट पार्ट्स की रक्षा करना चाहिए, और यह हिदायत केवल औरतों को नहीं दी गयी है बल्कि मर्दों को भी दी गयी है। इस्लाम से पहले अरब के मर्दों की तरह अरब औरतें भी ध ूप से बचने के लिए अपना सर ढांक लिया करती थीं जबकि उनके सीने सामने से खुले होते थे। क़ुरआन ने उन्हें निर्देश दिया कि वो अपने आंचल के पल्लुओं से अपने सीने भी ढक लिया करें और अपना सौन्दर्य लोगों को न दिखाया करें सिवाय उसके जो कुछ ख़ुब ब ख़ुद ही दिखता हो, अपने पतियों और उन मर्दों को छोड़ कर जो उनसे सम्मान का रिशता रखने की वजह से उनकी तरफ़ यौन भावना से देखने का लगाव न रखते हों। यौन आकर्षण से ऐसी उत्तेजनाएं पैदा होती हैं जो पुरुषों और महिलाओं को एक दूसरे की तरफ़ आकर्षित करती हैं। इसलिए दोनों से कहा गया कि वो नैतिकता और व्यवहार के मामले में अल्लाह की हिदायत को अपनाएं और इस सिलसिले में किसी भी गिरावट से बचने के लिए अल्लाह की तरफ़ ध्यान रखें और कोई ग़लती होने पर अल्लाह से मआफ़ी मांगें, जो लोग ईमान लाए हैं वो इस दुनिया में भी और आख़िरत के जीवन में भी कामयाब होंगे।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِيَسْتَاْذِنْكُمُ الَّذِيْنَ مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ وَ الَّذِيْنَ لَمْ يَبْلُغُوا

मोमिनों! तुम्हारे ग़ुलाम, लौंडियां और जो बच्चे तुम में बलूग़ को नहीं पहुंचे हैं, ये लोग तीन अवक़ात में तुम से इजाज़त लिया करें, सुबह की नमाज़ से पहले, गर्मी की

الْحُلُمَ مِنْكُمْ ثَلٰثَ مَرّٰتٍ ؕ مِنْ قَبْلِ صَلٰوةِ
الْفَجْرِ وَ حِيْنَ تَضَعُوْنَ ثِيَابَكُمْ مِّنَ
الظَّهِيْرَةِ وَ مِنْۢ بَعْدِ صَلٰوةِ الْعِشَآءِ ؕ ثَلٰثُ
عَوْرٰتٍ لَّكُمْ ؕ لَيْسَ عَلَيْكُمْ وَ لَا عَلَيْهِمْ
جُنَاحٌۢ بَعْدَهُنَّ ؕ طَوّٰفُوْنَ عَلَيْكُمْ
بَعْضُكُمْ عَلٰى بَعْضٍ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ
لَكُمُ الْاٰيٰتِ ؕ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿۵۸﴾ وَ اِذَا
بَلَغَ الْاَطْفَالُ مِنْكُمُ الْحُلُمَ فَلْيَسْتَاْذِنُوْا
كَمَا اسْتَاْذَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ كَذٰلِكَ
يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ ؕ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ
حَكِيْمٌ ﴿۵۹﴾ وَ الْقَوَاعِدُ مِنَ النِّسَآءِ الّٰتِيْ لَا
يَرْجُوْنَ نِكَاحًا فَلَيْسَ عَلَيْهِنَّ جُنَاحٌ اَنْ
يَّضَعْنَ ثِيَابَهُنَّ غَيْرَ مُتَبَرِّجٰتٍۭ
بِزِيْنَةٍ ؕ وَ اَنْ يَّسْتَعْفِفْنَ خَيْرٌ لَّهُنَّ ؕ وَ
اللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿۶۰﴾ لَيْسَ عَلَى الْاَعْمٰى
حَرَجٌ وَّ لَا عَلَى الْاَعْرَجِ حَرَجٌ وَّ لَا عَلَى
الْمَرِيْضِ حَرَجٌ وَّ لَا عَلٰۤى اَنْفُسِكُمْ اَنْ
تَاْكُلُوْا مِنْۢ بُيُوْتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اٰبَآئِكُمْ اَوْ
بُيُوْتِ اُمَّهٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اِخْوَانِكُمْ اَوْ
بُيُوْتِ اَخَوٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اَعْمَامِكُمْ اَوْ
بُيُوْتِ عَمّٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اَخْوَالِكُمْ اَوْ
بُيُوْتِ خٰلٰتِكُمْ اَوْ مَا مَلَكْتُمْ مَّفَاتِحَهٗۤ اَوْ
صَدِيْقِكُمْ ؕ لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ
تَاْكُلُوْا جَمِيْعًا اَوْ اَشْتَاتًا ؕ فَاِذَا دَخَلْتُمْ

दोपहर जब तुम कपड़े उतार देते हो, इशा की नमाज़ के बाद, ये तीन अवक़ात तुम्हारे पर्दे के हैं, इन अवक़ात के अलावा अगर एक दूसरे के पास आते जाते रहो तो कोई हर्ज नहीं है, ना तुम पर ना उन पर, इसी तरह अल्लाह अपने अहकाम तुम पर खोल खोल कर बयान करता है, और अल्लाह जानने वाला और बड़ी हिकमत वाला है। और जब तुम्हारे लड़के बालिग़ हो जायें तो उनको भी इसी तरह इजाज़त लेना चाहिये, जिस तरह उनसे पहले बड़े करते आये हैं, इसी तरह अल्लाह तुम से अपने अहकाम बयान करता है, और अल्लाह जानने वाला हिकमत वाला है। और बड़ी उम्र की औरतें जिनको निकाह की उम्मीद ख़त्म हो गई हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं है के वो अपने कपड़े उतार लिया करें, शर्त ये है के ज़ीनत की जगह ना ज़ाहिर करें, और अगर इससे भी ज्यादा बेहतर है उनके लिये, और अल्लाह सब कुछ सुनता, सब कुछ जानता है। अंधे पर कोई गुनाह नहीं है, ना लंगड़े पर, ना बीमार पर, और ना तुम ख़ुद पर के अपने घरों से खाना खाओ या अपने बाप के घर से, या अपनी मांओं के घरों से, या अपने भाईयों के घरों से, या अपनी बहनों के घरों से, या अपने बचाओ के घरों से, या अपनी फ़ूंफ़ियों के घरों से, या अपने मामूओं के घरों से, या अपनी ख़ालाओं के घरों से, या उन घरों से जिनकी कुंजियां तुम्हारे इख़्तियार में हों, या अपने दोस्तों के घरों से, तुम को इस बात पर कोई गुनाह नहीं के तुम सब मिलकर खाना खाओ, या जुदा जुदा, फिर जब घरों में जाया करो तो अपने घर वालों को सलाम किया करो, ये ख़ुदा की तरफ़ से मुबारक और पाकीज़ा तोहफ़ा है, इसी तरह अल्लाह तुम से अपने अहकाम खोल खोल कर ताके तुम समझो। मोमिन तो वो हैं जो अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाये, और जब कभी ऐसे काम के लिये जो जमा होकर करने वाला हो, पैग़म्बरे ख़ुदा के पास जमा हों तो उनसे

بُيُوْتًا فَسَلِّمُوْا عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ تَحِيَّةً مِّنْ
عِنْدِ اللّٰهِ مُبٰرَكَةً طَيِّبَةً ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ
اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٦١﴾ اِنَّمَا
الْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ وَ
اِذَا كَانُوْا مَعَهٗ عَلٰٓى اَمْرٍ جَامِعٍ لَّمْ
يَذْهَبُوْا حَتّٰى يَسْتَاْذِنُوْهُ ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ
يَسْتَاْذِنُوْنَكَ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ
بِاللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ ۚ فَاِذَا اسْتَاْذَنُوْكَ لِبَعْضِ
شَاْنِهِمْ فَاْذَنْ لِّمَنْ شِئْتَ مِنْهُمْ وَ
اسْتَغْفِرْ لَهُمُ اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ
رَّحِيْمٌ ﴿٦٢﴾ لَا تَجْعَلُوْا دُعَآءَ الرَّسُوْلِ بَيْنَكُمْ
كَدُعَآءِ بَعْضِكُمْ بَعْضًا ؕ قَدْ يَعْلَمُ اللّٰهُ
الَّذِيْنَ يَتَسَلَّلُوْنَ مِنْكُمْ لِوَاذًا ۚ فَلْيَحْذَرِ
الَّذِيْنَ يُخَالِفُوْنَ عَنْ اَمْرِهٖٓ اَنْ
تُصِيْبَهُمْ فِتْنَةٌ اَوْ يُصِيْبَهُمْ عَذَابٌ
اَلِيْمٌ ﴿٦٣﴾

इजाज़त लिये बग़ैर नहीं जाते, (ऐ नबी) जो आपसे इजाज़त हासिल करते हैं, वही अल्लाह पर और उसके रसूल पर ईमान रखते हैं, सो जब ये किसी काम के लिये आपसे इजाज़त मांगा करें, तो उनमें से आप जिसे चाहें इजाज़त दें, और उनके लिये अल्लाह से बख़्शिश मांगा करें, कोई शक नहीं के अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (मोमिनों!) तुम रसूल के बुलाने को ऐसा ख़्याल ना करो जैसा के तुम एक दूसरे को बुलाते हो, अल्लाह को मालूम है जो तुम में से आंख बचा चले जाते हैं, जो लोग रसूल के हुक्म की मुखालफ़त करते हैं, इनको ख़ौफ़ करना चाहिये के ऐसा ना हो के कोई आफ़त उन पर आ पड़े, या उन पर दुख देने वाला अज़ाब नाज़िल हो जाए। (24:58-63)

58-60 आयतों में एक ही घर में साथ साथ रहने वाले लोगों के लिए व्यवहार के सिद्धांत बताए गए हैं। बड़े परिवार में जहां नौकर चाकर या उस समय के चलन में ग़ुलाम भी रहते हों और आज़ाद व्यक्ति भी, परिवार के वयस्क सदस्यों की निजता को ख़ास वक़्तों में सुरक्षित करना था, जैसा कि अब भी ज़रूरी है, उनके साथ रहने वाले अन्य लोगों को शालीनता और सज्जनता की यह सीख दी गयी। रात की नमाज़ (इशा) के बाद, सुबह (फ़ज्र) की नमाज़ से पहले और दोपहर (ज़ुहर) के बाद आराम के समय में ग़ुलामों को और छोटे बच्चों को बड़ों के एकान्त में बिना इजाज़त चले आने से मना कर दिया गया। ज़ाहिर है कि इन समयों पर अपने साधारण लिबास उतार कर रख दिए जाते हैं। इन समयों के अलावा ग़ुलामों और बच्चों को घर के बड़ों के साथ बिना रोक टोक घुलने मिलने की इजाज़त दी गयी, इस बात का लिहाज़ करते हुए कि उनका आते जाते रहना और घर के सभी लोगों का एक दूसरे से मिलते जुलते

रहना एक स्वभाविक ज़रूरत है। इसका मतलब यह भी है कि इन आम वक़्तों में घर के बड़ों (बालिग़ सदस्यों) को लिबास की पाबन्दी करना ज़रूरी है। घर में रहने वाले वो बालिग़ व्यक्ति जिनका एक दूसरे से विवाह हो सकता है, उन्हें एक दूसरे की तनहाई में आने के लिए हमेशा इजाज़त लेने का निर्देश दिया गया। यह ऐसा सिद्धांत है जो हर बच्चे के लिए भी ज़रूरी है जो बालिग़ होने की उम्र को पहुंच गया हो और घर के किसी ऐसे व्यक्ति के ऐकान्त में दाख़िल हो जिससे उसका विवाह हो सकता हो। बड़ी उम्र की औरतें जिनकी यौन उत्तेजनाएं ठण्ड़ी पड़ गयी हों और कोई यौन आकर्षण न रखती हों उनको यह इजाज़त दी गयी कि वो चाहें तो दिन में भी अपने ऊपर के कपड़े (चादर दुपट्टा वग़ैरह) उतार कर रख सकती हैं जिससे उनकी मंशा अपना सौन्दर्य दिखाना न हो इसके बावजूद उन्हें यह सीख दी गयी कि उनके लिए भी बहतर यही है कि बालिग़ों के लिए जो सिद्दांत बताए गए हैं उन पर अमल करें। यह उनके लिए ज़्यादा अच्छी बात होगी और उनके शरीरिक व नैतिक संरक्षण की ज़मानत होगी।

अगली आयत 24:61 क़रीबी रिश्तेदारों और दोस्तों के घरों में आने से सम्बंधित है कि वो उन घरों में घर वालों की अनुपस्थिति में खाने पीने के लिए दाख़िल हो सकते है अगर उन्हें इसका अधिकार घर वालों की तरफ़ से पहले से मिला हुआ हो। जिस घर की चाबी किसी के पास हो उसके लिए भी यही हुक्म है क्योंकि घर की चाबी देने का मतलब भरोसा और विश्वास रखना है और घर में दाख़िल होने का अधिकार देना है। अपंग और बीमार लोग ज़रूरत और स्थिति की तक़ाज़े के आधार पर इस इजाज़त से फ़ायदा उठा सकते हैं। यह बात ध्यान में रखने की है कि उस ज़माने में वहां गेस्टहाउस, मुसाफ़िर खाने, होटल और सराय वग़ैर नहीं थीं, ऐसी स्थिति में दूसरों के ख़ाली पड़े घर ठहरने और लोगों के जमा होने की जगह थे। दूसरों के घर से इस तरह फ़ायदा उठाने वाले लोग घर में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से आ सकते हैं, लेकिन इन हालात में जो लोग ऐसे घरों में मुलाक़ात के लिए आएं उन्हें चाहिए कि एक दूसरे को सलाम करके और दुआ देते हुए घर में प्रवेश करें।

ऊपर की आयतों में आख़री दो आयतों (24:62-63) में मुसलमानों को यह शिक्षा दी गयी है कि वो सामूहिक मामलों के लिए जब एक जगह जमा हों तो आपस में किस तरह का बर्ताव करें। ऐसे अवसरों पर किसी को भी यह इजाज़त नहीं है कि वह ख़ुद अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करे, और जब जो चाहे करे। लोगों का जमा होना अनुशासन और नियम से हो और नैतृत्व करने वाले के निर्देशों का पालन होना चाहिए, और उस समय वहां लोगों का नैतृत्व पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ख़ुद कर रहे थे। सभी अनुयायी उनका फैसला मानने के पाबन्द थे, और मीटिंग में बैठने वाले किसी सदस्य को भी यह अनुमति नहीं दी गयी कि वह किसी भी वजह से उठ कर ख़ुद से ही चला जाए जब तक मीटिंग के अध्यक्ष से अनुमति न लेले, और मीटिंग के अध्यक्ष (पैग़म्बर साहब) किसी को उसके निजी मामले की

वजह से अगर उचित समझें तो जाने की अनुमति दे सकते हैं। मीटिंग के अध्यक्ष को उस जाने वाले के लिए दुआ भी करना चाहिए कि उसने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी नहीं की इसलिए अल्लाह उसे मआफ़ करे। मुखिया (पैग़म्बर सल्ल०) के साथ लोगों का बर्ताव उनके आपसी बर्ताव से अलग होना चाहिए, उनकी इज़्ज़त, उनके साथ वफ़ादारी और उनके प्रति समर्पण और उनके निर्देशों का पालन करने का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। इस मामले में अल्लाह के किसी भी आदेश का उल्लंघन दुनिया और आख़िरत के जीवन में दोनों जगह कड़ी यातना और पीड़ा की वजह बनेगा। इसके अलावा, इसके नतीजे पूरे समाज को झेलने पड़ेंगे क्योंकि किसी सामूहिक मामले में इस तरह की ग़लतियों का प्रभाव केवल दोषी तक सीमित नहीं रहता बल्कि पूरा समाज प्रभावित होता है (8:25)।

परिवार में और समाज में इंसानों के आपसी सम्बंधों के लिए इस तरह के साफ़ और सख़्त नियम एक क़बायली समाज में लागू किए गए जो बहुत महत्वपूर्ण बात है। इनसे स्पष्ट होता है कि अरब के क़बायली समाज में और पूरी दुनिया में इस्लाम ने कितने महान विकास की नींव डाली: "हर चीज़ को स्पष्ट करने वाली, और अल्लाह का आज्ञा पालन स्वीकार करने वालों का मार्गदर्शन करने वाली, रहमत और ख़ुशख़बरी देने वाली (किताब)" (16:89)

وَ لَقَدْ اٰتَيْنَا لُقْمٰنَ الْحِكْمَةَ اَنِ اشْكُرْ لِلّٰهِ ؕ
وَ مَنْ يَّشْكُرْ فَاِنَّمَا يَشْكُرُ لِنَفْسِهٖ ۚ وَ مَنْ
كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ﴿١٢﴾ وَ اِذْ قَالَ
لُقْمٰنُ لِابْنِهٖ وَ هُوَ يَعِظُهٗ يٰبُنَيَّ لَا تُشْرِكْ
بِاللّٰهِ ؕ اِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيْمٌ ﴿١٣﴾ وَ
وَصَّيْنَا الْاِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ ۚ حَمَلَتْهُ اُمُّهٗ
وَهْنًا عَلٰى وَهْنٍ وَّ فِصٰلُهٗ فِيْ عَامَيْنِ اَنِ
اشْكُرْ لِيْ وَ لِوَالِدَيْكَ ؕ اِلَيَّ الْمَصِيْرُ ﴿١٤﴾ وَ
اِنْ جَاهَدٰكَ عَلٰۤى اَنْ تُشْرِكَ بِيْ مَا لَيْسَ
لَكَ بِهٖ عِلْمٌ فَلَا تُطِعْهُمَا وَ صَاحِبْهُمَا فِي
الدُّنْيَا مَعْرُوْفًا ۫ وَّ اتَّبِعْ سَبِيْلَ مَنْ اَنَابَ
اِلَيَّ ۚ ثُمَّ اِلَيَّ مَرْجِعُكُمْ فَاُنَبِّئُكُمْ بِمَا

और जब लुक़मान ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए कहा, बेटा! अल्लाह के साथ कभी शिर्क ना करना, बेशक शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म है। और हमने इन्सान को अपने मां बाप के साथ हुस्ने सुलूक करने के लिये ताकीद की है, उसकी मां ने तकलीफ़ उठाकर उसको पेट में रखा फ़िर उसको दूध पिलाती रही दो बरस तक, और हक़ मान मेरा और अपने मां बाप का, आख़िर मेरे ही पास आना है। और अगर वो तुझे मजबूर करें के तू मेरे साथ किसी को शरीक करे जिसका तुझको कोई इल्म ना हो तो उनका हुक्म ना मानना, और दुनिया के कामों में ज़रूर उनका साथ देना, और जो मेरी तरफ़ रूजू करें उनका साथ देना (पूरी तरह से) फ़िर तुम को मेरी ही तरफ़ लौटना है तो मैं बताऊँगा तुम क्या करते थे। ऐ मेरे बेटे! अगर कोई अमल राई के दाने के बराबर हो, और हो भी किसी पत्थर के अन्दर, या आसमानों में मख़्फ़ी हो या ज़मीन में हो तो अल्लाह उसको भी ले

كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿١٥﴾ يٰبُنَيَّ اِنَّهَآ اِنْ تَكُ
مِثْقَالَ حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ فَتَكُنْ فِيْ
صَخْرَةٍ اَوْ فِي السَّمٰوٰتِ اَوْ فِي الْاَرْضِ يَاْتِ
بِهَا اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَطِيْفٌ خَبِيْرٌ ﴿١٦﴾ وَ لَا
تُصَعِّرْ خَدَّكَ لِلنَّاسِ وَ لَا تَمْشِ فِي
الْاَرْضِ مَرَحًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ كُلَّ
مُخْتَالٍ فَخُوْرٍ ﴿١٧﴾ وَ اقْصِدْ فِيْ مَشْيِكَ وَ
اغْضُضْ مِنْ صَوْتِكَ ؕ اِنَّ اَنْكَرَ
الْاَصْوَاتِ لَصَوْتُ الْحَمِيْرِ ﴿١٩﴾

आयेगा, बिला शुबह अल्लाह तो बड़ा बारीक बीन और ख़बरदार है। ऐ मेरे बेटे! नमाज़ पाबंदी से अदा करते रहना! और अच्छी बातों का हुक्म करते रहना, और बुरी बातों से मना करते रहना, और उस मुसीबत पर सब्र करते रहना जो तुझे पहुंचे, बिलाशुबह ये बड़ी हिम्मत के काम हैं। और लोगों के सामने (मारे ग़ुरूर के) अपने गाल ना फ़ुलाना, और ज़मीन पर अकड़ कर ना चलना, बेशक अल्लाह किसी मुतकब्बिर फ़ख़्र करने वाले को पसंद नहीं करता। और अपनी चाल में मयान रवी इख़्तियार कर, और अपनी आवाज़ को पस्त कर, बेशक आवाज़ों में सबसे बुरी आवाज़ गधों की आवाज़ है।
(31:13-19)

प्राचीन अरब में हज़रत लुक़मान को एक ऐसे सभ्य और बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में जाना जाता था जो हमेशा नैतिकता पर ज़ोर देते थे और व्यक्ति के अन्दरूनी सुधार के लिए चिंतित रहते थे। इस्लाम से पहले के युग के एक कवि 'अलनाबिग़ा अलज़ोबयाई' ने उनके क़सीदे (प्रशंसा के गीत) लिखे हैं। उपरोक्त आयतों में वह अपने बेटे को उत्तम नैतिक मूल्यों की शिक्षा दे रहे हैं। उन्होंने अपने बेटे से कहा कि एक अल्लाह की इबादत सभी नैतिक मूल्यों का मौलिक तत्व है और नैतिकता का सर्वोत्तम दर्जा है। अल्लाह की शुक्रगुज़ारी के बाद सबसे बड़ी शुक्रगुज़ारी मातापिता के प्रति है (और देखें 2:83(4:36(6:151(17:23)। अगर किसी के मातापिता उससे अल्लाह के साथ शिर्क करने (अल्लाह के साथ दूसरों को भी पूजनीय मानने) को कहें तब भी उसे अपने मातापिता के साथ दुनिया में अच्छा व्यवहार ही रखना चाहिए हां मगर शिर्क की बात को नहीं मानना चाहिए, और इस मामले में मातापिता का आज्ञापालन करने के बजाए उन लोगों का अनुसरण करना चाहिए जो अल्लाह के रास्ते पर चलते हैं। अल्लाह तआला जानते हैं कि किसी के दिल व दिमाग़ में वास्तव में क्या है और किसी काम के पीछे करने वाले की असिल नियत क्या है। अल्लाह की शुक्रगुज़ारी और उसका तक़वा नमाज़ से ज़ाहिर होता है और नैतिक मूल्यों के लिए अडिग रहने से साबित होता है। अतःअच्छी बातों का निर्देश देना और बुरी बातों से रोकने का ज़िक्र नमाज़ के तुरन्त बाद किया गया है जो कि अल्लाह के तक़वे और उसकी हिदायत पर चलने का सामाजिक प्रदर्शन है। लेकिन अच्छे कर्म करने वाला व्यक्ति कभी कभार अपनी नेकियों और अच्छे कर्मों के घमण्ड में भी आ जाता है। इस तरह की सम्भावना को भी हज़रत लुक़मान ने अपनी नसीहत और युक्ति पूर्ण

शिक्षा में नहीं भुलाया और अपने बेटे को ख़बरदार किया कि घमण्ड से बचे जिसकी अभिव्यक्ति आदमी के चेहरे, आवाज़ और चाल-ढाल से होती है। उन्होंने नसीहत की कि घमण्ड और अहंकार इंसान के अच्छे कर्मों को निरर्थ कर देता है (और देखें 2:263-265)।

إِنَّ الَّذِينَ يُنَادُونَكَ مِن وَرَاءِ الْحُجُرَاتِ أَكْثَرُهُمْ لَا يَعْقِلُونَ ۝٤ وَلَوْ أَنَّهُمْ صَبَرُوا حَتَّىٰ تَخْرُجَ إِلَيْهِمْ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ۚ وَاللَّهُ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ۝٥

जो लोग तुम को हुज्रों के बाहर से आवाज़ देते हैं, उनमें अक्सर बेअक़्ल हैं। अगर वो सब्र किये रहते यहां तक के आप ख़ुद निकल कर उनके पास आते तो ये उनके लिये बेहतर होता, और अल्लाह बख़्शने वाला रहम वाला है। (49:4-5)

इस सभी आयतों में नैतिक मूल्यों और अच्छे संस्कारों का एक संग्रह दिया गया है। जिस सूरत में यह आयतें आई हैं उसका नाम "हुजरात" (हुजरों का बहुवचन) है, और यह सूरत एक ख़ास अवसर पर उतरी है। कुछ अरबवासी जो पैग़म्बर साहब सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को देखना और आप से मिलना चाहते थे वो आप के हुजरे (कमरे) पर आए जो मस्जिद से सटा हुआ था। इन लोगों को चाहिए था कि नमाज़ के समय आपके बाहर निकलने का इंतेज़ार करते, कुछ लोग पहले से भी वहां आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे, उन्हीं के साथ ये भी बैठ जाते लेकिन इसके बजाए वो हुजरे के बाहर से ही आपको आवाज़ें लगाने लगे। यह सूरत इस बात की शिक्षा से शुरू होती है कि मुसमलानों को पैग़म्बर साहब के साथ बहुत सम्मान से पेश आना चाहिए, उन्हें अपनी आवाज़ पैग़म्बर सल्ल० की आवाज़ से ज़्यादा ऊंची नहीं करना चाहिए, और पैग़म्बर साहब से इस तरह से बात नहीं करना चाहिए जिस तरह वो आपस में एक दूसरे से बात करते हैं। ऐसा लगता है कि अरब लोग अपने सादा और उजड क़बायली जीवन में इस तरह की हिदायत और तालीम के बहुत ज़रूरतमंद थे, क्योंकि पैग़म्बर साहब के साथ इस तरह के कई मामले हुए जिनका ज़िक्र क़ुरआन में कई जगह हुआ है (24:26-63(33:53)। इस तरह की सामाजिक और ऐतिहासिक स्थितियों में यह महत्वपूर्ण शिक्षा दिए जाने से यह पता चलता है कि इस्लाम की सुधार योजना में अच्छे संस्कारों और नैतिक आचरण का कितना अधिक महत्व है, और इस्लाम किस तरह का सभ्य समाज बनाना चाहता है। यह शालीनता और सभ्यता हर समाज की ज़रूरत है और इसकी मांग हर समाज में चली आ रही है हालांकि इसको बरतने के ढंग अलग अलग हो सकते हैं। समाज के मुखिया और अगुवा लोगों को उनकी प्रतिष्ठा के लिहाज़ से विशेष सम्मान देना ज़रूरी होता है, इस बात का ध्यान रखते हुए कि इंसानी समानता के नैतिक सिद्धांत की अवहेलना न हो।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَدْخُلُوْا بُيُوْتَ النَّبِيِّ اِلَّآ اَنْ يُّؤْذَنَ لَكُمْ اِلٰى طَعَامٍ غَيْرَ نٰظِرِيْنَ اِنٰىهُ ۙ وَ لٰكِنْ اِذَا دُعِيْتُمْ فَادْخُلُوْا فَاِذَا طَعِمْتُمْ فَانْتَشِرُوْا وَلَا مُسْتَاْنِسِيْنَ لِحَدِيْثٍ ؕ اِنَّ ذٰلِكُمْ كَانَ يُؤْذِي النَّبِيَّ فَيَسْتَحْيٖ مِنْكُمْ ۫ وَ اللّٰهُ لَا يَسْتَحْيٖ مِنَ الْحَقِّ ؕ وَ اِذَا سَاَلْتُمُوْهُنَّ مَتَاعًا فَسْـَٔلُوْهُنَّ مِنْ وَّرَآءِ حِجَابٍ ؕ ذٰلِكُمْ اَطْهَرُ لِقُلُوْبِكُمْ وَ قُلُوْبِهِنَّ ؕ وَ مَا كَانَ لَكُمْ اَنْ تُؤْذُوْا رَسُوْلَ اللّٰهِ وَ لَآ اَنْ تَنْكِحُوْٓا اَزْوَاجَهٗ مِنْۢ بَعْدِهٖٓ اَبَدًا ؕ اِنَّ ذٰلِكُمْ كَانَ عِنْدَ اللّٰهِ عَظِيْمًا ۝ اِنْ تُبْدُوْا شَيْـًٔا اَوْ تُخْفُوْهُ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمًا ۝ لَا جُنَاحَ عَلَيْهِنَّ فِيْٓ اٰبَآئِهِنَّ وَ لَآ اَبْنَآئِهِنَّ وَ لَآ اِخْوَانِهِنَّ وَ لَآ اَبْنَآءِ اِخْوَانِهِنَّ وَ لَآ اَبْنَآءِ اَخَوٰتِهِنَّ وَ لَا نِسَآئِهِنَّ وَ لَا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ ۚ وَ اتَّقِيْنَ اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدًا ۝

मोमिनों! तुम रसूल के घरों में ना जाया करो, मगर उस वक़्त जब तुम को खाने की इजाज़त दी जाये, इस तौर पर के उसके पकने का इन्तिज़ार करना चाहिये, लेकिन जब तुम को बुलाया जाए, तो जाओ, और खाना खा चुको चल दो, और बातों में जी लगा कर ना बैठे रहो, ये बात रसूल को ईज़ा देती है, और वो तुम से शर्म करते हैं, लेकिन अल्लाह सच्ची बात कहने से शर्म नहीं करता, और जब रसूल की बीवियों से कोई सामान मांगों तो पर्दे के बाहर से मांगो, ये तुम्हारे और उनके दिलों के लिये बहुत पाकीज़गी की बात हैं और तुम को ये शायान नहीं के तुम रसूल को तकलीफ़ दो, और ना ये के उनकी बीवियों से कभी उनके बाद निकाह करो, बिला शुबह अल्लाह के नज़दीक ये बड़ी भारी बात है। अगर तुम किसी चीज़ को ज़ाहिर करो या उसको मख़्फ़ी रखो तो अल्लाह हर चीज़ से बा ख़बर है, ख़ूब जानता है। औरतों पर अपने बाप से पर्दा ना करने में कोई गुनाह नहीं है, और ना अपने बेटों से, और ना अपने भाईयों से, और अपने भतीजों से, और ना अपने भांजों से, और ना अपनी क़िस्म की औरतों से, और ना लौंडियों से, और अल्लाह से डरती रहा करो, बिला शुबह अल्लाह हर चीज़ पर गवाह है। (33:53-55)

ऊपर की आयतों में जहां मोमिनों को पैग़म्बर साहब का बहुत अधिक सम्मान करने का निर्देश दिया गया वहीं इन आयतों में मिलने के लिए दूसरों के घर पर जाने के और खाने की दावत के सम्बंध में संस्कार सिखाए गए हैं और ये संस्कार ऐसा उत्तम उदाहरण हैं कि इनसे सभी लोगों के मामले में सीख लेना चाहिए, ख़ास तौर से बुज़ूर्गों, अगुवाओं और प्रतिष्ठित लोगों से मिलने के मामले में। मकान एक निजी जगह होती है जहां रहने वालों को अकेलेपन में और दूसरों से अलग हो कर रहने का अधिकार होता है, चाहे मकान कैसा भी हो और मकान में रहने वाला कोई भी हो। बिना इजाज़त के किसी के भी घर में दाख़िल होने का अधिकार किसी को भी नहीं है। इस बात को आधार बना कर कि यह शिक्षा पैग़म्बर साहब के मुक़ाम और

दर्जे (33:6,40) की वजह से उनके लिए ही ख़ास है, इस अनिवार्य सिद्धांत की अनदेखी करने के लिए कोई बहाना नहीं बनाया जा सकता और न मेज़बान की शराफ़त व शालीनता का शोषण ही किया जा सकता है (3:159(9:128(68:4)। किसी को खाने की दावत मेज़बान अपनी ख़ुशी और मर्ज़ी से ही दे सकता है। कोई महमान अगर खाने के समय आ पहुंचे तो ज़रूरी नहीं कि मेज़बान उसे दावत ही दे। अतःमेज़बान के लिए यह ज़रूरी है कि वह खाने के समय पर लोगों को बुलाए या मुलाक़ात की अवधि खाने के समय तक रखे। जब किसी को खाने की दावत दी जाए तो महमान को चाहिए कि एक उचित समय तक मेज़बान के यहां रहे। बेफ़िक्र हो कर वहां रुका न रहे ना बेकार की गपशप करता रहे, और मेज़बान को होने वाली दिक़्क़त का कोई अहसास ही न हो, मेज़बान की शर्म व संकोच का ग़लत फ़ायदा उठाए। इस तरह के सभी अप्रिय और उदासीनता के व्यवहार की अपेक्षा किसी असभ्य महमान से आज तक भी नहीं की जा सकती, और इस्लाम जिस तरह का समाज बनाना चाहता है उसके लिहाज़ से आज का समाज कितना सभ्य और सुशील बन सका है ?